सर्व शास्त्र-प्रकाशन—

[redacted]

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास-प्रणीत—

श्रीमद्भागवत-महापुराण

[पदच्छेद, अन्वय, हिन्दी शब्दार्थ टीका सहित]

[redacted]

सम्पादक—

सुदर्शनसिंह 'चक्र'

प्रकाशक—

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान

मथुरा—२८१००१

इस संस्करणके सम्बन्धमें—

अनेक बार भाई जयदयाल डालमियाने तथा दो-चार बार दूसरोंने भी श्रीमद्भागवतकी इस प्रकार पदच्छेद-अन्वय सहित टीका तैयार करनेकी बात कही। मैं प्रायः कह देता था—'श्रीमद्भागवत छोटा ग्रन्थ नहीं है। उसकी इस प्रकारकी टीका बहुत बड़ी होगी। फलतः बहुत महँगी होगी। उसका प्रचार-प्रसार संदिग्ध होगा।'

यह बात अपने स्थानपर ठीक है। संस्कृतके—विशेषतः भागवतके विद्यार्थी सम्पन्न कम ही होंगे। अतः बहुत उपयोगी हो तो भी कई खण्डोंका कई सौ रुपयोंका ग्रन्थ ले लेना उनके लिए बहुत ही कठिन होगा।

दूसरी ओर यह बात भी ठीक है कि देशमें श्रीमद्भागवतके प्रति बहुत श्रद्धा है। बहुत लोग, जो संस्कृत नहीं जानते, श्रीमद्भागवत पढ़ने-समझनेको उत्सुक हैं।

गीताप्रेस (गोरखपुर) ने गीताकी अन्वय-पदच्छेद सहित टीका प्रकाशित की। गीताके अध्ययनमें उसने बहुत लोगोंकी सहायता की। उससे संस्कृत न जाननेवाले भी गीता पढ़ने-समझनेमें सफल हुए—इसमें दो मत सम्भव नहीं हैं।

मैं तो इस काममें केवल दो कारणोंसे लगा—

१. इस बहाने मेरा अपना श्रीमद्भागवतका अध्ययन हो जायगा।

२. भाई श्रीजयदयाल डालमियाका आग्रह।

गीताप्रेससे अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज द्वारा की गयी श्रीमद्भागवतकी टीका प्रकाशित है। यह टीका बहुत उत्तम है इसमें श्रीमद्भागवतके शब्द प्रायः छोड़े नहीं गये हैं। अतः संस्कृत न जाननेवालोंको उससे श्रीमद्भागवतका ठीक-ठीक अर्थ ज्ञात हो जाता है। मैंने भी इस टीकामें उसीके अर्थका आश्रय लिया है।

इतना होनेपर भी वह टीका शब्दार्थ नहीं है, भावार्थ है। फलतः उसके माध्यमसे श्रीमद्भागवतका ठीक-ठीक अध्ययन सम्भव नहीं है।

अनुवादकी समस्या—

सच बात यह है कि प्रत्येक भाषाकी अपनी एक शैली, प्रकृति होती है। उसके प्रत्येक शब्दका दूसरी किसी भाषामें अनुवाद सम्भव नहीं होता। जैसे हम हिन्दीमें मजेसे बोलते-लिखते हैं—

आलतू-फालतू बातें नहीं सुननी।

अब इस वाक्यका किसी दूसरी भाषामें अनुवाद करते समय 'आलतू' शब्द छोड़े बिना उपाय नहीं है; क्योंकि यह व्यर्थ शब्द है।

श्रीमद्भागवतमें आया—

'प्रसूनवर्षैरभिवर्षितः पथि।'—१.११.२७

इसमें 'प्रसूनवर्षैः अभिवर्षितः' यह संस्कृतकी विशेष शैली है। ठीक-ठीक शब्दानुवाद करें तो होगा—'पुष्पोंकी वर्षा मार्गमें बरसाये जाते हुए।' ऐसा प्रयोग हिन्दीको बिगाड़ता ही है। अतः हिन्दीके अनुवादकको तो 'मार्गमें पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी।' यही कहना पड़ेगा।

इसी प्रकारकी विवशता अनेक स्थानोंपर एकाध शब्द छोड़नेको बाध्य करती है।

अनेक स्थानोंपर शब्दका ठीक अर्थ देना सम्भव ही नहीं होता। वहाँ लाक्षणिक अर्थ ही देना पड़ता है। जैसे—

आजहारोल्बणं क्रोधं (३.१८.१३)

'आजहार' का ठीक अर्थ है झपटकर; किन्तु क्रोध तो किसीसे झपटा या छीना नहीं जा सकता। संस्कृतमें बोलनेकी यह शैली होनेपर भी हिन्दीमें तो लाक्षणिक अर्थ ही करना होगा 'उग्र क्रोधमें भरकर'। यह विवशता बहुत स्थानोंपर है; किन्तु जहाँ विवशता नहीं है, ठीक शब्दार्थ ही देनेका प्रयत्न किया गया है।

'हि' 'ह' 'वै' 'न्व' 'नु' 'त' जैसे शब्दोंका अनुवाद भी किया तो गया है; किन्तु इनका कोई एक निश्चित अर्थ नहीं होता। प्रसंगके अनुसार इनका अर्थ करना पड़ता है। जैसे 'रामश्च' का अर्थ 'राम और' तथा 'राम भी' दोनों ठीक हैं।

पूरे ग्रंथमें उवाचोंमें एकरूपता लानेका प्रयत्न मैंने किया है। फलत: 'वाच' केवल परीक्षितके लिए रहने दिया है। दूसरे राजाओंके लिए 'राजोवाच' था, वहाँ उन राजाओंका नाम कर दिया है। ऐसे ही 'शौनक उवाच' 'मैत्रेय उवाच' आदिके लिए भी एक ही रूपके 'उवाच' सर्वत्र कर देनेकी धृष्टता की है।

उवाचोंको बढ़ानेकी परम्परा मैंने नवीन नहीं डाली है। गीताप्रेससे छपी श्रीमद्भागवतकी प्रतिमें भी कई स्थानोंपर टिप्पणीमें यह सूचना है कि वह उवाच प्राचीन प्रतियोंमें नहीं है। गीताप्रेसवालोंने अपनी ओरसे तो नहीं बढ़ाया होगा; किन्तु उनसे पूर्वके किसी टीकाकारने बढ़ाया होगा, जिसे वे आधार मानकर चले हैं। लेकिन सब आवश्यक स्थलोंपर 'उवाच' दे देनेका (जहाँ वे नहीं हैं) यह प्रथम प्रयास है।

उवाचोंमें किञ्चित् परिवर्तन भी हुआ है, यह गीताप्रेसकी प्रतिसे स्पष्ट हो जाता है। कहीं 'शुक उवाच' था, उसे 'श्रीशुक उवाच' किया गया है। ऐसे छोटे परिवर्तन और भी हैं; किन्तु उवाचोंकी पूरे ग्रन्थमें एकरूपता किसीने आवश्यक नहीं मानी है।

ऐसा परिवर्तन विद्वान लोकमान्य आचार्यों तथा दूसरे टीकाकारोंने अकारण नहीं छोड़ा है। उनका ध्यान इधर नहीं गया, ऐसा कहना भी अज्ञता होगी। उन्होंने सकारण जान-बूझकर ऐसे परिवर्तनोंको अनुचित माना है। यह जानते हुए भी मैंने ये परिवर्तन इस दृष्टिसे किये हैं कि अब समाजके विद्वानोंका भी बड़ा भाग सूक्ष्म महत्ताओंके स्थानपर ऊपरी बातोंपर बहुत अधिक ध्यान देता है। उसे ये परिवर्तन सम्भवत: ठीक लगेंगे और पूर्व रूपका पता तो टिप्पणियोंसे लग ही जाता है।

श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें—

'श्रीमद्भागवतं पुराण तिलकं' यह भागवतकी ही उक्ति अक्षरश: सत्य है। यह पुराणोंमें सर्वश्रेष्ठ है। दर्शन, साहित्य, शैली सब दृष्टिसे अद्वितीय है।

इतना होनेपर भी नीति है—

रिपोरपि गुणावाच्यं दोषाः वाच्यं गुरोरपि ।

उवाचोंकी समस्या—

श्रीमद्भागवतमें 'उवाच' किस नियमसे, किस क्रमसे दिये गये हैं, इसका कोई क्रम नहीं है। जैसे—प्रथम स्कन्धके अध्याय १७ में श्लोक २१ के पश्चात् 'सूत उवाच' का केवल एक श्लोक है। उसके पश्चात् 'राजोवाच' है। इस उवाचके चलते हुए ही पुनः श्लोक ३० के आगे 'राजोवाच' है। ऐसा क्यों है ?

क्योंकि श्लोक २८, २९, ३० सूतके हैं; किन्तु श्लोक २७ के पश्चात् 'सूत उवाच' नहीं है। आगे फिर श्लोक ३४ के पश्चात् 'सूत उवाच' केवल एक श्लोकका है।

एक ही श्लोकके लिए 'सूत उवाच' आया और ३ श्लोक होनेपर भी नहीं आया, इसका कोई समाधान नहीं है।

ऐसे अनेक स्थान पूरे ग्रन्थमें और प्रथम स्कन्धमें भी हैं।

पता नहीं इसपर विद्वान टीकाकारोंने अबतक क्यों ध्यान नहीं दिया था।

अनेक विद्वान श्रीमद्भागवतकी श्लोक-गणनामें उवाचोंको सम्मिलित करते हैं। अतः कोई उवाच बढ़ानेपर गणनाकी उनकी पद्धतिमें अन्तर अवश्य आवेगा। यह जानते हुए भी मैंने आवश्यक स्थलोंपर 'उवाच' बढ़ाये हैं और टिप्पणीमें ऐसे सब स्थलोंपर सूचित कर दिया है कि 'यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।'

उवाचोंके सम्बन्धकी दूसरी समस्या उनकी अनेकरूपता है। उदाहरणके लिए सनकादि कुमारोंके लिए 'मुनय ऊचुः' (३.१५.३१ के बाद) उसी अध्यायमें 'कुमारा ऊचुः' (३.१५.४५ के बाद) 'ऋषय ऊचुः' (३.१६.१५ के बाद) आया है। ऐसे ही तृतीय स्कन्धमें प्रायः 'मैत्रेय उवाच' है, लेकिन इसी तृतीय स्कन्धके षष्ठ अध्यायके प्रारम्भमें 'मैत्रेय उवाच' के स्थानपर 'ऋषिरुवाच' है। 'राजोवाच' कहीं परीक्षितके लिए और कहीं युधिष्ठिर आदि अन्य किसीके लिए है। इस सम्बन्धमें कोई नियम नहीं माना गया है। अतः मुझे इसमें भी परिवर्तन करना उचित लगा। जहाँ भी ऐसा परिवर्तन मैंने किया है, नीचे टिप्पणीमें सूचित कर दिया है कि दूसरी प्रतियोंमें (विशेषतः गीताप्रेससे छपी प्रतिमें) उस उवाचका क्या रूप है।

यही अवस्था स्कन्ध १२ में अध्याय ६-७ की है। अध्याय ६ में श्लोक ३५ तक प्रसङ्ग पूरा हो जाता है। श्लोक ३६ से वेदशाखा प्रणयन प्रसङ्ग है, जो इस अध्यायमें पूरा नहीं होता। या तो इस अध्यायको पृथक सातवें अध्याय सहित होना चाहिये था या कम-से-कम सातवें अध्यायके श्लोक ४ तक, जहाँतक अथर्वेदकी शाखाओंका वर्णन है, इसमें होना चाहिये था।

आधुनिकतासे—पाश्चात्य पाण्डित्य एवं तर्कसे भ्रान्त अनेक विद्वन्मन्य लोग 'वेदत्रयी' शब्दको ठीक न समझनेके कारण अथर्ववेदको पीछेकी रचना मानते हैं। वे समझते ही नहीं कि त्रयीका अर्थ कर्म,ज्ञान, उपासना प्रतिपादक है। अथर्ववेद यज्ञमें ब्रह्माके लिए है। उसके बिना यज्ञ होगा ही कैसे। लेकिन ऐसे दिग्भ्रमित लोगोंके भ्रमको पोषणका आधार मिल जाता है १२.६.८० तक ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेदका वर्णन एक साथ करके अथर्ववेदका वर्णन अगले सप्तम अध्यायमें ले जाकर पुराणोंके साथ कर देनेसे। इसलिए यहाँ अध्याय ६ श्लोक ३५ पर पूरा हो जाना चाहिये था और सप्तम अध्याय छठवें अध्यायके 'शौनक उवाच' से प्रारम्भ होकर यदि सप्तम अध्यायके अन्ततक एक साथ रहता तो वेद-पुराणादिका वर्णन एक साथ एक अध्यायमें हो जाता और किसी भ्रमको भी अवकाश नहीं होता।

अध्यायोंके सम्बन्धमें यह बात भागवतके विद्वानों द्वारा विचारणीय है। अपनी ओरसे ऐसे बड़े परिवर्तनका दुःसाहस मैंने नहीं किया है।

दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध) अध्याय ६० का श्लोक ५६ मुझे प्रक्षिप्त लगता है। इस एक श्लोकके कारण पूरा अध्याय ही असङ्गत हो गया है। इसमें 'तद्वधमक्षगोष्ठ्याम्' कहता है कि यह रुक्मिणी-परिहास अनिरुद्ध-विवाहके भी पश्चात् हुआ। पौत्रके भी विवाहित हो जानेके पश्चात् ऐसा परिहास सङ्गत नहीं हो सकता। फिर महाभारत युद्धके समय रुक्मी जीवित था। इस परिहासमें श्रीकृष्ण रुक्मिणीको जिन नरेशोंमें-से किसीके पास जानेको कहते हैं, वे सब बहुत पहिले मारे जा चुके हैं। यह बात रुक्मिणीसे अज्ञात नहीं होगी। तब उन्हें इस परिहाससे हँसी आती या वे मूर्छित होतीं? इस एक श्लोकको छोड़ देनेसे परिहास सङ्गत हो जाता है।

इस संस्करणमें मेरी अल्पज्ञताके कारण अनेक त्रुटियाँ होंगी। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि जान-बूझकर मैंने ऐसा नहीं किया है। सूचना मिलनेपर आगामी संस्करणमें उसे सुधारा जा सकता है।

—सुदर्शनसिंह

॥ प्रथम स्कन्ध ॥

अनघ	निष्पाप (सूतजी)	धर्मशास्त्राणि	धर्मशास्त्र (स्मृति आदि)
खलु	निश्चय ही	यानि	जितने हैं
त्वया	आपने	उत	उन सबको
पुराणानि	सब पुराण	अधीतानि	पढ़ा है,
स इतिहासानि	(महाभारत, रामायणादि) इतिहास ग्रंथोंके सहित	आख्यातानि	(उनका) प्रवचन
		अपि	भी किया है ॥६॥
च	और		

यानि वेदविदां श्रेष्ठो भगवान् बादरायणः ।
अन्ये च मुनयः सूत परावरविदो विदुः ॥७॥

यानि वेद विदां श्रेष्ठः भगवान् बादरायणः अन्ये च मुनयः सूत परावर विदः विदुः ॥ ७ ॥

सूत	सूतजी !	अन्ये	दूसरे भी
वेद विदां	वेद वेत्ताओंमें	परावरविदः	लोक-परलोकका तत्त्व जाननेवाले
श्रेष्ठः	उत्तम	मुनयः	मुनिगण
भगवान्	अवतारस्वरूप	यानि	जो कुछ
बादरायणः	श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी	विदुः	जानते हैं ॥ ७ ॥
च	और		

वेत्थ त्वं सौम्य तत्सर्वं तत्त्वतस्तदनुग्रहात् ।
ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यत्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥८॥

वेत्थ त्वं सौम्य तत् सर्वं तत्त्वतः तत् अनुग्रहात् ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवः गुह्यं अपि उत ॥ ८ ॥

तत्	उनके	तत्	वह
अनुग्रहात्	अनुग्रहसे	सर्वं	सब
सौम्य	सौम्य !	तत्त्वतः	तत्त्वसे
त्वं	आप	वेत्थ	जानते हैं ।

स्निग्धस्य	स्नेह (श्रद्धा) करनेवाले	गुह्यं	छिपाने योग्य
		अपि उत	होनेपर भी
शिष्यस्य	शिष्यके लिए	ब्रूयुः	बतला देते हैं ॥ ८ ॥
गुरवः	गुरुजन		

तत्र तत्राञ्जसाऽऽयुष्मन् भवता यद्विनिश्चितम् ।
पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तन्नः शंसितुमर्हसि ॥९॥

तत्र तत्र अञ्जसा आयुष्मन् भवता यत् विनिश्चितं पुंसां एकान्ततः श्रेयः तत् नः शंसितुं अर्हसि ॥ ९ ॥

आयुष्मन्	आयुष्मन्	श्रेयः	कल्याणकारी
तत्र तत्र	उन-उन (पुराणादि) में	विनिश्चितं	विशेष रूपसे निश्चय किया है,
भवता	आपने	तत्	वह
यत्	जो	नः	हम लोगोंसे
पुंसां	पुरुषोंके लिए	शंसितुं	कहनेके
अञ्जसा	सरलतापूर्वक पाने योग्य	अर्हसि	योग्य हैं (कहनेकी कृपा करें) ॥ ९ ॥
एकान्तः	आत्यन्तिक		

प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन् युगे जनाः ।
मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ॥१०॥

प्रायेण अल्प आयुषः सभ्य कलौ अस्मिन् युगे जनाः मन्दाः सुमन्द मतयः मन्द भाग्या हि उपद्रुताः ॥ १० ॥

सभ्य	सभ्य	सुमन्द	अत्यन्त अल्प
प्रायेण	प्रायः	मतयः	बुद्धिवाले
जनाः	लोग	मन्द	अल्प
अस्मिन्	इस	भाग्या	भाग्यवाले
कलौ	कलि	हि	निश्चय ही
युगे	युगमें	उपद्रुताः	उपद्रवोंसे ग्रस्त (होंगे) ॥ १० ॥
मन्दाः	अल्पशक्ति		

भूरीणि भूरिकर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः ।
अतः साधोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य मनीषया ।
ब्रूहि नः श्रद्दधानानां येनात्मा सम्प्रसीदति ॥११॥

भूरीणि भूरि कर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः अतः साधो अत्र यत् सारं समुद्धृत्य मनीषया ब्रूहि नः श्रद्दधानानां येन आत्मा सं प्रसीदति ॥ ११ ॥

भूरीणि	बहुत-से (शास्त्र) हैं	येन	जिससे
भूरि	बहुत-से	आत्मा	अन्तःकरण
कर्माणि	कर्म हैं,	सं	भली प्रकार
विभागशः	अनेक विभागवाले	प्रसीदति	निर्मल होता है
श्रोतव्यानि	सुननेके विषय हैं;	मनीषया	बुद्धिसे
अतः	अतएव	समुद्धृत्य	(उसका) निश्चय करके
साधो	साधु स्वभाव सूतजी !	नः	हम
अत्र	इस विषयमें	श्रद्दधानानां	श्रद्धा करनेवालोंसे
यत्	जो	ब्रूहि	कहिये ॥ ११ ॥
सारं	सार हो,		

सूत जानासि भद्रं ते भगवान् सात्वतां पतिः ।
देवक्यां वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया ॥१२॥

सूत जानासि भद्रं ते भगवान् सात्वतां पतिः देवक्यां वसुदेवस्य जातः यस्य चिकीर्षया ॥ १२ ॥

सूत	सूतजी !	वसुदेवस्य	वसुदेवकी (पत्नी)
ते	आपका	देवक्यां	देवकीसे
भद्रं	कल्याण हो ।	यस्य	जिस (कार्य) की
सात्वतां	सात्वत वंशवाले या भक्तोंके	चिकीर्षया	करनेकी इच्छासे
पतिः	स्वामी	जातः	उत्पन्न हुए
भगवान	भगवान श्रीकृष्ण	जानासि	(वह आप) जानते हैं ॥ १२ ॥

तन्नः शुश्रूषमाणानामर्हस्यङ्गानुवर्णितुम् ।
यस्यावतारो भूतानां क्षेमाय च भवाय च ॥१३॥

तत् नः शुश्रूषमाणानां अर्हस्य अङ्ग अनुवर्णितुम् यस्य अवतारः भूतानां क्षेमाय च भवाय च ॥ १३ ॥

अङ्ग	प्रिय सूतजी !	च	भी (हुआ है)
यस्य	जिन (भगवान) का	ततः	वह
अवतारः	अवतार	नः	हम
भूतानां	प्राणियोंके	शुश्रूषमाणानां	सुननेकी इच्छा वालोंसे (आपको)
क्षेमाय	कल्याणके लिए	अनुवर्णितुं	वर्णन करना
च	और	अर्हस्य	चाहिये ॥ १३ ॥
भवाय	समृद्धि (उन्नति) के लिए		

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् ।
ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम् ॥१४॥

आपन्नः ससृतिं घोरां यत् नाम विवशः गृणन् ततः सद्यः विमुच्येत यत् विभेति स्वयं भयम् ॥ १४ ॥

यत्	जिन भगवानसे	नाम	नाम
स्वयं	स्वयं	विवशः	विवशतासे भी
भयं	भय भी	गृणन्	उच्चारण करके
विभेति	डरता है,	ततः	उस (नामोच्चारण) के प्रभावसे (जन्म-मरणके चक्रसे)
घोरां	अत्यन्त दारुण		
संसृतिं	जन्म-मरणके चक्रमें		
आपन्नः	पड़ा हुआ (जीव)	सद्यः	तत्काल
यत्	जिनका	विमुच्येत	छूट जाता है ॥१४॥

यत्पादसंश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः ।
सद्यः पुनन्त्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया ॥१५॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

व्यास उवाच* —

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥१॥

जन्म आदि अस्य यतः अन्वयात् इतरतः च अर्थेषु अभिज्ञः स्वराट् तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः तेजः वारि मृदां यथा विनिमयः यत्र त्रिसर्गः अमृषा धाम्ना स्वेन सदा निरस्त कुहकं सत्यं परं धीमहि ॥ १ ॥

अस्य	इस (जगतकी)	आदिकवये	ब्रह्माके
जन्म	उत्पत्ति	हृदा	हृदयमें
आदि	स्थिति, प्रलय	ब्रह्म	वेदोंको
यतः	जिस (परमात्मा) से होती है,	तेने	प्रकाश किया ।
		यत्	जिन(वेदोंके विषयमें)
अर्थेषु	(घट घटादि समस्त) पदार्थोंमें	सूरयः	बड़े विद्वान (ऋषिगण) भी
अन्वयात्	प्रविष्ट होनेसे		
च	और	मुह्यन्ति	मोह (भ्रम) में पड़ जाते हैं।
इतरतः	व्यतिरिक्त भी होनेसे (सिद्ध है ।)	तेजः	अग्नि
		वारि	जल
अभिज्ञः	ज्ञानस्वरूप (सर्वज्ञ) है।	मृदा	मिट्टी (पृथ्वी) का
स्वराट्	स्वयं प्रकाश है ।	यथा	जैसे
य	जिस (नारायण स्वरूप) ने	विनिमयः	परस्पर (भ्रान्त) प्रतीति होती है ।
		यत्र	(वैसे ही) जिसमें

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

त्रिसर्गः	(सत्त्व,रजस, तमस) तीन गुणवाला संसार	कुहकं	मायाको
		निरस्त	दूर हटाये
अमृषा	सत्य (प्रतीत हो रहा) है।	परं	(उस) परम
		सत्यं	सत्यका
स्वेन	अपने	धीमहि	(हम) ध्यान करते हैं ॥ १ ॥
धाम्ना	स्वरूपसे		
सदा	नित्य		

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥२॥

धर्मः प्रोज्झित कैतवः अत्र परमः निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवं अत्र वस्तु शिवदं ताप त्रयः उन्मूलनं श्रीमद्भागवते महामुनि कृते किं वा परैः ईश्वरः सद्यः हृदि अवरुध्यते अत्र कृतिभिः शुश्रूभिः तत्क्षणात् ॥ २ ॥

महामुनि	भगवान व्यास (अथवा श्रीनारायण)	उन्मूलनम्	समूल नष्ट करनेवाला है।
कृते	द्वारा बनाये	निर्मत्सरांणां	गुणमें दोष न देखने वाले
अत्र	इस		
श्रीमद्भागवते	श्रीमद्भागवतमें	सतां	सत्पुरुषोंके लिए
प्रोज्झित	त्यागा हुआ	शिवदं	परम कल्याणकारी
कैतवः	कपट (सकाम धर्म, अर्थवादादि)	वास्तवं	नित्य तथ्यरूप
		वस्तु	परमार्थ सत्ता
परमः	(मोक्ष रूप) आत्यन्तिक	अत्र	इस(श्रीमद्भागवतमें)
		वेद्यं	जानने योग्य है।
धर्मः	धर्म (निरूपित) है।	किं वा	अथवा क्या
तापत्रयः	(जो दैहिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) तीनों तापोंको	परैः	दूसरे किसी (साधन) से
		ईश्वरः	परमात्मा
		सद्यः	तुरन्त

हृषि	हृदयमें		रखनेवाले
अवरुध्यते	निरुद्ध होता है ? (नहीं होता)	कृतिभिः	पुण्यात्माओंका
		तत् क्षणात्	उसी क्षणमें (परमात्मामें हृदय) निरुद्ध होता है ॥२॥
अत्र	इस (श्रीमद्भागवत) को		
शुश्रूषिभिः	सुननेकी इच्छा		

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥३॥

निगम कल्पतरोः गलितं फलं शुकमुखात् अमृत द्रव संयुतं पिबत भागवतं रसं आलयं मुहुः अहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ ३ ॥

भागवतं	(यह) श्रीमद्भागवत	रसिकाः	रसज्ञ लोगों
निगम	वेद (रूपी)	भावुकाः	भक्त हृदयजनो
कल्पतरोः	कल्पवृक्षका	भुवि	पृथ्वीपर(जन्म लेकर)
गलितं	(पक कर) टपका	आलयं	मृत्यु पर्यन्त अथवा बार-बार जन्म लेते हुए प्रलय पर्यन्त
फलं	फल है ।		
शुकमुखात्	तोतेका मुख लगनेसे (शुकदेवजीके मुखसे निकलनेके कारण)	रसं	(इस श्रीमद्भागवत रूपी) रसको
		पिवत	(बार-बार) पीते रहो ॥ ३ ॥
अमृत द्रव	अमृत रससे		
संयुतं	युक्त हो गया है ।		
अहो	हे		

नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः ।
सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥४॥

नैमिषे अनिमिष क्षेत्रे ऋषयः शौनक आदयः सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्र समं आसत ॥ ४ ॥

अनिमिष क्षेत्रे	वैष्णव क्षेत्र	शौनकादयः	शौनक आदि
नैमिषे	नैमिषारण्यमें	ऋषयः	ऋषिगण

स्वर्गाय लोकाय	स्वर्ग लोक(भगवद्धाम या महः, जनः, तपः, सत्यादि ऋषि लोक)[1] की कामनासे	सहस्र समं आसत	एक सहस्र वर्षका(संकल्प करके) स्थित हुए थे ॥ ४ ॥

त एकदा तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः ।
सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥५॥

त एकदा तु मुनयः प्रातः हुत हुताग्नयः सत्कृतं सूतं आसीनं प्रपच्छुः इदं आदरात् ॥ ५ ॥

त	वे (शौनकादि)	आसीनं	बैठे हुए
मुनयः	मुनिगण	सूतं	रोमहर्षणके पुत्र सूत उग्रश्रवासे
एकदा तु	एकबार तो	आदरात्	आदरपूर्वक
प्रातः	सवेरे	इदं	यह
हुताग्नयः	हवनीय अग्निमें	प्रपच्छुः	पूछने लगे ॥ ५ ॥
हुतः	हवन करके		
सत्कृतं	सत्कार पाये हुए		

शौनक उवाच[2]—

त्वया खलु पुराणानि सेतिहासानि चानघ ।
आख्यातान्यप्यधीतानि धर्मशास्त्राणि यान्युत ॥६॥

त्वया खलु पुराणानि स इतिहासानि च अनघ आख्यातानि अपि अधीतानि धर्मशास्त्राणि यानि उत ॥ ६ ॥

---

[1] श्रीधर स्वामीने और दूसरे भी अधिकांश टीकाकारोंने 'स्वर्गाय लोकाय' का अर्थ 'भगवद्धाम प्राप्तिके लिए' किया है; किन्तु भगवद्धाम पानेके लिए यज्ञ करनेका न कहीं विधान है, न कोई उल्लेख है। इसी स्कन्धके अध्याय १८ का श्लोक १२ देखना चाहिये। उसमें यही ऋषि लोग अपने यज्ञीय कर्मको आश्वासनहीन तथा चित्तको धूम्र कलुषित करनेवाला कहते हैं।

[2] अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषय ऊचुः' पाठ है।

यत् पाद संश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः सद्यः पुनन्ति उपस्पृष्टाः स्वर्धुनी आपः अनुसेवया ॥ १५ ॥

सूत	सूतजी !	सद्यः	तत्काल
यत्	जिनके	पुनन्ति	पवित्र कर देते हैं ।
पाद	चरणोंका	स्वर्धुनी	गंगाजीका
संश्रयाः	आश्रय लेनेवाले	आपः	जल तो
प्रशमायनाः	परम शान्तिके निवास	अनुसेवया	बार-बार सेवन करनेपर (पवित्र) करता है ॥ १५ ॥
मुनयः	मुनिगण		
उपस्पृष्टाः	सम्पर्कमें आये हुएको		

को वा भगवतस्तस्य पुण्यश्लोकेड्यकर्मणः ।
शुद्धिकामो न शृणुयाद्यशः कलिमलापहम् ॥१६॥

कः वा भगवतः तस्य पुण्यश्लोक ईड्य कर्मणः शुद्धिकामः न शृणुयात् यशः कलिमलापहम् ॥ १६ ॥

शुद्धिकामः	अपनी शुद्धि चाहने वाला	कर्मणः	कर्म करनेवाले
वा	भला	भगवतः	भगवानके
कः	कौन	कलिमलायहं	कलियुगके दोषको नष्ट करनेवाले
तस्य	उन	यशः	सुयशको
पुण्य-श्लोक	पवित्र कीर्ति	न	नहीं
ईड्य	स्तुति करने योग्य	शृणुयात्	श्रवण करेगा ॥१६॥

तस्य कर्माण्युदाराणि परिगीतानि सूरिभिः ।
ब्रूहि नः श्रद्दधानानां लीलया दधतः कलाः ॥१७॥

तस्य कर्माणि उदाराणि परिगीतानि सूरिभिः ब्रूहि नः श्रद्दधानानां लीलया दधतः कलाः ॥ १७ ॥

लीलया	लीलासे	दधतः	धारण करते हुए
कलाः	कलाओंको (अवतारोंको)	तस्य	उन (भगवान)के
		उदाराणि	उदार

कर्माणि	चरितोंका	नः	हम
सूरिभिः	बहुत बड़े(नारदादि) विद्वानोंने	श्रद्दधानानां	श्रद्धा करनेवालोंके प्रति
परिगीतानि	बार-बार गान किया है।	ब्रूहि	(उनका) वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥

अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः ।
लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया ॥१८॥

अथ आख्याहि हरेः धीमन् अवतार कथाः शुभाः लीला विदधतः स्वैरं ईश्वरस्य आत्ममायया ॥ १८ ॥

धीमन्	बुद्धिमान (सूतजी) !	हरेः	श्रीहरिकी
आत्ममायया	अपनी योगमायासे	शुभाः	परम मंगलमयी
स्वैरं	स्वच्छन्द रूपसे	अवतार	अवतार
लीला	लीलाका	कथा	कथाका
विदधतः	विशेष रूपसे धारण करनेवाले	अथ	अब
		आख्याहि	वर्णन कीजिये ॥१८॥
ईश्वरस्य	(उन) सर्वसमर्थ		

वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे ।
यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे ॥१९॥

वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोक विक्रमे यत् शृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे ॥ १९ ॥

उत्तमश्लोक	उत्तम यशवाले (भगवानके)	तत्	जिन
		रसज्ञानां	रसज्ञ
विक्रमे	पराक्रम (सुनने) में	शृण्वतां	श्रोताओंको
वयं तु	हम लोग तो	पदे पदे	प्रत्येक पदमें
वितृप्याम	विशेष तृप्त होते	स्वादु स्वादु	अत्यन्त स्वाद प्रतीत होता है ॥१९॥
न	नहीं हैं।		

कृतवान् किल वीर्याणि सह रामेण केशवः ।
अतिमर्त्यानि भगवान् गूढः कपटमानुषः ॥२०॥

कृतवान् किल वीर्याणि सह रामेण केशवः अतिमर्त्यानि भगवान् गूढः कपट मानुषः ॥ २० ॥

गूढः	छिपे हुए	सह	साथ
कपट	मायासे	किल	आश्चर्यजनक
मानुषः	मनुष्य बने	अतिमर्त्यानि	मनुष्यकी शक्ति-सीमासे बाहरके
भगवान	सर्वसमर्थ		
केशवः	श्रीकृष्णने	वीर्याणि	पराक्रम
रामेण	श्रीबलरामके	कृतवान्	किये हैं ॥२०॥

कलिमागतमाज्ञाय क्षेत्रेऽस्मिन् वैष्णवे वयम् ।
आसीना दीर्घसत्रेण कथायां सक्षणा हरेः ॥२१॥

कलिं आगतं आज्ञाय क्षेत्रे अस्मिन् वैष्णवे वयं आसीना दीर्घसत्रेण कथायां सक्षणाः हरेः ॥ २१ ॥

कलिं	कलियुगको	दीर्घसत्रेण	दीर्घकालीन सत्रके लिए
आगतं	आया		
आज्ञाय	जानकर	आसीना	बैठ गये हैं ।
वयं	हम लोग	हरेः	श्रीहरिकी
अस्मिन्	इस	कथायां	कथा (सुनने)के लिए
वैष्णवे	वैष्णव	सक्षणाः	(हमारे पास) बहुत अवकाश है ॥ २१ ॥
क्षेत्रे	तीर्थमें		

स्वं नः संदर्शितो धात्रा दुस्तरं निस्तितीर्षताम् ।
कलिं सत्त्वहरं पुंसां कर्णधार इवार्णवम् ॥२२॥

स्वं नः संदर्शितः धात्रा दुस्तरं निस्तितीर्षताम् कलिं सत्त्वहरं पुंसां कर्णधार इव अर्णवम् ॥ २२ ॥

पुंसां	पुरुषोंकी	दुस्तरं	दुस्तर
सत्त्वहरं	सत्व (शक्ति) को हरण कर लेनेवाले	कलि	कलियुग रूपी
		अर्णवं	समुद्रको

निस्तितीर्षतां	पार करनेकी इच्छावाले	कर्णधार	कर्णधारके
		इव	समान
नः	हम सबको	संदर्शितः	दिखलाया (मिलाया) है ॥२२॥
धात्रा	ब्रह्माजीने		
त्वं	आपको		

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि ।
स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥२३॥

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि स्वां काष्ठां अधुना उपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥ २३ ॥

योगेश्वरे	योगेश्वर,	उपेते	चले जानेपर
ब्रह्मण्ये	ब्राह्मणोंके भक्त,	धर्मः	धर्म
धर्मवर्मणि	धर्मके रक्षक	कं	किसकी
कृष्णे	श्रीकृष्णके	शरणं	शरणमें
अधुना	इस समय	गतः	गया है—
स्वां	अपने	ब्रूहि	यह बतलाइये ॥२३॥
काष्ठां	धाममें		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः

अथ द्वितीयोऽध्यायः

व्यास उवाच–

इति सम्प्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः ।
प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१॥

इति सम्प्रश्न संहृष्टः विप्राणां रौमहर्षणिः प्रतिपूज्य वचः तेषां प्रवक्तुं उपचक्रमे ॥ १ ॥

इति	इस प्रकार	वचः	वाणी (प्रश्न) का
विप्राणां	शौनकादि ऋषियोंके	प्रतिपूज्य	भली प्रकार आदर करके
सम्प्रश्न	भली प्रकार पूछनेसे		
संहृष्टः	अत्यन्त प्रसन्न होकर	प्रवक्तुं	बोलने(प्रवचन करने) को
रौमहर्षणिः	रोमहर्षणजीके पुत्र उग्रश्रवा सूत	उपचक्रमे	उपक्रम करने लगे ॥ १ ॥
तेषां	उन (ऋषियों) के		

सूत उवाच–

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥२॥

यं प्रव्रजन्तं अनुपेतं अपेत कृत्यं द्वैपायनः विरह-कातरः आजुहाव पुत्रेति तन्मय तया तरवः अभिनेदुः तं सर्वभूत हृदयं मुनिं आनतः अस्मि ॥२॥

मङ्गलाचरण करते सूतजी कहते हैं—

अनुपेतं	यज्ञोपवीत (संस्कार) नहीं हुआ था, तभी	कृत्यं अपेत	(कोई वैदिक) कर्म किये बिना

प्रव्रजन्तं	परिव्राजक बनकर जाते हुए	तरवः	वृक्ष समूह
यं	जिन (शुकदेवजी)को	अभिनेदुः	चारों ओरसे(जिनकी ओरसे) उत्तर देने लगे,
विरह-	वियोगमें		
कातरः	व्याकुल होकर	तं	उन
द्वैपायनः	भगवान श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासजी	सर्वभूत हृदयं	सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित अन्तर्यामी स्वरूप
पुत्रेति	हे पुत्र ! हे पुत्र !!		
आजुहाव	पुकारने लगे	मुनिं	मुनि श्रीशुकदेवजीको
तन्मयतया	(सर्व व्यापक भगवानसे)तन्मय होनेके कारण	अस्मि आनतः	हम प्रणाम करते हैं ॥२॥

यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेकम्
अध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोऽन्धम् ।
संसारिणां करुणयाऽऽह पुराणगुह्यं
तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥३॥

यः स्वानुभावं अखिल श्रुतिसारं एकं अध्यात्म दीपं अतितितीर्षतां तमः अन्धं संसारिणां करुणया आह पुराणं गुह्यं तं व्याससूनुं उपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥ ३ ॥

तमः	(अज्ञान रूपी) घोर	श्रुतिसारं	श्रुतियों (वेदशास्त्रों) का तात्पर्य रूप
अन्धं	अन्धकारसे		
अतितितीर्षतां	आत्यन्तिक पार जानेकी इच्छावाले	एकं	एकमात्र
		अध्यात्म	अध्यात्म तत्त्वको
संसारिणां	सांसारिक लोगोंपर	दीपं	प्रकाशित करनेवाले दीपकके समान
करुणया	करुणा करके		
यः	जिन्होंने	गुह्यं	(अत्यन्त) गोपनीय
स्वानुभावं	अपने अनुभवस्वरूप	पुराण	पुराण श्रीमद्भागवत को
अखिल	समस्त		

आह	सुनाया	व्याससुनुं	व्यास-नन्दन (शुकदेव) जी की
न	उन		
मुनीनां	मुनियोंके भी	उपयाम	(मैं) शरण-ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥
गुरु	गुरु (सर्वश्रेष्ठ)		

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥४॥

नारायणं नमः कृत्य नरं च एव नरोत्तमं देवीं सरस्वतीं व्यासं ततः जयं उदीरयेत् ॥ ४ ॥

नारायणं	(ऋषि रूपमें अवतीर्ण) भगवान नारायणको,	च	और
		व्यासं	(भागवतके कर्ता) भगवान व्यासको
नरोत्तमं	मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ (नारायणके सखा)	एव	भी
		नमः	नमस्कार
नरं	नरको,	कृत्य	करके
देवीं	देवी	ततः	तब
सरस्वतीं	(विद्या एवं वाणीकी अधिदेवता) सरस्वती	जयं	जय
		उदीरयेत्	बोले (जयकार करे।)* ॥ ४ ॥

मुनयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमङ्गलम् ।
यत्कृतः कृष्णसंप्रश्नो येनात्मा सुप्रसीदति ॥५॥

मुनयः साधु पृष्टः अहं भवद्भिः लोक-मङ्गलं यत् कृतः कृष्ण-सम्प्रश्नः येन आत्मा सुप्रसीदति ॥ ५ ॥

मुनयः	मुनियों !	अहं	मैं
भवद्भिः	आप लोगों द्वारा	लोक-मंगलं	लोक-मंगलकारी

* टीकाकारोंने 'जयमुदीरयेत्' का अर्थ 'भागवतका पाठ करे' किया है, किन्तु यह श्लोक महाभारतमें तथा सब पुराणोंमें है। अतः इसका अर्थ यह है कि नारायण, नर, सरस्वती तथा व्यासजीको नमस्कारके बाद उनका जयकार करे।

साधु	उत्तम ढंगसे	कृतः	(आपने) किया है।
पृष्टः	पूछा गया हूँ।	येन	जिससे
यत्	क्योंकि	आत्मा	अन्तःकरण
कृष्ण-सम्प्रश्नः	श्रीकृष्णके सम्बन्धमें सम्यक् प्रश्न	सुप्रसीदति	भली प्रकार निर्मल हो जाता है ॥५॥

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति ॥६॥

स वै पुंसां परः धर्मः यतः भक्तिः अधोक्षजे अहैतुकी अप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति ॥ ६ ॥

पुंसा	पुरुषोंका	अप्रतिहता	कभी खण्डित न होनेवाली
वै	निश्चय ही	भक्तिः	भक्ति हो,
स	वही	यया	जिसके द्वारा
परः	परम	आत्मा	अन्तःकरण
धर्मः	धर्म है,	सम्प्रसीदति	भली प्रकार निर्मल हो जाता है ॥ ६ ॥
यतः	जिससे		
अधोक्षजे	अन्तर्यामी भगवानमें		
अहैतुकी	निष्काम		

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम् ॥७॥

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः जनयति आशु वैराग्यं ज्ञानं च यत् अहैतुकम् ॥ ७ ॥

भगवति	भगवान्	च	और
वासुदेवे	वासुदेवमें	यत्	जो
प्रयोजितः	करने (लगाने) पर	अहैतुकं	कर्म-कारण रहित
भक्तियोगः	भक्तियोग	ज्ञानं	ज्ञान है (उसको)
आशु	शीघ्र	जनयति	उत्पन्न कर देता है ॥ ७ ॥
वैराग्यं	वैराग्यको		

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥८॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः न उत्पादयेत् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥ ८ ॥

यदि	यदि	**रतिं**	प्रीति
पुंसां	पुरुषोंके द्वारा	**उत्पादयेत्**	उत्पन्न
स्वनुष्ठितः	विधिवत् आचरित	**न**	नहीं करे,
यः	जो	**हि**	निश्चय ही
धर्मः	धर्म	**केवलं**	(यह) केवल
विष्वक्सेन	भगवान् श्रीहरिकी	**श्रम**	परिश्रम
कथासु	कथामें	**एव**	मात्र है ॥८ ॥

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥९॥

धर्मस्य हि आपवर्ग्यस्य न अर्थः अर्थाय उपकल्पते न अर्थस्य धर्म-एकान्तस्य कामः लाभाय हि स्मृतः ॥ ९ ॥

हि	निश्चय ही	**अर्थस्य**	धनका प्रयोजन
धर्मस्य	धर्मका	**हि**	निश्चय ही
आपवर्ग्यस्य	(फल) मोक्ष है,	**धर्म-एकान्तस्य**	एकमात्र धर्म (बतलाया गया) है
अर्थः	(उसका) प्रयोजन	**कामः**	भोगोंकी
अर्थाय	धन पानेके लिए	**लाभाय**	प्राप्ति
न	नहीं	**न**	नहीं ॥ ९ ॥
उपकल्पते	माना गया है।		
स्मृतः	शास्त्रोंमें		

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥१०॥

कामस्य न इन्द्रिय प्रीतिः लाभः जीवेत यावता जीवस्य तत्त्व-जिज्ञासा न अर्थः यः च इह कर्मभिः ॥ १० ॥

कामस्य	भोगोंका (प्रयोजन)
इन्द्रिय	इंन्द्रियोंको
प्रीतिः	प्रसन्न करना
न	नहीं है।
लाभः	इन (भोगोंका) लाभ (प्रयोजन)
जीवेत	जीवन धारण हो—
यावता	उतना ही है।
जीवस्य	जीवन धारणका (प्रयोजन)
तत्त्व-जिज्ञासा	परमतत्त्वको जाननेकी इच्छा होना है।
इह	इस संसारमें
कर्मभिः	कर्मोंके द्वारा
यश्च	जो कुछ होता या जो स्वर्गादि मिलता है
अर्थः	(वह) प्रयोजन
न	नहीं है ॥ १० ॥

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥११॥

वदन्ति तत् तत्त्वविदः तत्त्वं यत् ज्ञानं अद्वयं ब्रह्म इति परमात्मा इति भगवान् इति शब्द्यते ॥ ११ ॥

तत्त्वविदः	तत्त्ववेत्ता लोग
यत्	जो
अद्वयं	अद्वितीय
ज्ञानं	ज्ञान है
तत्	उसे
तत्त्वं	तत्त्व
वदन्ति	कहते हैं
ब्रह्म इति	(वही) ब्रह्मके नामसे
परमात्मा इति	परमात्माके नामसे
भगवान् इति	भगवान्‌के नामसे
शब्द्यते	कहा जाता है ॥११॥

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया ।
पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया ॥१२॥

तत् श्रद्दधाना मुनयः ज्ञान वैराग्य युक्तया पश्यन्ति आत्मनि च आत्मानं भक्त्या श्रुत गृहीतया ॥ १२ ॥

श्रद्दधाना	श्रद्धावान
मुनयः	मुनिगण
ज्ञान	ज्ञान
वैराग्य	वैराग्यसे
युक्तया	संयुक्त
श्रुत	(वेद-पुराणादि) श्रवणसे
गृहीतया	ग्रहण (उत्पन्न) हुई
भक्त्या	भक्तिके द्वारा

तत्	उस	आत्मनि च	अपने अन्तःकरणमें ही
आत्मानं	आत्माको	पश्यन्ति	देखते हैं ॥१२॥

अतः पुम्भिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः ।
स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ॥१३॥

अतः पुंभिः द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रम विभागशः स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिः हरि तोषणम् ॥ १३ ॥

द्विजश्रेष्ठाः	ब्राह्मणोत्तमो !	स्वनुष्ठितस्य	विधिवत् आचरण (पालन) करनेकी
अतः	इसलिए	संसिद्धिः	परम सफलता
पुंभिः	पुरुषोंके द्वारा	हरि	श्रीहरिको
वर्णाश्रम	वर्णों और आश्रमोंके	तोषणम्	सन्तुष्ट करना ही है ॥ १३ ॥
विभागशः	विभागके अनुसार		
धर्मस्य	धर्मके		

तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥१४॥

तस्मात् एकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः श्रोतव्यः कीर्तितव्यः च ध्येयः पूज्यः च नित्यदा ॥ १४ ॥

तस्मात्	इसलिए	कीर्तितव्यः	कीर्तन करने योग्य हैं
एकेन	एकाग्र	च	और
मनसा	मनके द्वारा	ध्येयः	ध्यान करने योग्य हैं
सात्वतां	भक्तोंके	च	और
पतिः	स्वामी	नित्यदा	सदा
भगवान्	भगवान् ही	पूज्यः	पूजन करने योग्य हैं ॥ १४ ॥
श्रोतव्यः	सुनने योग्य है,		

एवमुद्व्यासिता युक्ताः कर्मग्रन्थिनिबन्धनम् ।
छिन्दन्ति कोविदास्तस्य को न कुर्यात्कथारतिम् ॥१५॥

यत् अनुध्या असिना युक्ताः कर्मग्रन्थि निबन्धनं छिन्दन्ति कोविदाः तस्य कः न कुर्यात् कथा रतिम् ॥ १५ ॥

युक्ताः	(भगवानमें) चित्त लगाये लोग	कर्मग्रन्थि	कर्मोंकी गाँठको
		छिन्दन्ति	काट देते हैं,
यत्	जिनके	कः	(तब भला) कौन
अनुध्या	बराबर चिन्तन (ध्यान) रूपी	कोविदाः	चतुर (बुद्धिमान्)
		तस्य	उन (भगवान्) की
असिना	तलवारसे	कथा	कथामें
निबन्धनं	बहुत कठोरतासे बँधी	रतिं	प्रीति
		न कुर्यात्	नहीं करेगा ॥१५॥

शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः ।
स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् ॥१६॥

शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेव कथा रुचिः स्यात् महत् सेवया विप्राः पुण्य तीर्थ निषेवणात् ॥ १६ ॥

विप्राः	ब्राह्मणो !	श्रद्धया	श्रद्धा होनेपर,
पुण्य	पवित्र	महत्	महापुरुषोंकी
तीर्थ	तीर्थका	सेवया	सेवासे
निषेवणात्	भली प्रकार सेवन करनेसे,	वासुदेव	भगवान श्रीकृष्णकी
		कथा	कथामें
शुश्रूषोः	सुननेकी इच्छा होनेसे,	रुचि	रुचि
		स्यात्	होती है ॥ १६ ॥

शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥१७॥

शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्य श्रवण कीर्तनः हृदि अन्तःस्थः हि अभद्राणि विधुनोति सुहृत् सताम् ॥ १७ ॥

श्रवण	(जिनकी लीला, गुण) सुनना,	कीर्तनः	कीर्तन करना
		पुण्य	पवित्र करनेवाला

साधूनां	सज्जनोंके	अन्तस्थः	भीतर स्थित होकर
एकान्त	अकारण हितैषी	हि	निश्चय ही
कृष्ण	श्रीकृष्ण	अभद्राणि	अमंलकारी संस्कारोंको
कथामृत	अपनी कथाकी	विधुनोति	विशेषतः (समूल)
शुश्रूषतां	सुननेवालोंके		नष्ट कर देते हैं ।१७।
हृदि	हृदयके		

नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया ।
भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥१८॥

नष्टप्रायेषु अभद्रेषु नित्यं भागवत सेवया भगवति उत्तमश्लोके भक्तिः भवति नैष्ठिकी ॥ १८ ॥

अभद्रेषु	अमंगल संस्कारोंके	सेवया	सेवनसे
नष्टप्रायेषु	प्रायः (बहुत कुछ) नष्ट हो जानेपर	उत्तमश्लोके	पवित्र कीर्ति भगवानमें
नित्यं	सदा	भगवति	निष्ठायुक्त
भागवत	श्रीमद्भागवत या भगवद्-भक्तोंके	नैष्ठिकी	भक्ति
		भक्तिः	होती है ॥ १८ ॥
		भवति	

तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये ।
चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति ॥१९॥

तदा रजः तमः भावाः काम लोभ आदयः च ये **चेत** एतैः अनाविद्धं **स्थितं सत्त्वे प्रसीदति** ॥ १९ ॥

तदा	तब	आदयः	आदि (क्रोध, मोह, मद, मत्सर) हैं ।
रजः	रजोगुणके		
च	और	एतैः	इन सबसे
तमः	तमोगुणके	चेत	चित्त
ये	जो	अनाविद्धं	अप्रभावित होकर
भावाः	मनोभाव	सत्त्वे	सत्वगुणमें
काम	वासना,	स्थितं	स्थित होकर
लोभ	लोभ	प्रसीदति	निर्मल हो जाता है ॥ १९ ॥

एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः ।
भगवत्तत्त्वविज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते ॥२०॥

एवं प्रसन्न मनसः भगवत् भक्तियोगतः भगवत् तत्त्व-विज्ञानं मुक्त-सङ्गस्य जायते ॥ २० ॥

एवं	इस प्रकार	भगवत्	भगवानके
भगवत्	भगवानके	तत्त्व-विज्ञानं	तत्त्व (स्वरूप) का विज्ञान
भक्तियोगतः	भक्तियोगसे	जायते	उत्पन्न हो जाता है ॥ २० ॥
प्रसन्न	निर्मल		
मनसः	चित्तवाले		
मुक्तसङ्गस्य	आसक्ति हीनको		

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥२१॥

भिद्यते हृदय ग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्व संशयाः क्षीयन्ते च अस्य कर्माणि दृष्ट एव आत्मनि ईश्वरे ॥ २१ ॥

अस्य	इस (भवावतत्त्वं ज्ञानी) के	छिद्यन्ते	कट जाते हैं,
		च	और
हृदय	हृदयकी	आत्मनि	अपने (हृदयमें)
ग्रन्थि	गाँठ (अविद्या)	एव	ही
भिद्यते	नष्ट हो जाती है,	ईश्वरे	परमात्माका
		दृष्टे	साक्षात्कार होनेपर
सर्वे	सब	कर्माणि	सब कर्म-संस्कार
संशयाः	सन्देह	क्षीयन्ते	नष्ट हो जातेहैं ॥२१॥

अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा ।
वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादनीम् ॥२२॥

अतः वै कवयः नित्यं भक्तिं परमया मुदा वासुदेवे भगवति कुर्वन्ति आत्म प्रसादनीम् ॥ २२ ॥

अतः		वासुदेवे	वासुदेवमें
निश्चयपूर्वक		आत्म	अन्तःकरणको
बुद्धिमान लोग		प्रसादनीम्	निर्मल करनेवाली
सदा		परमया	परमा (साध्यरूपा)
प्रसन्नतापूर्वक		भक्ति	भक्ति
भगवान		कुर्वन्ति	करते हैं ॥ २॥

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तै-
र्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते ।
स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञाः
श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः ॥२३॥

सत्त्वं रजः तम इति प्रकृतेः गुणाः तैः युक्तः परः पुरुष एक इह अस्य धत्ते स्थिति आदये हरि विरिञ्चि हर इति संज्ञाः श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्व तनोः नृणां स्युः ॥ २३ ॥

सत्त्व,		आदये	आदि (उत्पत्ति, संहार) के लिए
रज,		हरि	नारायण,
तम ।		विरिञ्चि	ब्रह्मा,
ये		हर	शिव
प्रकृतिके		इति	ये
गुण हैं ।		संज्ञाः	नाम
उनसे		धत्ते	धारण करते हैं ।
युक्त होकर		तत्र	इनमें
एक ही		नृणां	मनुष्योंके लिए
परम		श्रेयांसि	परम कल्याणकारी
पुरुष		खलु	निश्चय ही
इस (संसार) में		सत्त्व	सत्त्व गुणवाले
इस (सृष्टि) की		तनोः	स्वरूप (श्रीहरि)
स्थिति		स्युः	हैं ॥२३॥

पार्थिवादारुणो धूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः ।
तमसस्तु रजस्तस्मात्सत्त्वं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥२४॥

पार्थिवात् दारुणः धूमः तस्मात् अग्निः त्रयीमयः तमसः तु रजसः तस्मात् सत्त्व यत् ब्रह्म दर्शनम् ॥ २४ ॥

पार्थिवात्	पृथ्वीसे उत्पन्न काष्ठसे	तमसः	तमोगुण से
धूमः	धुआँ	तु	
दारुणः	प्रबल है,	रजसः	रजोगुण
तस्मात्	उससे	तस्मात्	उससे
त्रयीमयः	(कर्म, उपासना, ज्ञानात्मक) वेदोंका आधार	सत्त्वं	सत्त्वगुण (प्रबल है)
		यत्	जिससे
		ब्रह्म	परमात्माका
अग्निः	अग्नि (प्रबल) है, (वैसे हो)	दर्शनम्	साक्षात्कार होता है ॥२४॥

भेजिरे मुनयोऽथाग्रे भगवन्तमधोक्षजम् ।
सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पन्ते येऽनु तानिह ॥२५॥

भेजिरे मुनयः अथ अग्रे भगवन्तं अधोक्षजं सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पन्ते ये अनु तान् इह ॥ २५ ॥

अग्रे	प्राचीनकालमें	इह	संसारमें
मुनयः	मुनिगण	अथ	अतः
क्षेमाय	(अपने) कल्याणके लिए	ये	जो लोग
		तान्	उन (प्राचीन मुनिगणोंका)
विशुद्धं	अत्यन्त शुद्ध	अनु	अनुसरण करनेवाले
सत्त्वं	सत्त्व स्वरूप	कल्पन्ते	(वैसी ही) भावना करते हैं ॥२५॥
भगवन्तं	भगवान्		
अधोक्षजं	हृषीकेषका		
भेजिरे	भजन करते थे		

मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।
नारायणकलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः ॥२६॥

मुमुक्षवः घोररूपान् हित्वा भूतपतीन् अथ नारायण कलाः शान्ताः भजन्ति हि अनसूयवः ॥ २६ ॥

[illegible]	अतः	अनसूयवः	किसीके भी गुणोंमें दोष न देखते हुए
[illegible]	जन्म-मरणसे छूटनेकी इच्छावाले,	नारायण	विष्णु भगवान
[illegible]	उग्र स्वरूपवाले	कलाः	(और) उनके अंश
[illegible]	भूत-प्रेतोंके स्वामियोंको	शान्ताः	शान्त स्वरूपोंका
[illegible]	छोड़कर	हि	निश्चयपूर्वक
		भजन्ति	भजन करते हैं ।२६।

रजस्तमः प्रकृतयः समशीला भजन्ति वै ।
पितृभूतप्रजेशादीन् श्रियैश्वर्यप्रजेप्सवः ॥२७॥

रजः तमः प्रकृतयः समशीलाः भजन्ति व पितृ भूत प्रजेश आदीन् श्रियः ऐश्वर्य प्रजा इप्सवः ॥ २७ ॥

[illegible]	लक्ष्मी,	समशीलाः	अपने शीलके समानवाले
[illegible]	ऐश्वर्य,	पितृ	पितर
[illegible]	सन्तानकी	भूत	प्रेत
[illegible]	चाहनेवाले	प्रजेश	प्रजापति
[illegible]	रजोगुण	आदीन्	आदि (देवता, गन्धर्व) का
[illegible]	तमोगुणके स्वभाववाले	भजन्ति	भजन करते हैं ।२७।
[illegible]	तो		

वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः ।
वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः ॥२८॥

वासुदेव पराः वेदा वासुदेव पराः मखाः वासुदेव परा योगाः वासुदेव पराः क्रियाः ॥ २८ ॥

[illegible]	सब वेद	वासुदेव	श्रीहरिके ही
[illegible]	श्रीकृष्णके	पराः	लिए होते हैं,
[illegible]	प्रतिपादक हैं,	योगाः	सब योग-साधनाएँ
[illegible]	सब यज्ञ	वासुदेव	भगवान हृषीकेशकी

पराः	प्राप्तिके लिए ही हैं,	वासुदेव	पुरुषोत्तमके
क्रियाः	सब (श्रेष्ठ) कर्म	पराः	लिए ही होते हैं ।२८।

वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः ।
वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः ॥२९॥

वासुदेव परं ज्ञानं वासुदेव परं तपः वासुदेव परः धर्मः वासुदेव परा गतिः ॥ २९ ॥

वासुदेव	श्रीहरि ही	वासुदेव	वासुदेव ही
परं ज्ञानं	परम ज्ञान स्वरूप हैं,	परः धर्मः	परम धर्म हैं,
वासुदेव	वे जनार्दन ही	वासुदेव	अच्युत ही
परं तपः	तपस्याके परम प्राप्य हैं,	परा गतिः	परम गति हैं ॥२९॥

स एवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया ।
सदसद्रूपया चासौ गुणमय्यागुणो विभुः ॥३०॥

स एव इदं ससर्ज अग्रे भगवान् आत्ममायया सत्-असत् रूपया च असौ गुणमय्या अगुणः विभुः ॥ ३० ॥

स एव	उन्हीं	च	और
अगुणः	निर्गुण	गुणमय्या	(सत्व, रज, तम) गुणमयी
विभुः	सर्वव्यापक	असौ	इस
भगवान्	भगवानने	आत्ममायया	अपनी मायाके द्वारा
अग्रे	पहिले	इदं	इस (संसार) की
सत्-असत् रूपया	कार्य रूपसे सत्,वस्तुतः असत् रूपवाली	ससर्ज	सृष्टिकी ॥३०॥

तया विलसितेष्वेषु गुणेषु गुणवानिव ।
अन्तःप्रविष्ट आभाति विज्ञानेन विजृम्भितः ॥३१॥

तया विलसितेषु एषु गुणेषु गुणवान् इव अन्तः प्रविष्टः आभाति विज्ञानेन विजृम्भितः ॥ ३१ ॥

विज्ञानेन	अपने परम ज्ञान स्वरूपमें	गुणेषु	(सत्त्व, रज, तम) गुणोंमें
विजृम्भितः	विशेष रूपसे प्रकाशित (स्थित होनेपर भी)	अन्तः	भीतर
		प्रविष्टः	प्रवेश किये (होनेसे)
तया	उस (मायाके)	गुणवान	गुणवाले
विलसितेषु	विलास रूप	इव	जैसे
एषु	इन	आभाति	प्रतीत होते हैं ॥३१॥

यथा ह्यवहितो वह्निदारुष्वेकः स्वयोनिषु ।
नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ॥३२॥

यथा हि अवहितः वह्निः दारुषु एकः स्व योनिषु नाना इव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ॥ ३२ ॥

यथा	जैसे	इव	की भाँति
वह्निः	अग्नि	भाति	प्रतीत होता है
एकः	एक ही है	तथा	वैसे ही
हि	लेकिन	भूतेषु	प्राणियोंमें
दारुषु	लकड़ियोंमें	च	भी
अवहितः	प्रकट होकर	पुमान्	पुरुष (जीव रूपसे स्थित)
स्व	अपने		
योनिषु	प्रकट होनेके आधारके कारण	विश्वात्मा	विश्वरूप परमात्मा (नाना प्रतीत होता है) ॥३२॥
नाना	अनेक		

असौ गुणमयैर्भावैर्भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मभिः ।
स्वनिर्मितेषु निर्विष्टो भुङ्क्ते भूतेषु तद्गुणान् ॥३३॥

असौ गुणमयैः भावैः भूतसूक्ष्म इन्द्रियादिभिः स्व निर्मितेषु निर्विष्टः भुङ्क्ते भूतेषु तद् गुणान् ॥ ३३ ॥

असौ	यह परमात्मा ही	निर्मितेषु	बनाये हुए
स्व	अपने	गुणमयैः	(सत्व, रज, तम)

	गुणमय
भावैः	स्वरूपोंसे
भूतेषु	सब प्राणि-पदार्थोंमें
निविष्टः	प्रविष्ट होकर
भूत सूक्ष्म	(शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध) तन्मात्राओं
इन्द्रियादिभिः	(तथा) इन्द्रियोंके द्वारा
तद्	उनके
गुणान्	गुणोंको
भुङ्क्ते	भोग करता है ॥३३॥

भावयत्येष सत्त्वेन लोकान् वै लोकभावनः ।
लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु ॥३४॥

भावयति एष सत्त्वेन लोकान् वै लोकभावनः लीला अवतार अनुरतः देव तिर्यङ् नर आदिषु ॥ ३४ ॥

एष	यही
लोकभावनः	लोकोंकी सृष्टि करनेवाले
देव	देवता (वामन, नारदादि)
निर्यङ्	पशु-पक्षी (मत्स्य, कच्छप, हंस, वाराहादि)
नर	मनुष्य परशुराम
	राम, कृष्णादि)
आदिषु	आदिमें
लीला अवतार	लीलापूर्वक अवतार
अनुरतः	धारण करके
सत्त्वेन	सत्त्वगुणको स्वीकार करके
लोकान्	लोकों
वै	को
भावयति	पालन करते हैं ।३४।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टदशशतसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः

अथ तृतीयोऽध्यायः

सूत उवाच—

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ।
सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥१॥

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान् महत् आदिभिः सम्भूतं षोडशकलं आदौ लोक सिसृक्षया ॥ १ ॥

आदौ	(सृष्टिकी) आदिमें	षोडशकलं	सोलहकला (पंच महाभूत, दस इन्द्रियाँ और एक मन) से
लोक	लोकोंकी		
सिसृक्षया	सृष्टि करनेकी इच्छासे		
महत्	महत्तत्त्व	सम्भूतं	युक्त
आदिभिः	(अहंकार) के द्वारा	पौरुषं	पुरुष (विराट्)
भगवान्	भगवान्ने	रूपं	रूपको
		जगृहे	धारण किया ॥१॥

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः ।
नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥२॥

यस्य अम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः नाभिह्रदः अम्बुजात् आसीत् ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥ २ ॥

यस्य	जिन (विराट् पुरुष) के	अम्बुजात्	(उत्पन्न) कमलसे
		विश्वसृजां	विश्वकी सृष्टि करनेवाले (प्रजापतिके)
अम्भसि	(कारण) वारिमें		
शयानस्य	सोते रहनेपर		
योगनिद्रां	योगनिद्राका	पतिः	अधिपति
वितन्वतः	विस्तार करनेपर	ब्रह्मा	ब्रह्माजी
नाभिह्रदः	नाभि रूपी सरोवरसे	आसीत्	उत्पन्न हुए ॥२॥

यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितो लोकविस्तरः ।
तद्वै भगवतो रूपं विशुद्धं सत्त्वमूर्जितम् ॥३॥

यस्य अवयव संस्थानैः कल्पितः लोक विस्तरः तत् वै भगवतः रूपं विशुद्ध सत्त्वं ऊर्जितम् ॥ ३ ॥

यस्य	जिस (विराट् पुरुष)के	**तत् वै**	वह ही (विराट् ही)
अवयव	अंग	**भगवतः**	भगवान्का
संस्थानैः	(रूपी) आधारमें	**विशुद्धं**	अत्यन्त शुद्ध
लोक	लोकोंका	**सत्त्वं**	सत्त्वात्मक
विस्तरः	विस्तार	**ऊर्जितम्**	परमश्रेष्ठ
कल्पितः	कल्पित (भावित) किया गया है,	**रूपं**	रूप है ॥३॥

पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ।
सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यम्बरकुण्डलोल्लसत् ॥४॥

पश्यन्ति अदः रूपं अदभ्र चक्षुषा सहस्र पाद उरु भुजा आननं अद्भुतं सहस्र मूर्ध श्रवण अक्षि नासिकं सहस्र मौलि अम्बर कुण्डल उल्लसत् ॥ ४ ॥

सहस्र	हजारों	**अम्बर**	वस्त्र
पादः	पैर,	**कुण्डलः**	कर्णाभरणोंसे
उरुः	जाँघें,	**उल्लसत**	शोभायमान्
भुजाः	भुजाएँ और	**अदः**	(विराट् भगवान्के) इस
आननं	मुखों वाले	**अद्भुतं**	अद्भुत
सहस्र	हजारों	**रूपं**	रूपको
मूर्धः	मस्तक,	**अदभ्र**	प्रतिहत न होनेवाली (योगकी)
श्रवणः	कान,	**चक्षुषा**	दृष्टिसे
अक्षिः	नेत्रों,	**पश्यन्ति**	(योगी लोग) देखते हैं ॥४॥
नासिकं	नाकों और		
मौलिः	सिरवाले		
सहस्र	हजारों		

एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ।
यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः ॥५॥

एतत् नाना अवताराणां निधानं बीजं अव्ययं यस्य अंशांशेन सृज्यन्ते देव तिर्यङ् नरादयः ॥ ५ ॥

एतत्	यही (विराट्रूप)	यस्य	जिसके
नाना	अनेकों	अंशांशेन	अत्यन्त क्षुद्र अंशसे
अवताराणां	अवतारोंका	देव	देवता
निधानं	मूल उत्पत्ति स्थान (तथा)	तिर्यङ्	पशु-पक्षी-कीटादि और
अव्ययं	अक्षय	नरादयः	मनुष्यादि
बीजं	बीज है;	सृज्यन्ते	उत्पन्न होते हैं ॥५॥

स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः ।
चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ॥६॥

स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गं आस्थितः चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यं अखण्डितम् ॥ ६ ॥

स एव	उन्हीं	आस्थितः	धारण किया तथा
देवः	परम पुरुषने	ब्रह्मा	ब्रह्मा (रूपमें)
प्रथमं	पहिलेवाले	दुश्चरं	अत्यन्त कठिन
कौमारं	कुमार (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) रूपी	अखण्डितं	अखण्ड
		ब्रह्मचर्यं	ब्रह्मचर्य व्रतका
		चचार	पालन किया* ॥६॥
सर्गं	सृष्टि (अवतार)		

द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम् ।
उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥७॥

---

* संपत्नीक होते भी ब्रह्माजी नित्य ब्रह्मचारी हैं। उन्होंने मानसिक सृष्टि ही की है।

द्वितीयं तु भवाय अस्य रसातल गतां महीं उद्धरिष्यन् उपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥ ७ ॥

द्वितीयं तु	दूसरी बार तो	उद्धरिष्यन्	उद्धार करनेके लिए
अस्य	इस (संसार) के	यज्ञेशः	यज्ञोंके स्वामी उन श्रीहरिने
भवाय	कल्याणके लिए		
रसातल	रसातल लोकमें	सौकरं	वाराहका
गतां	पहुँची	वपुः	शरीर
महीं	पृथ्वीका	उपादत्त	धारण किया ॥७॥

तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः ।
तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः ॥८॥

तृतीयं ऋषि सर्गं च देवर्षित्वं उपेत्य सः तन्त्रं सात्वतं आचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणा यतः ॥ ८ ॥

तृतीयं	तीसरी	तन्त्रं	पाञ्चरात्रागमका
च	बारमें	आचष्ट	उपदेश किया
ऋषि	ऋषि	यतः	जिनमें
सर्गं	सृष्टि (अवतार) में	कर्मणा	कर्मके द्वारा
देवर्षित्वं	देवर्षि नारद	नैष्कर्म्यं	कर्मातीत स्थिति प्राप्त होना बतलाया गया है ॥८॥
उपेत्य	बनकर		
सः	उन्हीं भगवानने		
सात्वतं	सात्वत कहे जानेवाले		

तुर्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी ।
भूत्वाऽऽत्मोपशमोपेतमकरोद् दुश्चरं तपः ॥९॥

तुर्ये धर्म कला सर्गे नर-नारायणाः ऋषी भूत्वा आत्म उपशमः उपेतं अकरोत् दुश्चरं तपः ॥ ९ ॥

तुर्ये	चौथे	नर-नारायणः	नर-नारायण
कला सर्गे	कलासे अवतारमें	ऋषि	ऋषि
धर्म	धर्मके यहाँ (उनकी पत्नी मूर्तिसे)	भूत्वा	बनकर
		आत्म	मन-इन्द्रिय

उपशमः	संयम	तपः	तपस्या
धृतेः	स्वरूप	अकरोत्	की ॥९॥
दुष्करं	अत्यन्त कठिन		

पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् ।
प्रोवाचासुरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥१०॥

पञ्चमः कपिलः नाम सिद्धेशः काल-विप्लुतं प्रोवाच असुरये सांख्यं तत्त्वग्राम विनिर्णयं ॥ १० ॥

पञ्चमः	पाँचवें (अवतारमें)	विनिर्णयं	ठीक-ठीक निर्णय (करनेवाला)
सिद्धेशः	सिद्धोंके अधीश्वर	सांख्यं	सांख्य शास्त्र
कपिलः नाम	कपिल नामवाले (हुए)	असुरये	आसुरि नामक मुनिको
काल-विप्लुतं	दीर्घकालमें लुप्त हुए	प्रोवाच	उपदेश किया ॥१०॥
तत्त्वग्राम	तत्त्वोंके समूहका		

षष्ठे अत्रेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनसूयया ।
आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ॥११॥

षष्ठं अत्रेः अपत्यत्वं वृतः प्राप्तः अनुसूयया आन्वीक्षिकीं अलर्काय प्रह्लादिभ्यः ऊचिवान् ॥ ११ ॥

अनुसूयया	अनुसूयाजी द्वारा	अलर्काय	अलर्कको
वृतः	वरदान माँगे जानेपर	प्रह्लादिभ्य	(तथा) प्रह्लाद आदिको
षष्ठं	छठे अवतारमें	आन्विक्षिकीं	तत्त्व-दर्शन करानेवाली विद्याका
अत्रेः	महर्षि अत्रिके	ऊचिवान	उपदेश किया ॥११॥
अपत्यत्वं	पुत्र होकर (दत्त रूपमें)		
प्राप्तः	अवतीर्ण हुए ।		

ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत ।
स यामाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायम्भुवान्तरम् ॥१२॥

ततः सप्तम आकूत्यां रुचेः यज्ञः अभ्यजायत स याम आद्यैः सुरगणैः अपात्, स्वायम्भुव अन्तरम् ॥ १२ ॥

ततः	फिर
सप्तम	सातवें (अवतार) में
रुचेः	प्रजापति रुचिकी
आकूत्यां	(पत्नी) आकूतिसे
यज्ञः	यज्ञ नामसे
अभ्यजायत	प्रकट हुए
याम आद्यैः	याम प्रथम (ज्येष्ठ) हैं जिनमें
सुरगणैः	(उन) देवगणोंके साथ
स्वायम्भुव	स्वायम्भुव
अन्तरं	मन्वन्तरका
अपात्	पालन किया*॥१२॥

अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः ।
दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥१३॥

अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेः जातः उरुक्रमः दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्व आश्रम नमस्कृतम् ॥ १३ ॥

अष्टमे तु	आठवें अवतारमें तो
उरुक्रमः	अनन्त पराक्रम भगवान्
नाभेः	राजा नाभिकी
मेरुदेव्यां	(पत्नी) मेरु देवीसे (ऋषभ रूपमें)
जातः	उत्पन्न हुए ।
सर्व	सब
आश्रम	आश्रमों-से
नमस्कृतं	नमस्कार प्राप्त
धीराणां	धैर्यशाली पुरुषोंका
वर्त्म	मार्ग (परमहंस चर्या)
दर्शयन्	(परमहंसको कैसे रहना चाहिए, यह आदर्श दिखलाया

ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः ।
दुग्धेमामोषधीर्विप्रास्तेनायं स उशत्तमः ॥१४॥

---

* स्वायम्भुव मन्वन्तरमें कोई जीव इन्द्र नहीं हुआ। भगवानने ही यज्ञ रूपमें अवतार लेकर इस मन्वन्तरमें इन्द्रत्व किया।

ऋषिभिः याचितः भेजे नवमं पार्थिवं वपुः दुग्धेगां* औषधिः विप्राः
अयं स उशत्तमः ॥ १४ ॥

षिभिः	ऋषियों द्वारा	**औषधीः**	औषधियों (अन्न आदि सब वस्तुओं) के लिए
वतः	प्रार्थना किये जानेपर		
वे	नवें अवतारमें		
थुर्वं	पृथु राजाका शरीर धारण किया।	**दुग्धे**	दोहन किया।
		विप्राः	हे विप्रगण (शौनकादि ऋषियो)
	उनने	**तेन**	इस कारण
त	इस गायरूपी पृथ्वीको अथवा इस पृथ्वीरूपी गायको	**अयं**	यह अवसर
		उशत्तमः	परम कल्याणकारी हुआ ॥१४॥

रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसम्प्लवे ।
नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥१५॥

रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुष उदधि सम्प्लवे नावि आरोप्य महीमय्यां
पात् वैवस्वतं मनुम् ॥१५॥

	उन भगवान्ने		करनेके अवसरपर
ात्स्यं	मत्स्य	**महीमय्यां**	सम्पूर्ण पृथ्वीमयी
पं	रूप	**नावि**	नौकामें
गृहे	ग्रहण करके	**आरोप्य**	बैठाकर
ाक्षुष	चाक्षुष मन्वन्तर (के अन्त) में	**वैवस्वतं मनुं**	वैवस्वत मनुकी
		अपात्	रक्षा की ॥१५॥
दधि सम्प्लवे	समुद्र बढ़कर प्रलय		

सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम् ।
दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ॥१६॥

---

* यहाँ मूलमें माम् पाठ ठीक नहीं है। सब टीकाकारोंने गां पाठ ही माना है।

सुर असुराणां उदधिं मथ्नतां मन्दराचलं दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभु ॥ १६ ॥

सुर	देवता (और)	विभुः	सर्व व्यापक भगवानने
असुराणां	असुरोंके द्वारा	कमठरूपेण	कच्छप रूपसे
उदधिं	(क्षीर) सागरका	मन्दराचलं	मन्दराचलको
मथ्नतां	मन्थन करते समय	पृष्ठः	(अपनी) पीठपर
एकादशे	ग्यारहवें अवतारमें	दध्र	धारण किया ॥१६॥

धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च ।
अपाययत्सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन् स्त्रिया ॥१७॥

धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशमं एव च अपाययत् सुरान् अन्यान् मोहिन्या मोहयन् स्त्रियाः ॥ १७ ॥

द्वादशमं	बारहवाँ अवतार	अन्यान्	(उसने) दूसरे (असुरों) को
धान्वन्तरं	धन्वन्तरिका हुआ	मोहयत्	मोहित करते हुए
च	और	सुरान्	देवताओंको
त्रयोदशमं	तेरहवाँ अवतार	अपाययत्	(अमृत) पिलाया ॥१७॥
स्त्रियाः	स्त्री		
एव	का ही		
मोहिन्या	मोहिनी रूपमें हुआ।		

चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रद्दैत्येन्द्रमूर्जितम् ।
ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा ॥१८॥

चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रत् दैत्येन्द्रं ऊर्जितं ददार करजैः वक्षः एरकां कटकृत् यथा ॥ १८ ॥

चतुर्दशं	चौदहवें (अवतार)में*	बिभ्रत्	धारण करके
नारसिंह	नृसिंह रूप	ऊर्जितं	अत्यन्त बलवान

* ग्यारहवें अवतारमें कच्छपका वर्णन है। समुद्र-मन्थनके लि मन्दराचल धारणार्थ यह अवतार हुआ। भागवतके ही अष्टम स्कन्धके

दैत्येन्द्रं	दैत्योंके अधिपति हिरण्यकशिपुकी	कटकृत्	चटाई बनानेवाले
		एरकां	एरका नाम (चौड़े लम्बे पत्तेवाली)
वक्षः	छाती		
नखैः	नखोंसे		घासको (चीर देते
व्यदार	फाड़ डाली		हैं) ॥१८॥
यथा	जैसे		

पञ्चदशं वामनकं कृत्वागादध्वरं बलेः ।
पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ॥१९॥

पञ्चदशं वामनकं कृत्वा अगात् अध्वरं बलेः पदत्रयं याचमानः प्रति आदित्सुः त्रिविष्टपम् ॥ १९ ॥

पञ्चदशं	पन्दहवें अवतारमें	त्रिविष्टपं	स्वर्गको
वामनकं	वामन स्वरूप	प्रति	वापस
कृत्वा	बनाकर	आदित्सुः	ले लेनेकी इच्छा
बलेः	(दैत्यराज) बलिके		करके
अध्वरं	यज्ञमें	पदत्रयं	तीन पद (पृथ्वी)
अगात्	गये ।	याचमानः	माँग रहे थे ॥१९॥

अवतारे षोडशमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहो नृपान् ।
त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥२०॥

अवतारे षोडशमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहः नृपान् त्रिःसप्त कृत्वः कुपितः निःक्षत्रां अकरोत् महीम् ॥ २० ॥

षोडशमे	सोलहवें	ब्रह्मद्रुहः	ब्राह्मण द्रोही
अवतारे	अवतारमें	पश्यन्	देखकर
नृपान्	राजाओंको	कुपितः	क्रुद्ध होकर

---

*अनुसार समुन्द्र-मन्थनके समय असुरोंके अधिपति बलि थे जो प्रह्लादके पौत्र हैं । अतः प्रह्लादकी रक्षाको होनेवाला नृसिंह अवतार कच्छपसे पहिले हुआ । अवतारोंकी संख्यामें कालक्रम नहीं है ।

त्रिःसप्तः	इक्कीसबार	निःक्षत्रां	क्षत्रियोंसे रहित
कृत्वः	करके	अकरोत्	बना दिया ॥२०॥
महीं	पृथ्वीको		

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् ।
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥२१॥

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसः अल्प मेधसः ॥ २१ ॥

ततः	इसके बाद	मेधसः	मेधा (बुद्धि-प्रतिभा वाले
सप्तदशे	सत्रहवें (अवतार)में		
पराशरात्	(महर्षि) पराशरसे	दृष्ट्वा	देखकर
सत्यवत्यां	सत्यवतीमें	वेदतरोः	वेदरूपी वृक्षकी
जातः	उत्पन्न होकर	शाखाः	शाखाएँ
पुंसः	पुरुषोंको	चक्रे	निर्मितकीं ॥२१॥
अल्प	थोड़ी		

नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया ।
समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥२२॥

नरदेवत्वं आपन्नः सुरकार्यं चिकीर्षया समुद्र निग्रहः आदीनि चक्रे वीर्याणि अतः परम् ॥ २२ ॥

अतः	इसके	आपन्नः	अवतरित हुए औ
परं	पश्चात्	समुद्र	सागर
सुरकार्यं	देवताओंका काम	निग्रहः	बाँधना तथा
चिकीर्षया	सम्पन्न करनेकी इच्छासे	आदीनि	रावणादि राक्षस वधका
नरदेवत्वं	राजाके रूपमें (रामावतारमें)	वीर्याणि	पराक्रम
		चक्रे	किया ॥२२॥

एकोनविंशेविंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ।
रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥२३॥

एकोनविंशे विंशतिमें वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी रामकृष्णौ इति भुवो भगवान् अहरत् भरम् ॥ २३ ॥

एकोनविंशे	उन्नीसवें (और)	इति	इन नामोंसे
विंशतिमें	वीसवें अवतारमें	भगवान्	भगवान्ने
वृष्णिषु	वृष्णि वंशमें	भुवः	पृथ्वीके
जन्मनी	जन्म	भरं	भारको
प्राप्य	प्राप्त करके	अहरत्	दूर किया ॥२३॥
रामकृष्णौ	बलराम और श्रीकृष्ण		

ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।
बुद्धो नाम्नाजनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥२४॥

ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषां बुद्धः नाम्ना अजनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥ २४ ॥

ततः	उसके पश्चात्	सम्मोहाय	सम्मोहित करनेके लिए
कलौ	कलियुगके	कीकटेषु	मगध प्रदेशमें
सम्प्रवृत्ते	आ जाने (भली प्रकार सक्रिय होने) पर	अजनसुतः	अजनके पुत्र
सुरद्विषां	देव-द्वेषियोंको	बुद्धः	बुद्ध
		नाम्ना	नामसे
		भविष्यति	उत्पन्न होंगे ॥२४॥

अथासौ युगसंध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु ।
जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ॥२५॥

अथ असौ युगसन्ध्यायां दस्युप्रायेसु राजासु जनिता विष्णुयशसः नाम्ना कल्किः जगत्पतिः ॥ २५ ॥

अथ	इसके पीछे	राजसु	राजाओंके
युगसन्ध्यायां	(कलियुग-सतयुगके) सन्धिकालमें	दस्युप्रायेसु	प्रायः लुटेरे हो जानेपर

असौ	येही	कल्किः	कल्किके
जगत्पतिः	श्रीजगन्नाथ	नाम्ना	नामसे
विष्णुयशसः	विष्णुयश (ब्राह्मण) के यहाँ	जनिता	उत्पन्न होंगे ॥२५॥

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ।
यथाविदासिनः कुल्या सरसः स्युः सहस्रशः ॥२६॥

अवतारा हि असंख्येयाः हरेः सत्त्वनिधेः द्विजाः यथा अविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥ २६ ॥

द्विजाः	ब्राह्मणो ! (शौनकादिक ऋषियो !)	यथा	जैसे
हि	निश्चय ही	अविदासिनः	अगाध
सत्त्वनिधेः	सत्त्वनिधि	सरसः	सरोवर (झील)से
हरेः	श्रीहरिके	सहस्रशः	हजारों
अवतारः	अवतार	कुल्याः	छोटे स्रोत (नाले)
असंख्येयाः	असंख्य हैं ।	स्युः	निकलते हैं ॥२५॥

ऋषयो मनयो देवा मनुपुत्रा महोजसः ।
कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥२७॥

ऋषयः मनवः देवाः मनुपुत्राः महौजसः कलाः सर्वे हरेः एव सप्रजापतयः तथा ॥ २७ ॥

ऋषयः	ऋषिगण	सप्रजापतयः	प्रजापतियोंके सहित
मनवः	सब मनु,	सर्वे	सब
देवाः	देवगण,	हरेः	श्रीहरिकी
महौजसः	महान् तेजस्वी	एव	ही
तथा	और	कलाः	कला हैं ॥२७॥
मनुपुत्राः	मनुओंके पुत्र		

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ॥२८॥

एते च अंश कलाः पुंसः कृष्णः तु भगवान् स्वयं इन्द्र-अरि व्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ॥ २८ ॥

पुंसः	परम पुरुषकी	भगवान्	परम पुरुष हैं।
एते	ये सब	इन्द्र-अरि	इन्द्रके शत्रु (असुरों)
अंश	अंश हैं		द्वारा
च	अथवा	व्याकुलं	व्याकुल हुए
कलाः	कला हैं	लोकं	लोकोंकी
तु	किन्तु	युगे युगे	प्रत्येक युगमें
कृष्णः	श्रीकृष्ण	मृडयन्ति	रक्षा करते हैं ॥२८॥
स्वयं	स्वयं		

जन्म गुह्यं भगवतो य एतत्प्रयतो नरः ।
सायं प्रातर्गृणन् भक्त्या दुःखग्रामाद्विमुच्यते ॥२९॥

जन्म गुह्यं भगवतः यः एतत् प्रयतः नरः सायं प्रातः गृणन् भक्त्या दुःखग्रामात् विमुच्यते ॥ २९ ॥

भगवतः	श्रीभगवानके	सायं	शामको
एतत्	इन	प्रातः	सवेरे
गुह्यं	गोपनीय	भक्त्या	भक्तिपूर्वक
जन्म	अवतारोंका	गृणन्	गान (पाठ) करता
यः	जो		है (वह)
नरः	मनुष्य	दुःखग्रामात्	दुःखोंके समूहसे
प्रयतः	एकाग्र चित्तसे	विमुच्यते	छूट जाता है ॥२९॥

एतद्रूपं भगवतो ह्यरूपस्य चिदात्मनः ।
मायागुणैर्विरचितं महदादिभिरात्मनि ॥३०॥

एतत् रूपं भगवतः हि अरूपस्य चिदात्मनः मायागुणैः विरचितं महदादिभिः आत्मनि ॥ ३० ॥

अरूपस्य	निराकार	भगवतः	भगवानके
चिदात्मनः	ज्ञानस्वरूप	एतत्	ये सब

रूपं	रूप		(सात्त्विक अहंकार) से
आत्मनि	उनके अपनेमें ही	विरचितं	बनाये (प्रकट किये गये) हैं ॥३०॥
हि	निश्चय ही		
मायागुणैः	मायाके गुणोंसे		
महदादिभिः	महत्तत्त्वादि		

यथा नभसि मेघौघो रेणुर्वा पार्थिवोऽनिले ।
एवं द्रष्टरि दृश्यत्वमारोपितमबुद्धिभिः ॥३१॥

यथा नभसि मेघ ओघः रेणुः वा पार्थिवः अनिले एवं द्रष्टरि दृश्यत्वं आरोपितं अबुद्धिभिः ॥ ३१ ॥

यथा	जैसे	रेणुः	धूलि है,
नभसि	आकाशमें	एवं	इसी प्रकार
मेघ	बादलोंका	अबुद्धिभिः	अज्ञानीजनों द्वारा
ओघः	उमड़ना है	द्रष्टरि	दृष्टा (परमात्मा)में
वा	अथवा	दृश्यत्वं	दृश्यपना
अनिले	वायुमें	आरोपितं	आरोपित किया गया है ॥३१॥
पार्थिवः	पृथ्वीकी		

अतः परं यदव्यक्तमव्यूढगुणव्यूहितम् ।
अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात्स जीवो यत्पुनर्भवः ॥३२॥

अतः परं यत् अव्यक्तं अव्यूढ गुण व्यूहितं अदृष्ट अश्रुतः वस्तुत्वात् स जीवः यत् पुनर्भवः ॥ ३२ ॥

अतः	इस (स्थूल रूप) से	गुण	गुणों (सत्त्व, रज, तम) से
परं	परे	व्यूहितं	घेरा हुआ है
यत्	जो	अदृष्ट	अनदेखी
अव्यक्तं	व्यक्त न होनेवाला	अश्रुतः	अनसुनी
अव्यूढ	बिना व्यूह (किसी घेरे) वाला	वस्तुत्वात्	वस्तु होनेसे

स	वही	यत्	जिसका
जीवः	जीव (कही जाती) है।	पुनर्भवः	पुनर्जन्म होता है ॥३२॥

यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा ।
अविद्ययाऽऽत्मनि कृते इति तद् ब्रह्मदर्शनम् ॥३३॥

यत्र इमे सत् असत् रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा अविद्यया आत्मनि कृते इति तत् ब्रह्मदर्शनम् ॥ ३३ ॥

यत्र	जिसमें	कृते	निश्चय करनेपर
इमे	ये दोनों	आत्मनि	अपने स्वरूपमें
सत्	सूक्ष्म	प्रतिषिद्धे	(इनका) निषेध (बाध) होजाने पर
असत्	स्थूल	तत्	वही स्थिति
रूपे	रूप	ब्रह्मदर्शनं	ब्रह्म साक्षात्कार है ॥३३॥
अविद्यया	अविद्याके द्वारा हैं		
इति	ऐसा		
स्वसंविदः	अपने बोधसे		

यद्येषोपरता देवी माया वैशारदी मतिः ।
सम्पन्न एवेति विदुर्महिम्नि स्वे महीयते ॥३४॥

यदा एषा उपरता देवी माया वैशारदी मतिः सम्पन्न एव इति विदुः महिम्नि स्वे महीयते ॥ ३४ ॥

यदा	जब	एव	ही है
एषा	यह	इति	ऐसा
वैशारदी	अत्यन्त निपुणा	विदुः	जानते हैं (समझते हैं तत्त्वज्ञ लोग)
देवी माया	मायादेवी रूपा	स्वे	(तव) अपनी
मतिः	बुद्धि	महिम्नि	महिमामें
उपरता	निवृत्त हो जाती है (तब अपना आत्मा)	महीयते	स्थित हो जाता है ॥३४॥
सम्पन्नः	सब अभावोंसे रहित		

एवं जन्मानि कर्माणि ह्यकर्तुरजनस्य च ।
वर्णयन्ति स्म कवयो वेदगुह्यानि हृत्पतेः ॥३५॥

एवं जन्मानि कर्माणि हि अकर्तुः अजनस्य च वर्णयन्ति स्म कवयः वेद गुह्यानि हृत्पतेः ॥ ३५ ॥

एवं	इस प्रकार	वेदगुह्यानि	वेदोंमें रहस्य रूपमें वर्णित
हि	निश्चय ही	जन्मानि	जन्मों (अवतारों)
अकर्तुः	(जो) अकर्ता हैं	कर्माणि	लीलाओंका
च	और	कवयः	बुद्धिमान (ज्ञानी) लोग
अजनस्य	अजन्मा है (उन)	वर्णयन्ति स्म	वर्णन करते हैं ।३५।
हृत्पतेः	हृदयेश्वर (हृषीकेष) के		

स वा इदं विश्वममोघलीलः
सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन् ।
भूतेषु चान्तर्हित आत्मतन्त्रः
षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः ॥३६॥

स वा इदं विश्वं अमोघ लीलः सृजति अवति अत्ति न सज्जते अस्मिन् भूतेषु च अन्तर्हितः आत्मतन्त्रः षाड्वर्गिकं जिघ्रति षडगुणेशः ॥३६॥

स	वे		करते) हैं
वा	ही	अस्मिन्	(फिर भी) इनमें
अमोघ	अव्यर्थ	न	नहीं
लीलः	लीला करनेवाले	सज्जते	आसक्त होते,
इदं	इस	भूतेषु	प्राणियोंमें
विश्वं	विश्वकी	अन्तर्हितः	अन्तर्हित (व्यापक होकर)
सृजति	सृष्टि करते हैं	षड्गुणेशः	(मन तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध)
अवति	रक्षा करते हैं		
अत्ति	खा लेते (संहार		

	६ गुणोंके स्वामी (रहते)	जिघ्रति	सूँघते (उपभोग करते) हैं।
आधिदैविकं	६ गुण (मन-ज्ञानेन्द्रियों) के विषयोंको	च	और
		आत्मतन्त्रः	परम स्वतन्त्र हैं।३६।

न चास्य कश्चिन्निपुणेन धातु-
रवैति जन्तुः कुमनीष ऊतीः।
नामानि रूपाणि मनोवचोभिः
सन्तन्वतो नटचर्यामिवाज्ञः ॥३७॥

न च अस्य कच्चित् निपुणेन धातुः अवैति जन्तुः कुमनीष ऊतीः नामानि रूपणि मनः वचोभिः सन्तन्वतः नटचर्या इव अज्ञः ॥ ३७ ॥

अस्य	इन	कच्चित्	कोई
धातुः	धाता (भगवान) के	कुमनीषः	कुबुद्धिवाला (अज्ञ)
नामानि	नामोंसे	जन्तुः	प्राणी
च	और	निपुणेन	भली प्रकार
रूपाणि	रूपोंको	नटचर्या	बाजीगरके खेलोंको
मनः	संकल्पसे	अज्ञं	अज्ञानी
वचोभिः	अपनी वेदरूप वाणीसे	इव	की भाँति
सन्तन्वतः	विस्तार करते हुए	न	नहीं जानते ॥३७॥
ऊतीः	वैभवको		

स वेद धातुः पदवीं परस्य
दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः।
योऽमायया संततयानुवृत्त्या
भजेत तत्पादसरोजगन्धम् ॥३८॥

स वेद धातुः पदवीं परस्य दुरन्त वीर्यस्य रथाङ्गपाणेः यः अमायया संततया अनुवृत्त्या भजेत तत् पादसरोज गन्धम् ॥ ३८ ॥

धातुः	सबके रक्षक	दुरन्त	अनन्त
रथाङ्गपाणेः	चक्रपाणि	वीर्यस्य	पराक्रमवाले प्रभु

परस्य	परमात्माके		रहनेवाली
पदवीं	स्वरूपको	अनुवृत्त्या	वृत्तिको उन्हींमें
स	वह		लगाये हुए
वेद	जानता है	तत्	उनके
यः	जो	पादसरोज	चरण कमलोंकी
अमायया	निष्कपट भावसे	गन्धं	सुगन्धका
संततया	निरन्तर बनी	भजेत्	सेवन करता है ।३८।

अथेह धन्या भगवन्त इत्थं
यद्वासुदेवेऽखिललोकनाथे ।
कुर्वन्ति सर्वात्मकमात्मभावं
न यत्र भूयः परिवर्त उग्रः ॥३९॥

अथ इह धन्याः भगवन्तः इत्थं यत् वासुदेवे अखिल लोकनाथे कुर्वन्ति सर्वात्मकं आत्मभावं न यत्र भूयः परिवर्तः उग्रः ॥ ३९ ॥

अथ	अहो	सर्वात्मकं	सर्वात्मा रूपसे
इह	इस संसारमें	आत्मभावं	आत्मभाव
भगवन्तः	भगवत्स्वरूप आप लोग ही	कुर्वन्ति	करते हैं
धन्याः	धन्य हैं	यत्र	जहाँ (उस आत्म-भावमें)
यत्	जो	भूयः	पुनः
इत्थं	इस प्रकार	उग्रः	भयानक
अखिल	सम्पूर्ण	परिवर्तः	पुनर्जन्म
लोकनाथे	लोकोंके स्वामी	न	नहीं होता ॥३९॥
वासुदेवे	वासुदेवमें		

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।
उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः ॥४०॥

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म सम्मितं उत्तमश्लोक चरितं चकार भगवान् ऋषिः ॥ ४० ॥

इदं	यह
भागवत	भागवत
नाम	नामवाला
पुराण	पुराण
वेद	वेद
सम्मित	सम्मत
उत्तमश्लोक	पवित्र कीर्ति (भगवानका)
चरितं	चरितवाला
भगवान् ऋषिः	ऋषि रूपमें अवतीर्ण भगवान् व्यासने
चकार	निर्मित किया ॥४०॥

निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत् ।
तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम् ॥४१॥

निश्रेःयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्यमनं महत् तत् इदं ग्राहयामास सुतं आत्मवतां वरम् ॥ ४१ ॥

लोकस्य	लोकके
निःश्रेयसाय	परमकल्याणके लिए (व्यासजी ने)
धन्यं	धन्य
महत्	महान्
स्वस्त्ययनं	मंगलकारी
तत्	उस
इदं	इस (भागवत) को
आत्मवतां	आत्मज्ञानियोंमें
वरं	श्रेष्ठ
सुतं	अपने पुत्र (शुकदेवजी) कों
ग्राहयामास	पढ़ाया ॥४१॥

सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम् ।
स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम् ॥४२॥

सर्व वेद इतिहासानां सारं सारं समुद्धृतं सतु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम् ॥ ४२ ॥

सर्व	सभी
वेद	वेदों
इतिहासानं	(महाभारतादि) इतिहासोंका
सारं सारं	तथ्यांश
समुद्धृतं	(इस भागवतमें) भली प्रकार ले लिया है ।
स तु	उन (शुकदेवजीने) तो
महाराजं	महाराज
परीक्षितं	परीक्षितको
संश्रावयामास	भली प्रकार सुनाया ॥४२॥

प्रायोपविष्टं गङ्गायां परीतं परमर्षिभिः ।
कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ॥४३॥

प्रायोपविष्टं गङ्गायां परीतं परमर्षिभिः कृष्णे स्वधाम उपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ॥ ४३ ॥

कृष्णे	श्रीकृष्णके	गंगायां	गंगा किनारे
धर्मज्ञानादिभिः	धर्मज्ञान (ऐश्वर्यादि) आदि	परमर्षिभिः	परमर्षियोंसे
सह	के साथ	परीतं	घिरे हुए
स्वधाम	अपने धाम	प्रायोपविष्टं	अनशन करनेका व्रत लेकर बैठे ।४३।
उपगते	चले जानेपर (राजा परीक्षित)		

कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ।
तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रर्षेर्भूरितेजसः ॥४४॥

कलौ नष्ट दृशां एष पुराण अर्कः अधुना उदितः तत्र कीर्तयतः विप्रा विप्रर्षे भूरि तेजसः ॥ ४४ ॥

कलौ	कलियुगके (प्रभाव)से	विप्रा	ब्राह्मणो ! (शौनकादि ऋषियो)
नष्ट दृशां	जिनकी दृष्टि (विवेक) नष्ट हो गया है	तत्र	वहाँ (गंगा किनारे)
		भूरि	बहुत अधिक
एष	(उनके लिए) यह	तेजसः	तेजस्वी
पुराण	पुराण रूपी	विप्रर्षे	श्रीशुकदेवजीके
अर्क	सूर्य	कीर्तयतः	(इस पुराणका) उपदेश करते समय ॥४४॥
अधुना	इस समय		
उदितः	उदय हुआ है ।		

अहं चाध्यगमं तत्र निविष्टस्तदनुग्रहात् ।
सोऽहं वः श्रावयिष्यामि यथाधीतं यथामति ॥४५॥

अहं च अध्यगमं तत्र निविष्टः तद् अनुग्रहात् स अहं वः श्रावयिष्यामि यथा अधीतं यथा मति ॥ ४५ ॥

अहं	मैं	स	वह (श्रीमद्भागवत)
च	भी	यथा	जैसा
तत्र	वहाँ	अधीतं	मैंने अध्ययन किया
अध्यगमं	पहुँचा	यथा	जैसी-जितनी (मुझमें)
तद्	उन (शुकदेवजी) के	मति	बुद्धि है
अनुग्रहात्	अनुग्रहसे	वः	आप लोगोंको
निविष्टः	भली प्रकार बैठा।	श्रावयिष्यामि	श्रवण कराऊँगा ।४५॥
अहं	मैं		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः

अथ चतुर्थोऽध्यायः

व्यास उवाच–

इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् ।
वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकोऽब्रवीत् ॥१॥

इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घ सत्रिणां वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकः अब्रवीत् ॥ १ ॥

दीर्घ	लम्बे (समय तकके)	इति	ऐसा
सत्रिणां	यज्ञमें लगे	ब्रुवाणं	बोलनेवाले
मुनीनां	मुनियोंके	सूतं	सूतजीकी
कुलपतिः	कुलपति	संस्तूय	भली प्रकार प्रशंसा करके
वृद्धः	वृद्ध (बड़े)		
बह्वृचः	ऋग्वेदी	अब्रवीत्	बोले ॥१॥
शौनकः	शौनकजी		

शौनक उवाच–

सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर ।
कथां भागवतीं पुण्यां यदाह भगवाञ्छुकः ॥२॥

सूत सूत महाभाग वद नः वदतां वर कथां भागवतीं पुण्यां यत् आह भगवान् शुकः ॥ २ ॥

महाभाग	परम सौभाग्यशाली	कथां	कथा
वदतां	प्रवचन करनेवालोंमें	भगवान्	भगवान्
वर	श्रेष्ठ	शुकः	शुकदेवजीने
सूत सूत	हे सूतजी !	आह	सुनाया था
यत्	जो	नः	हम लोगोंको (वह कथा)
पुण्यां	पवित्र		
भागवतीं	भागवतकी	वद	सुनाइये ॥२॥

कस्मिन् युगे प्रवृत्तेयं स्थाने वा केन हेतुना ।
कुतः सञ्चोदितः कृष्णः कृतवान् संहितां मुनिः ॥३॥

कस्मिन् युगे प्रवृत्ता इयं स्थाने वा केन हेतुना कुतः सञ्चोदितः कृष्णः कृतवान् सहितां मुनिः ॥ ३ ॥

इयं	यह (कथा)	केन	किसके द्वारा
कस्मिन्	किस	सञ्चोदितः	प्रेरित किये जानेपर
युगे	युगमें	मुनिः	मुनि
स्थाने	(किस) स्थानमें	कृष्णः	श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासजीने
वा	अथवा		
केन	किस	संहितां	(इस) परमहंस संहिताको
हेतुना	कारणसे		
प्रवृत्ता	हुई थी ?	कृतवान्	रचनाकी ? ॥३॥

तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ् निर्विकल्पकः ।
एकान्तमतिरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते ॥४॥

तस्य पुत्रः महायोगी समदृक् निर्विकल्पकः एकान्त मति उन्निद्रः गूढः मूढ इव ईयते ॥ ४ ॥

तस्य	उन (व्यासजीके)	उन्निद्रः	जागरूक
पुत्रः	पुत्र (शुकदेवजी)	गूढः	छिपे रहनेवाले हैं
महायोगीः	महायोगी	मूढ	अज्ञ
समदृक्	समदर्शी	इव	जैसे
निर्विकल्पकः	भेदभाव रहित	ईयते	प्रतीत होते हैं ॥४॥
एकान्त मतिः	व्यवसायात्मिका (स्थिर) बुद्धिवाले		

दृष्ट्वानुयान्तमृषिमात्मजमप्यनग्नं
देव्यो ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम् ।
तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति
स्त्रीपुम्भिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः ॥५॥

दृष्ट्वा अनुयान्तं ऋषिं आत्मजं अपि नग्नं देव्यः ह्रिया परिदधुः न सुतस्य चित्रं तद् वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुः तवः अस्ति स्त्री-पुं भिदा न तु सुतस्य विवित्त दृष्टेः ॥ ५ ॥

आत्मजं	पुत्रके	मुनौ	व्यासजीके
अनुयान्तं	पीछे जाते हुए	पृच्छति	पूछनेपर
दृष्ट्वा	(व्यासजीको) देखकर	जगदुः	(देवियोंने) कहा
ह्रिया	लज्जासे	तव	आपमें
देव्यः	देवियोंने	स्त्री-पुं	स्त्री-पुरुषका
परिदधुः	वस्त्र पहिन लिए।	भिदा	भेद-ज्ञान
नग्नं	दिगम्बर	अस्ति	है
अपि	होनेपर भी	विवित्त	अत्यन्त एकाग्र
सुतस्य	पुत्रको (देखकर)	दृष्टेः	दृष्टिवाले
न	नहीं पहिने।	सुतस्य तु	(आपके) पुत्रमें तो
तत्	ऐसी	न	(यह भेद ज्ञान) नहीं
चित्रं	विचित्र बात		है ॥५॥
वीक्ष्य	देखकर		

कथमालक्षितः पोरैः सम्प्राप्तः कुरुजाङ्गलान् ।
उन्मत्तमूकजडवद्विचरन् गजसाह्वये ॥६॥

कथं आलक्षितः पौरैः सम्प्राप्तः करुजाङ्गलान् उन्मत्त मूक जड़वत् विचरन् गजसाह्वये ॥ ६ ॥

कुरुजाङ्गलान्	कुरुजाङ्गल देशमें	विचरन्	विचरण करते हुए
गजसाह्वये	हस्तिनापुरमें	सम्प्राप्तः	पहुँचनेपर
उन्मत्त	पागल	पौरैः	नागरिक लोगों द्वारा
मूक	गूंगे	कथं	(वे) कैसे
जड़वत्	मूर्खके समान	आलक्षितः	पहिचाने गये ॥६॥

कथं वा पाण्डवेयस्य राजर्षेर्मुनिना सह ।
संवादः समभूत्तात यत्रैषा सात्वती श्रुतिः ॥७॥

कथं वा पाण्डवेयस्य राजर्षेः मुनिना सह संवादः समभूत तात यत्र एषाः सात्वतीः श्रुतीः ॥ ७ ॥

[illegible]	प्रिय सूतजी	संवादः	संवाद
[illegible]	अथवा	समभूत	हुआ
[illegible]	पाण्डव वंशमें उत्पन्न	यत्र	जिसमें
[illegible]	राजर्षि (परीक्षित)	एषाः	यह
	का	सात्वतीः	सात्वत
[illegible]	मुनि (शुकदेवजी)के	श्रुतिः	संहिता (कही
[illegible]	साथ		गयी) ॥७॥
[illegible]	कैसे		

स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनाम् ।
अवेक्षते महाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमम् ॥८॥

स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनां अवेक्षते महाभागः तीर्थी कुर्वं तत् आश्रमम् ॥ ८ ॥

महाभागः	महाभाग	तीर्थी	पवित्र
सः	शुकदेवजी	कुर्वन्	करते हुए
हि	क्योंकि	गोदोहनमात्रं	गाय दुही जाय केवल
गृहमेधिनां	गृहस्थोंके		इतनी देर वे
गृहेषु	घरोंमें	अवेक्षते	प्रतीक्षा करते
तत्	उस		(ठहरते) हैं ॥८॥
आश्रमं	आश्रम (घर) को		

अभिमन्युसुतं सूत प्राहुर्भागवतोत्तमम् ।
तस्य जन्म महाश्चर्यं कर्माणि च गृणीहि नः ॥९॥

अभिमन्यु सुतं सूत प्राहुः भागवतोत्तमं तस्य जन्म महाश्चर्यं कर्माणि च गृणीहि नः ॥ ९ ॥

सूत	सूतजी !	प्राहुः	कहा गया है ।
अभिमन्यु सुतं	अभिमन्युके पुत्र	तस्य	उनके
	(परीक्षित) को	महाश्चर्यं	महान् आश्चर्यजनक
भागवतोत्तमं	भगवद् भक्तोंमें	जन्म	जन्मको
	उत्तम		

च	और	नः	हम लोगोंसे
कर्माणि	कर्मोंको	गृणीहि	कहिये ॥९॥

स सम्राट् कस्य वा हेतोः पाण्डूनां मानवर्धनः ।
प्रायोपविष्टो गङ्गायामनादृत्याधिराट्श्रियम् ॥१०॥

स सम्राट् कस्य वा हेतोः पाण्डूनां मानवर्द्धनः प्रायोपविष्टः गङ्गायां अनादृत्य अधिराट् श्रियम् ॥ १० ॥

वा	अथवा	अधिराट्	सम्राट्पदीय
सः	वे	श्रियं	लक्ष्मीकी
सम्राट्	सम्राट् जो	अनादृत्य	उपेक्षा करके
पाण्डूनां	पाण्डवोंकी	गङ्गायां	गंगा किनारे
मानवर्द्धनः	कीर्ति बढ़ानेवाले थे	प्रायोपविष्टः	अनशन करने बैठे ॥१०॥
कस्य	किस		
हेतोः	कारणसे		

नमन्ति यत्पादनिकेतमात्मनः
शिवाय हानीय धनानि शत्रवः ।
कथं स वीरः श्रियमङ्ग दुस्त्यजां
युवैषतोत्स्रष्टुमहो सहासुभिः ॥११॥

नमन्ति यत् पादनिकेतं आत्मनः शिवाय ह आनीय धनानि शत्रवः कथं स वीरः अंग दुस्त्यजां श्रियं युवैषतः उत्स्रष्टुं अहो सह असुभिः ॥ ११ ॥

अंग	सूतजी !	धनांनि	बहुत-सा धन
यत्	जिनके	आनीय	(साथ) लाकर
पादनिकेतं	पादपीठकां	नमन्ति	प्रणाम करते हैं
शत्रवः	शत्रुगण	स	वह
ह	निश्चय	वीरः	वीर (परिक्षित्)
आत्मनः	अपने	दुस्त्यजां	जिसे छोड़ना बहुत कठिन है
शिवाय	भले (रक्षा) के लिए		

श्रियं	(उस) लक्ष्मीको	सह	साथ
युवैषतः	युवावस्थामें	कथं	कैसे
अहो	आश्चर्यकी बात है	उत्सृष्टुं	त्यागनेको (प्रस्तुत
असुभिः	प्राणोंके		हुए) ॥११॥

शिवाय लोकस्य भवाय भूतये
य उत्तमश्लोकपरायणा जनाः ।
जीवन्ति नात्मार्थमसौ पराश्रयं
मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम् ॥१२॥

शिवाय लोकस्य भवाय भूतये यः उत्तमश्लोक परायणाः जनाः जीवन्ति न आत्मार्थं असौ पराश्रयं मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम् ॥ १२ ॥

यः	जो	आत्मार्थं	अपने स्वार्थके लिए
उत्तमश्लोक	पुण्ययशा (भगवान)के	न	नहीं।
परायणाः	परायण	असौ	इन (राजा
जनाः	लोग हैं		परिक्षित) ने
लोकस्य	(वे) लोकोंके	निर्विद्य	विरक्त होकर
शिवाय	कल्याणके लिए	पराश्रयं	दूसरोंको आश्रय
भूतये	प्राणियोंके		देनेवाला
भवाय	अभ्युदयके लिए	कलेवरं	(अपना) शरीर
जीवन्ति	जीवन धारण करते	कुतः	क्यों
	हैं,	मुमोच	त्याग दिया ?॥१२॥

तत्सर्वं नः समाचक्ष्व पृष्टो यदिह किञ्चन ।
मन्ये त्वां विषये वाचां स्नातमन्यत्र छान्दसात् ॥१३॥

तत् सर्वं नः समाचक्ष्व पृष्टः यत् इह किञ्चन मन्ये त्वां विषये वाचां स्नातं अन्यत्र छान्दसात् ॥ १३ ॥

छान्दसात्	वेद वाणीको	स्नातं	उसमें अत्यन्त निपुण
अन्यत्र	छोड़कर अन्य	त्वां	आपको
वाचां विषये	वाणीका जितना	मन्ये	हम मानते हैं।
	विषय है		(अतः)

इह	यहाँ	तत्	वह
यत्	जो	सर्वं	सब
किञ्चन	कुछ	नः	हम लोगोंको
पृष्टः	(आपसे) पूछा गया है	समाचक्ष्व	भली प्रकार बतलाइये ॥१३॥

सूत उवाच–

द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये ।
जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः ॥१४॥

द्वापरे सम् अनुप्राप्ते तृतीये युग पर्यये जातः पराशरात् योगीः वासव्यां कलया हरेः ॥ १४ ॥

युग	युगोंके	पराशरात्	महर्षि पराशरसे
पर्यये	क्रममें	वासव्यां	वसुपुत्री(सत्यवती)में
तृतीये	तीसरे (युग)	हरेः	श्रीहरिकी
द्वापरे	द्वापरके	कलया	कलासे
सम्	भली प्रकार	योगीः	योगी (व्यासजी)
अनुप्राप्ते	प्रभावमें आ जानेपर	जातः	उत्पन्न हुए ॥१४॥

स कदाचित्सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचि ।
विविक्तदेश आसीन उदिते रविमण्डले ॥१५॥

सः कदाचित् सरस्वत्यां उपस्पृश्य जलं शुचि विविक्त देश आसीनः उदिते रविमण्डले ॥ १५ ॥

सः	वे (व्यासजी)	सरस्वत्यां	सरस्वती नदीके किनारे (उसके)
कदाचित्	किसी समय	शुचि	पवित्र
रविमण्डले	सूर्य मण्डलके	जलं	जलको
उदिते	उदय हो जानेपर	उपसृश्य	आचमन करके
विविक्त	एकान्त	आसीनः	बैठे थे ॥१५॥
देश	स्थानमें		

परावरज्ञः स ऋषिः कालेनाव्यक्तरंहसा।
युगधर्मव्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगे युगे ॥१६॥

परावरज्ञः सः ऋषिः कालेन अव्यक्त रंहसा युगधर्म व्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगे युगे ॥ १६ ॥

सः	उन	भुवि	पृथ्वीपर
परावरज्ञः	लोक-परलोकको जाननेवाले	युगे युगे	प्रत्येक युगमें
ऋषिः	ऋषिने	प्राप्तं	होनेवाले
अव्यक्त	अव्यक्त	युगधर्म	युगके धर्मको
रंहसा	वेगवाले	व्यतिकरं	विकृत करनेवाला ॥१६॥
कालेन	कालके द्वारा		

भौतिकानां च भावानां शक्तिह्रासं च तत्कृतम्।
अश्रद्दधानान्निःसत्त्वान्दुर्मेधान् ह्रसितायुषः ॥१७॥

भौतिकानां च भावानां शक्ति ह्रासं च तत् कृतं अश्रद्दधानान् निःसत्त्वान् दुर्मेधान् ह्रसितायुषः ॥ १७ ॥

च	और	च	भी (और)
भौतिकानां	भौतिक	अश्रद्दधानान्	श्रद्धाहीन
भावानां	पदार्थोंका	निःसत्त्वान्	सत्त्वहीन
तत्	उस (कालके)	दुर्मेधान	दुर्बुद्धिवाले
कृतं	करने (प्रभाव) से	ह्रसित	क्षीण हुई
शक्तिह्रासं	शक्तिका ह्रास	आयुषः	आयुवाले ॥१७॥

दुर्भगांश्च जनान् वीक्ष्य मुनिर्दिव्येन चक्षुषा।
सर्ववर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हितममोघदृक् ॥१८॥

दुर्भगान् च जनान् वीक्ष्य मुनिः दिव्येन चक्षुषा सर्व वर्ण आश्रमाणां यत् दध्यौ हितं अमोघदृक् ॥ १८ ॥

च	और	जनान्	लोगोंको
दुर्भगान्	भाग्यहीन	दिव्येन	दिव्य

चक्षुषा	दृष्टिसे	सर्वं	सब
वीक्ष्य	देखकर	वर्णं	वर्णों
यत्	क्योंकि	आश्रमाणां	आश्रमोंका
अमोघ	अव्यर्थ	हितं	भला (हो, इसका)
दृक्	दृष्टिवाले थे,	दध्यौ	विचार किया ॥१८॥
मुनिः	मुनि (व्यासजी) ने		

चातुर्होत्रं कर्म शुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम् ।
व्यदधाद्यज्ञसन्तत्यै वेदमेकं चतुर्विधम् ॥१९॥

चातुर्होत्रं कर्म शुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकं व्यदधात् यज्ञ संतत्यै वेदं एकं चतुर्विधम् ॥ १९ ॥

वैदिकं	वेद प्रतिपादित	एकं	एक ही
चातुर्होत्रं	चार (होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा) के द्वारा होनेवाला	वेदं	वेदको
		यज्ञ	यज्ञ (की)
		संतत्यैः	परम्परा बनाये रखनेके लिए
कर्म	यज्ञ कर्म		
प्रजानां	प्रजाको	चतुर्विधं	चार प्रकारसे
शुद्धं	शुद्ध करनेवाला है	व्यदधात्	विभाजित किया ॥१९॥
वीक्ष्य	(यह) देखकर		

ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या वेदाश्चत्दार उद्धृताः ।
इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते ॥२०॥

ऋग् यजुः साम अथर्व आख्याः वेदः चत्वारः उद्धृताः इतिहासं पुराणं च पञ्चमः वेदः उच्यते ॥ २० ॥

ऋग्	ऋग्वेद	आख्याः	नामवाले
यजुः	यजुर्वेद	चत्वाराः	चार
साम	सामवेद	वेदाः	वेदोंका
अथर्व	अथर्ववेद	उद्धृताः	सम्पादन किया ।

च	और	पञ्चमः	पाँचवाँ
इतिहासं	इतिहास (महा-भारतादि)	वेदः	वेद
पुराणं	पुराणोंको	उच्यते	कहा जाता है ॥२०॥

तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः ।
वैशम्पायन एवैको निष्णातो यजुषामुत ॥२१॥

तत्र ऋग्वेद धरः पैलः सामगः जैमिनिः कविः वैशम्पायन एव एकः निष्णातः यजुषां उत ॥ २१ ॥

तत्र	उन (चारों वेदों) में		(हुए)
ऋग्वेद	ऋग्वेद	उत	और
धरः	धारण करनेवाले	वैशाम्पायन	वैशम्पायन
पैलः	पैल हुए,	एव	ही
कविः	बुद्धिमान	एकः	अकेले
जैमिनिः	जैमिनी ऋषि	यजुषां	यजुर्वेदके
सामगः	सामवेदके ज्ञाता	निष्णातः	विद्वान बने ॥२१॥

अथर्वाङ्गिरसामासीत्सुमन्तुर्दारुणो मुनिः ।
इतिहासपुराणानां पिता मे रोमहर्षणः ॥२२॥

अथर्व आंगिरसां आसीत् सुमन्तुः दारुणः मुनिः इतिहास पुराणानां पिता मे रोमहर्षणः ॥ २२ ॥

अथर्व	अथर्ववेदमें	इतिहास	इतिहास (महा-भारतादि)
आंगिरसां	अंगिरा गोत्रीयोंमें	पुराणानां	पुराणोंके (ज्ञाता)
दारुणः	दरुण पुत्र	मे	मेरे
मुनिः	मुनि	पिता	पिता
सुमन्तुः	सुमन्त (प्रवीण)	रोमहर्षणः	रोमहर्षण (हुए) ॥२२॥
आसीत्	हुए,		

त एत ऋषयो वेदं स्वं स्वं व्यस्यन्ननेकधा ।
शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्ते शाखिनोऽभवन् ॥२३॥

त एत ऋषयः वेदं स्वं स्वं व्यस्यन् अनेकधा शिष्यैः प्रशिष्यैः तत् शिष्यैः वेदाः ते शाखिनः अभवन् ॥ २३ ॥

त	ऊपर बताये गये	प्रशिष्यैः	शिष्योंके शिष्यों,
एत	इन	तत्	उनके भी
ऋषयः	ऋषयोंने	शिष्यैः	शिष्योंने (यही क्रम रखा)
स्वं स्वं	अपने अपने		
वेदं	वेदको	ते	(अतः) वे
अनेकधाः	अनेक प्रकारसे	वेदाः	वेद
व्यस्यन्	व्यवस्थित(सम्पादित) किया ।	शाखिनः	अनेक शाखाओंवाले
		अभवन्	हो गये ॥२३॥
शिष्यैः	उनके शिष्यों,		

त एव वेदा दुर्मेधैर्धार्यन्ते पुरुषैर्यथा ।
एवं चकार भगवान् व्यासः कृपणवत्सलः ॥२४॥

त एव वेदाः दुर्मेधैः धार्यन्ते पुरुषैः यथा एवं चकार भगवान् व्यासः कृपण वत्सलः॥ २४ ॥

दुर्मेधैः	दुष्ट या कम बुद्धिवाले	एवं	इस प्रकार
पुरुषैः	पुरुषोंके द्वारा	कृपण	दुर्बलजनोंपर
यथा	जैसे	वत्सलः	स्नेह रखनेवाले
त एव	उन्हीं	भगवान् व्यासः	भगवान् व्यासने
वेदाः	वेदोंका	चकार	(विभाजन) कर दिया ॥२४॥
धार्यन्ते	धारण (याद रखना) सम्भव बने		

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ।
कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥२५॥

स्त्रीः शूद्रः द्विज बन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा कर्म श्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेत् इह इति भारतं आख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥२५॥

स्त्रीः	स्त्रियों
शूद्रः	शूद्रों
द्विजबन्धूनां	पतित द्विजातियों (के लिए)
त्रयी	(कर्म, ज्ञान,उपासना प्रतिपादक) वेद
श्रुतिगोचरा न	श्रवण-गोचर नहीं है (इनका वेदाध्यनमें अधिकार नहीं है ।)
श्रेयसि	कल्याणकारी
कर्म	कर्मोंके (विषयमें)
मूढानां	अनजानोंका
एवं	इस प्रकार
इह	संसारमें
श्रेयः	कल्याण
भवेत्	होगा
इति	ऐसा (सोचकर)
कृपया	कृपा करके
मुनिना	मुनि व्यासजीने
भारतं	महाभारत रूप
आख्यानं	कथात्मक ग्रंथ
कृतं	बनाया ॥२५॥

एवं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयसि द्विजाः ।
सर्वात्मकेनापि यदा नातुष्यद्हृदयं ततः ॥२६॥

एवं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयसि द्विजाः सर्वात्मकेन अपि यदा न अतुष्यत् हृदयं ततः ॥ २६ ॥

द्विजाः	ब्राह्मणो (शौनकादि ऋषियो) !
सदा	सर्वदा
सर्वात्मकेन	सम्पूर्ण शक्तिसे
एवं	इस प्रकार
भूतानां	प्राणियोंके
श्रेयसि	कल्याणमें
प्रवृत्तस्य	लगे रहनेपर
अपि	भी
यदाहृदयं	जब हृदय
अतुष्यत्	सन्तुष्ट
न	नहीं हुआ,
ततः	तब ॥२६॥

नातिप्रसीदद्हृदयः सरस्वत्यास्तटे शुचौ ।
वितर्कयन् विविक्तस्थ इदं प्रोवाच धर्मवित् ॥२७॥

नाति प्रसीदत् हृदयः सरस्वत्याः तटे शुचौ वितर्कयन् विविक्तस्थः इदं प्रोवाच धर्मवित् ॥ ७ ॥

शुचौ	पवित्र	प्रसीदत्	निर्मल होता है (यह देखकर)*
सरस्वत्याः	सरस्वतीके		
तटे	किनारेपर	धर्मवित्	धर्मज्ञ (व्यासजी)
विविक्तस्थः	एकान्तमें बैठनेपर भी	वितर्कयन्	विचार करते हुए (मन-ही-मन)
हृदयः	हृदय	इदं	यह
नाति	बहुत नहीं	प्रोवाच	बोले ॥२७॥

धृतव्रतेन हि मया छन्दांसि गुरवोऽग्नयः ।
मानिता निर्व्यलीकेन गृहीतं चानुशासनम् ॥२८॥

धृतव्रतेन हि मया छन्दांसि गुरवः अग्नयः मानिताः निर्व्यलीकेन गृहीतं च अनुशासनम् ॥ २८ ॥

मया	मैंने	मानिताः	सम्मान किया है
निर्व्यलीकेन	निष्कपट भावसे	च	और
धृतव्रतेन हि	व्रत धारण करके ही	अनुशासनं	(उनकी) आज्ञाका
छन्दांसि	वेदोंका,	गृहीतं	(ग्रहण) पालन
गुरवः	गुरुजनोंका,		किया है ॥२८॥
अग्नयः	हवनीय अग्नियोंका		

भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः ।
दृश्यते यत्र धर्मादि स्त्रीशूद्रादिभिरप्युत ॥२९॥

भारत व्यपदेशेन हि आम्नाय अर्थः च दर्शितः दृश्यते यत्र धर्म आदि स्त्री शूद्र आदिभिः अपि उत ॥ २९ ॥

भारत	महाभारत (की)	च	भी
व्यपदेशेन	(रचनाके) बहानेसे	दर्शितः	बतला दिया है।
हि	निश्चय ही	यत्र	जिसमें
आम्नाय	वेदोंका	स्त्री	स्त्री
अर्थः	अर्थ	शूद्र	शूद्र

* स्थान पवित्र है, एकान्त है तब भी हृदय बहुत सन्तुष्ट नहीं ?

आदिभिः	आदिके द्वारा भी	उत	निश्चयपूर्वक
धर्मः	धर्म,	दृश्यते	देखे (जाने) जाते
आदि	आदि		हैं ॥२९॥
अपि	भी		

तथापि बत मे दैह्यो ह्यात्मा चैवात्मना विभुः ।
असम्पन्न इवाभाति ब्रह्मवर्चस्यसत्तमः ॥३०॥

तथापि बत मे दैह्यः हि आत्मा च एव आत्मना विभुः असम्पन्न इव आभाति ब्रह्मवर्चस्य सत्तमः ॥ ३० ॥

ब्रह्मवर्चस्य	ब्रह्मचर्यके तेजसे	विभुः	सर्वव्यापक
सत्तमः	भली प्रकार पूर्ण हूँ	आत्मना	अपने स्वरूप
तथापि	फिर भी	च एव	से ही
बत	आश्चर्य हैं कि	असम्पन्न	अपूर्णकी
मेहि	मेरा तो	इव	भाँति
दैह्यः	देहस्थ	आभाति	प्रतीत होता है ।३०।
आत्मा	चित्त		

किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः ।
प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः ॥३१॥

किं वा भागवताः धर्मा न प्रायेण निरूपिताः प्रियाः पारमहंसानां त एव हि अच्युतः प्रियाः ॥ ३१ ॥

वा	अथवा	निरूपिताः	निरूपण
किं	क्या	न	नहीं किया है
पारमहंसानां	परमहंसोंको	हि	क्योंकि
प्रियाः	प्रिय लगनेवाले	त	वही
भागवताः	भक्ति सम्बन्धी	एव	तो
धर्माः	धर्मोंका	अच्युतः	भगवानको भी
प्रायेण	प्रधानतापूर्वक	प्रियाः	प्रिय हैं ॥३१॥

तस्यैवं खिलमात्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः ।
कृष्णस्य नारदोऽभ्यागादाश्रमं प्रागुदाहृतम् ॥३२॥

तस्य एवं खिलं आत्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः कृष्णस्य नारदः अभि आगत् आश्रमं प्राक् उदाहृतम् ॥ ३२ ॥

एवं	इस प्रकार		व्यासके
आत्मानं	अपनेको	प्राग्	पहिले
खिलं	अपूर्ण	उदाहृतं	बतलाये गये
मन्यमानस्य	मानते हुए	आश्रमं	आश्रमपर
तस्य	उनके	नारदः	देवर्षि नारद
खिद्यतः	खेद करते हुए	अभि	अचानक
कृष्णस्य	श्रीकृष्ण द्वैपायन	आगात्	आगये ॥३२॥

तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिः ।
पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम् ॥३३॥

तं अभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थाय आगतं मुनिः पूजयामास विधिवत् नारदं सुरपूजितम् ॥ ३३ ॥

मुनिः	मुनि व्यासने	सुरपूजितं	देवताओंसे भी पूजित
सहसा	अचानक	तं	उन
आगतं	आये हुए	नारदं	नारदजीकी
अभिज्ञाय	जानकर	विधिवत्	विधिपूर्वक
प्रत्युत्थाय	उठकर खड़े हुए	पूजयामास	पूजाकी ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः

अथ पञ्चमोऽध्यायः

सूत उवाच–

अथ तं सुखमासीन उपासीनं बृहच्छ्रवाः ।
देवर्षिः प्राह विप्रर्षि वीणापाणिः स्मयन्निव ॥१॥

अथ तं सुखं आसीनं उपासीनं बृहत् श्रवाः देवर्षिः प्राह विप्रर्षि वीणापाणिः स्मयन् इव ॥ १ ॥

अथ	तदनन्तर	स्मयन् इव	मुस्कराते हुए से
सुखं	सुखपूर्वक	तं	उन
आसीनं	बैठे हुए	उपासीनं	समीप बैठे
बृहत् श्रवाः	बहुश्रुत	विप्रर्षि	व्यासजीसे
वीणापाणिः	हाथमें वीणा लिए	प्राह	कहा ॥१॥
देवर्षिः	नारदजीने		

नारद उवाच–

पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना ।
परितुष्यति शारीर आत्मा मानस एव वा ॥२॥

पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चित् आत्मना परितुष्यति शारीर आत्मा मानस एव वा ॥ २ ॥

महाभाग	महान् भाग्यशाली	आत्मा वा	बुद्धि और
पाराशर्य	पराशर-नन्दनजी !	मानस	मन
भवतः	आपके	एव	भी
आत्मना	अपने प्रयत्नसे	कच्चित्	निश्चित
शारीर	शरीरका	परितुष्यति	सन्तुष्ट तो है ? ॥२॥

जिज्ञासितं सुसम्पन्नमपि ते महदद्भुतम् ।
कृतवान् भारतं यस्त्वं सर्वार्थपरिबृंहितम् ॥३॥

जिज्ञासितं सुसम्पन्नं अपि ते महत् अद्भुतं कृतवान् भारतं यः त्वं सर्वं अर्थं परिबृंहितम् ॥ ३ ॥

ते	आपकी	अद्भुतं	अद्भुत
जिज्ञासितं	जिज्ञासा	सर्वं	सब
अपि	तो	अर्थं	पुरुषार्थोंके (प्रतिपादनसे)
सुसम्पन्नं	भली प्रकार पूर्ण हो चुकी है	परिबृंहितं	परिपूर्ण
यः	जो	भारतं	महाभारतकी
त्वं	आपने	कृतवान्	रचना की ॥३॥
महत्	महान्		

जिज्ञासितमधीतं च यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ।
अथापि शोचस्यात्मानकृतार्थं इव प्रभो ॥४॥

जिज्ञासितं अधीतं च यत् तत् ब्रह्म सनातनं अथ अपि शोचसि आत्मानं अकृतार्थं इव प्रभो ॥ ४ ॥

यत्	जो	अथ	अब
सनातनं	नित्य	प्रभो	[illegible] होते हुए
ब्रह्म	परमब्रह्म है	अपि	[illegible]
तत्	उसकी भी	आत्मानं	अपनेको
जिज्ञासितं	जिज्ञासाकी	अकृतार्थं	कृतार्थं न हुएकी
च	और	इव	भाँति
अधीतं	(उसका) अधिगम किया है	शोचसि	चिन्ता करते हो ॥४॥

व्यास उवाच–

अस्त्येव मे सर्वमिदं त्वयोक्तं
तथापि नात्मा परितुष्यते मे ।
तन्मूलमव्यक्तमगाधबोधं
पृच्छामहे त्वाऽऽत्मभवात्मभूतम् ॥५॥

अस्ति एव मे सर्वं इदं त्वया उक्तं तथापि न आत्मा परितुष्यते मे तत् मूलं अव्यक्तं अगाध बोधं पृच्छामहे त्वां आत्मभव आत्मभूतं ॥ ५ ॥

त्वया	आपके द्वारा	**न**	नहीं होता है।
उक्तं	बतलाया गया	**आत्मभव**	स्वयंभू ब्रह्माजीके
इदं	यह	**आत्मभूतं**	मानसपुत्र
सर्वं	सब	**अगाध**	अगाध
मे	मुझमें	**बोधं**	ज्ञानवाले
अस्ति	है	**त्वां**	आपसे
एव	ही	**तत्**	उसका
तथापि	फिर भी	**अव्यक्तं**	प्रकट न होनेवाला
मे	मेरा	**मूलं**	कारण
आत्मा	चित्त	**पृच्छामहे**	पूछता हूँ ॥५॥
परितुष्यते	सन्तुष्ट		

स वै भवान् वेद समस्तगुह्य-
मुपासितो यत्पुरुषः पुराणः ।
परावरेशो मनसैव विश्वं
सृजत्यवत्यत्ति गुणैरसङ्गः ॥६॥

स वै भवान् वेद समस्त गुह्यं उपासितः यत् पुरुषः पुराणः परावरेशः मनसा एव विश्वं सृजति अवति अत्ति गुणैः असंगः ॥ ६ ॥

स	वह	**मनसा**	मनसे
वै	निश्चय	**एव**	ही
भवान्	आप	**गुणैः**	(प्रकृतिके) गुणोंसे
समस्त	सम्पूर्ण	**असंगः**	अलिप्त रहते हुए
गुह्यं	रहस्योंको	**विश्वं**	विश्वकी
वेद	जानते हैं	**सृजति**	सृष्टि करते हैं
यत्	क्योंकि	**अवति**	रक्षा करते हैं
परावर	लोक-परलोकके	**अत्ति**	खा लेते (प्रलय
ईशः	स्वामी (जो)		करते) हैं

पुराणः	(उन) सनातन	उपासितः	(आपने) उपासनाकी
पुरुषः	पुरुषकी		है ॥६॥

त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकी-
मन्तश्चरो वायुरिवात्मसाक्षी ।
परावरे ब्रह्मणि धर्मतो व्रतैः
स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व ॥७॥

त्वं परि अटन अर्क इव त्रिलोकीं अन्तः चरः वायुः इव आत्म साक्षी परावरे ब्रह्मणि धर्मतः व्रतैः स्नातस्य मे न्यूनं अलं विचक्ष्व ॥ ७ ॥

त्वं	आप	साक्षी	देखनेवाले हैं,
अर्क	सूर्यकी	धर्मतः	धर्मपूर्वक
इव	भाँति	व्रतैः	नियमोंका पालन करके
त्रिलोकीं	तीनों लोकोंमें	परावरे	परमब्रह्म और
परि	चारों ओर	ब्रह्मणि	अवर ब्रह्म (वेदों)में
अटन	घूमते हुए	स्नातस्य	पूर्णत्व प्राप्त
वायुः	वायुकी	मे	मेरी
इव	भाँति	अलं	भारी
अन्तः	भीतर भी	न्यून	न्यूनताको
चरः	विचरण करके	विचक्ष्व	बतलाइये ॥७॥
आत्म	(सबके) चित्तके		

नारद उवाच–

भवतानुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम् ।
येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम् ॥८॥

भवता अनुदितं प्रायं यशः भगवतः अमलं येन एव असौ न तुष्येत मन्ये तत् दर्शनं खिलम् ॥ ८ ॥

भवता	आपने	यशः	यशका
भगवतः	भगवान्‌के	प्रायः	प्रायः
अमलं	निर्मल	अनुदितः	वर्णन नहीं किया है।

यम	जिससे	तत्	वह
यसी	ये (भगवान)	दर्शनं	शास्त्र या ज्ञान
व	ही	खिलं	अपूर्ण
	नहीं	मन्ये	(मैं) मानता
ुष्येत	सन्तुष्ट होते		हूँ ॥८॥

यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः ।
न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः ॥९॥

यथा धर्म आदयः च अर्थाः मुनिवर्यः अनुकीर्तिताः न तथा वासुदेवस्य महिमा हि अनुवर्णितः ॥ ९ ॥

मुनिवर्यः	मुनि श्रेष्ठ !	कीर्तिताः	वर्णन किया है
था	जैसे (आपने)	हि	क्योंकि
र्म	धर्म	तथा	वैसे
ादयः	आदि अर्थ,काम,मोक्ष	वासुदेवस्य	भगवान् वासुदेवकी
	और	महिमा	महिमाका
र्थाः	पुरुषार्थोंका	अनुवर्णितः	बार बार वर्णन
नु	बार बार	न	नहीं किया है ॥९॥

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा
न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्षयाः ॥१०॥

न यत् वचः चित्रपदं हरेः यशः जगत् पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् तत् वायसं तीर्थं उशन्ति मानसाः न यत्र हंसाः निरमन्ति उशिक्षया ॥ १० ॥

त्	जिस	पवित्रं	पवित्र करनेवाला
चित्रपदं	विचित्र (अलंकारादि युक्त) पदवाली	हरेः	श्रीहरिका
		यशः	सुयश
चः	वाणीमें	न प्रगृणीत	भली प्रकार नहीं गाया गया है
गत्	जगतको		

तत्	तो वह	मानसाः	मानसरोवर निवासी
उशन्ति	उच्छिष्ट फेंकनेके		
वायसं	कौओंके	उशिक्षयाः	उत्तम शिक्षावाले
तीर्थं	स्थान (के समान) है	हंसाः	हंसगण
यत्र	जहाँ	न	नहीं
कर्हिचित्	कभी भी	निरमन्ति	भली प्रकार रमण करते ॥१०॥

तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो
यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत्
शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥११॥

तत् वाक् विसर्गः जनताः अघ विप्लवाः यस्मिन् प्रतिश्लोकं अबद्धवत् अपि नामानि अनन्तस्य यशः अंकितानि यत् शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥ ११ ॥

अबद्ध	ठीक (छन्द अलंकार रहित)	प्रतिश्लोकं	प्रत्येक श्लोक (पद) में
वत्	होनेपर	अनन्तस्य	भगवानके
अपि	भी	यशः	सुयशसे
तत्	उस	अंकितानि	अंकित
वाक्	वाणीका	नामानि	नाम हैं,
विसर्गः	बोलना	यत्	क्योंकि
जनताः	लोगोंके	साधवः	साधु (महात्मा) गण
अघ	पापोंका	शृण्वन्ति	उसे सुनते हैं
विप्लवः	विनाशक है	गायन्ति	गाते हैं
यस्मिन्	जिसमें	गृणन्ति	कीर्तन करते हैं ।११

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ॥१२॥

नैष्कर्म्यं अपि अच्युत भाव वर्जितं न शोभते ज्ञानं अलं निरञ्जनं
कुतः पुनः शश्वत् अभद्रं ईश्वरे न च अर्पितं कर्म यदपि अकारणम् ॥ १२ ॥

अच्युत	भगवत्	न	नहीं
भाव	भावसे	अर्पितं	अर्पण हुआ
वर्जितं	रहित	कर्म च	(सकाम) कर्म तो
निरञ्जनं	निर्मल	शश्वत्	सदा ही
नैष्कर्म्यं	मोक्षदायी	अभद्रं	अमंगल रूप (है)
ज्ञानं	ज्ञान	यद्यपि	यद्यपि
अपि	भी	अकारणं	निष्काम हो (तो भी)
अलं	पूर्णतः		
न शोभते	शोभा नहीं देता	कुतः	कहाँ (शोभित हो सकते हैं) ॥१२॥
पुनः	फिर		
ईश्वरे	भगवानको		

अथो महाभाग भवानमोघदृक् शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः ।
उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम् ॥१३॥

अथो महाभाग भवान् अमोघ दृक् शुचि श्रवाः सत्यरतः धृतव्रतः
उरुक्रमस्य अखिल बन्ध मुक्तये समाधिना अनुस्मर तत् विचेष्टितम् ॥ १३ ॥

महाभाग	महाभाग्यवान् व्यासजी !	अखिल	सब लोगोंको
		बन्ध	बन्धन (जन्म-मरण) से
भवान्	आप		
अमोघ	अव्यर्थ	मुक्तये	मुक्त करनेके लिए
दृक्	दृष्टि (ज्ञान) वाले हैं,	तत्	उन
		उरुक्रमस्य	अनन्त पराक्रमके
शुचि	पवित्र (शास्त्रों) का	विचेष्टितं	लीलाओंको
श्रवाः	श्रवण करनेवाले हैं,	समाधिना	समाधि (एकाग्रता) के द्वारा
सत्यरतः	सत्यनिष्ठ हैं,		
धृतव्रतः	व्रतधारी हैं,	अनुस्मर	भली प्रकार स्मरण कीजिये ॥१३॥
अथो	अतः अब		

ततोऽन्यथा किंचन यद्विवक्षतः
पृथग्दृशस्तत्कृतरूपनामभिः ।
न कुत्रचित्क्वापि च दुःस्थिता मति-
र्लभेत वाताहतनौरिवास्पदम् ॥१४॥

ततः अन्यथा किंचन यत् विवक्षतः पृथक् दृशः तत् कृत रूप नामभिः न कुत्रचित् क्वापि च दुःस्थिता मतिः लभेत वात आहतः नौः इव आस्पदम् ॥ १४ ॥

ततः	उस (भगवतलीला)से	दुःस्थिता	भटकती हुई
अन्यथा	पृथक	मतिः	(उसकी) बुद्धि
यत्	जो	कुत्रचित्	कहीं भी
किंचन	कुछ भी	क्वापि	कभी
विवक्षतः	बोलना चाहता है	च	भी
पृथक्	(भगवानसे) अलग	वात	वायु (अन्धड़) से
दृशः	दृष्टिवाला (हो जाता) है	आहतः	मारी गयी
तत्	उस (पृथक दृष्टि)	नौः	नौकाके
कृत	बनाये	इव	समान
रूप	रूपों	आस्पदं	स्थिर होनेका आधार
नामभिः	नामोंमें	न	नहीं
		लभेत	प्राप्त कर पाती ।१४।

जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः
स्वभावरक्तस्य महान् व्यतिक्रमः ।
यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो
न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥१५॥

जुगुप्सितं धर्मकृते अनुशासनः स्वभाव-रक्तस्य महान् व्यतिक्रमः यत् वाक्यतः धर्म इति इतरः स्थितः न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥ १५ ॥

स्वभाव-रक्तस्य	स्वभावसे ही आसक्तोंके लिए	जुगुप्सितं	निन्दित कर्मोंका
		धर्मकृते	धर्मके लिए

अनुशासतः	एक सीमामें आज्ञा देनेसे	**इति**	ऐसा ही है (मानकर)
महान्	बहुत बड़ा	**इतरः**	अधर्ममें
व्यतिक्रमः	उलट-पुलट हुआ है।	**स्थितः**	स्थित
यत्	क्योंकि	**जनः**	लोग
वाक्यतः	(आपकी उस) आज्ञाको ही	**तस्य**	उसका
		निवारणं	मना करना
धर्म	धर्म	**न**	नहीं
		मन्यते	मानते ॥१५॥*

विचक्षणोऽस्यार्हति वेदितुं विभो-
रनन्तपारस्य निवृत्तितः सुखम् ।
प्रवर्तमानस्य गुणैरनात्मन-
स्ततो भवान्दर्शय चेष्टितं विभोः ॥१६॥

विचक्षणः अस्य अर्हति वेदितुं विभोः अनन्त पारस्य निवृत्तितः सुखं प्रवर्तमानस्य गुणैः अनात्मनः ततः भवान् दर्शय चेष्टितं विभोः ॥ १६ ॥

विचक्षणः	विशेष विचारवान्	**वेदितुं**	जाननेमें
निवृत्तितः	(संसारसे) विरक्त होनेके कारण	**अर्हति**	समर्थ होता है।
		ततः	इसलिए
अस्य	इन	**गुणैः**	(सत्त्वादि) गुणोंके द्वारा
अनन्त पारस्य	अनन्तअपार		
विभोः	सर्वव्यापक (परमात्मा) के	**अनात्मनः**	अनात्मा (जड़ जगत) में
सुखं	आनन्दको		

---

* आपने तो मांसाहारादिको रोकनेके लिए अमुक विधिसे ही उसको करनेकी आज्ञा दी; किन्तु लोगोंने उस आज्ञाको ही धर्म मान लिया और उसके निवारण 'अहिंसा परमोधर्मः' आदिको नहीं मानते। यह धर्ममें महान् व्यतिक्रम होगया।

प्रवर्तमानस्य	प्रवृत्तिमें लगे लोगोंके लिए	चेष्टितं	लीलाओंका
विभोः	भगवानकी	दर्शय	दर्शन कराइये (वर्णन कीजिये)।१६।

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरे-
र्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं
को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ॥१७॥

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेः भजन् अपक्वः अथ पतेत् ततः यदि यत्र क्व वा अभद्रं अभूत् अमुष्य किं क्वः वा अर्थ आप्तः अभजतां स्वधर्मतः ॥ १७ ॥

स्व	अपने (वर्णाश्रम विहित)	क्व	कहीं
धर्मं	धर्मको	वा	होवे
त्यक्त्वा	छोड़कर	अमुष्य	उसका
हरेः	श्रीहरिके	किं	क्या
चरणाम्बुजं	चरण-कमलोंका	अभद्रं	अमंगल
भजन्	भजन करते हुए	अभूत	हुआ (या हो सकता है) ?
अपक्वः	दृढ़निष्ठा रहित	स्वधर्मतः	अपने धर्मपूर्वक रहते
अथ	कहीं	अभजतां	भजन न करने वालोंको
यदि	यदि	कः वा	कौनसा
ततः	उस (भजन) से	अर्थ	पुरुषार्थ
पतेत्	गिर जाय (भजन छोड़ दे)	आप्तः	प्राप्त हुआ है ? ।१७।
यत्र	चाहे जहाँ		

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः ।
तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीररंहसा ॥१८॥

तस्य एव हेतोः प्रयतेत कोविदः न लभ्यते यत् भ्रमतां उपरि अधः तत् लभ्यते दुःखवत् अन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीर रंहसा ॥ १८ ॥

कोविदः	चतुरव्यक्ति	तत्	वह
तस्य	उसके	सुखं	(सांसारिक) सुख
एव	ही	दुःखवत्	दुःखकी भाँति
हेतोः	लिए	सर्वत्र	सब कहीं (सब
प्रयतेत	पूरा प्रयत्न करे		योनियोंमें)
यत्	जो	गभीर	गंभीर
उपरि	ऊपर (स्वर्गादि)	रंहसा	वेगवाले
अधः	(नरकादि) नीचे	कालेन	कालके द्वारा
भ्रमतां	भटकते (जन्म लेते)		(समय पाकर)
	रहनेपर भी	अन्यतः	अप्रयास (स्वतः)
न	नहीं	लभ्यते	प्राप्त होता ही
लभ्यते	मिलता		है ॥।८॥

न वै जनो जातु कथंचनाव्रजेन्
मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम् ।
स्मरन्मुकुन्दाङ्घ्र्युपगूहनं पुनर
विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो यतः ॥१९॥

न वै जनः जातु कथंचन आव्रजेत् मुकुन्द सेवा अन्यत् अंग संसृतिं स्मरन् मुकुन्द अंघ्रि उपगूहनं पुनः विहातुं इच्छेत् न रसग्रहः यतः ॥ १९ ॥

अंग	प्रिय व्यासजी !	न आव्रजेत्	पूरी तरह नहीं
मुकुन्द	भगवानकी		पड़ता ।
सेवा	सेवा (करनेवाला)	मुकुन्द	भगवानके
जनः	भक्त	अंघ्रि	श्रीचरणोंके
कथंचन	किसी प्रकार	उपगूहनं	आलिंगनका
जातु	जन्म लेनेपर भी	स्मरन्	स्मरण करके
वै	निश्चय ही	पुनः	फिर
अन्यत्	(दूसरोंके समान)	विहातुं	(उनको) छोड़नेकी
	दूसरी योनियोंमें	न इच्छेत्	इच्छा नहीं करता
संसृतिं	जन्म-मरणके चक्रमें		

यतः	क्योंकि		चस्का पड़ चुका
रसग्रहः	(उस) रसका		है ॥१९॥

इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो यतो जगत्स्थाननिरोधसम्भवाः ।
तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथापि वै प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् ॥२०॥

इदं हि विश्वं भगवान् इव इतरः यतः जगत् स्थान निरोध सम्भवाः तत् हि स्वयं वेद भवान् तथापि वै प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् ॥ २० ॥

यतः	जिनसे	इतरः	(पर इससे) पृथक
जगत्	संसारकी		भी वे हैं ।
स्थान	स्थिति	तत्	इसको
निरोध	प्रलय	हि	क्योंकि
सम्भवाः	उत्पत्ति होती है	भवान्	आप
हि	निश्चय ही	स्वयं	स्वयं
इदं	यह	वेद	जानते हैं
विश्वं	विश्व	तथापि	फिर भी
भगवान्	भगवान्‌की	वै	निश्चय ही
इव	ही भाँति हैं	भवतः	आपके लिए
	(भगवान ही हैं) ।	प्रादेशमात्रं	संकेतमात्र
		प्रदर्शितम्	दिखलाया है ॥२०॥

त्वमात्मनाऽऽत्मानमवेह्यमोघदृक्
परस्य पुंसः परमात्मनः कलाम् ।
अजं प्रजातं जगतः शिवाय तत्
महानुभावाभ्युदयोऽधिगण्यताम् ॥२१॥

त्वं आत्मना आत्मानं अवेहि अमोघ दृक् परस्य पुंसः परमात्मनः कलां अजं प्रजातं जगतः शिवाय तत् महानुभावः अभ्युदयः अधिगण्यताम् ।२१।

त्वं	आप	दृक्	दृष्टिवाले हैं (अतः)
अमोघ	अव्यर्थ	आत्मानं	अपने आपको

आत्मना	अपने द्वारा ही
अवेहि	जानिये (कि आप स्वयं)
परस्य	परम
पुंसः	पुरुषकी
परमात्मनः	परमात्माकी
कलां	कला हैं
अजं	अजन्मा (होनेपर भी)
जगतः	संसारके
शिवाय	कल्याणके लिए
प्रजातं	अवतीर्ण हुए हैं
तत्	इसलिए
महानुभावः	महान् प्रभाववाले भगवान्‌की
अभ्युदयः	उत्कर्ष (लीलाओं) का
अधिगण्यताम्	भली प्रकार वर्णन कीजिये ॥२१॥

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः ।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥२२॥

इदं हि पुंसः तपसः श्रुतस्य वा सु इष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः अविच्युतः अर्थः कविभिः निरूपितः यत् उत्तमश्लोक गुणान् अनुवर्णनम् ॥२२॥

पुंसः	मनुष्योंकी
तपसः	तपस्या,
श्रुतस्य	वेदाध्ययन,
वा	और
सु इष्टस्ट	उत्तम यज्ञानुष्ठान
सूक्तस्य	स्वाध्याय,
बुद्धि	ज्ञान,
च	और
दत्तयोः	दानका
अविच्युतः	अविचल
अर्थः	प्रयोजन
इदं	यह
हि	ही (है)।
कविभिः	बुद्धिमानों द्वारा (इसीका)
निरूपितः	निरूपण किया गया है
यत्	कि
उत्तमश्लोक	उत्तम यशवाले (भगवान) के
गुणान्	गुणोंका
अनुवर्णनम्	बार बार वर्णन किया जाय ॥२२॥

अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने
दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनाम् ।
निरूपितो बालक एव योगिनां
शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षताम् ॥२३॥

अहं पुरा अतीत भवे अभवं मुने दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनां निरूपितः बालकः एव योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षतास् ॥ २३ ॥

मुने	मुनि व्यासजी !	बालकः	बालक (अवस्थामें)
अहं	मैं	एव	ही
पुरा	पहिले	प्रावृषि	वर्षा ऋतुमें
अतीत	बीते हुए	निर्विविक्षतां	(चातुर्मास्य) निवास करनेवाले
भवे	जन्ममें	योगिनां	योगियोंकी
कस्याश्चन	किसी	शुश्रूषणे	सेवामें
वेदवादिनां	वेदवादीकी	निरूपितः	नियुक्त किया गया था ॥२३॥
दास्यास्तु	दासीमें		
अभवं	उत्पन्न हुआ था।		

ते मय्यपेताखिलचापलेऽर्भके दान्तेऽधृतक्रीडनकेऽनुवर्तिनि ।
चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्यदर्शनाः शुश्रूषमाणे मुनयोऽल्पभाषिणि ॥२४॥

ते मयि अपेते अखिल चापले अर्भके दान्ते अधृतः क्रीडनके अनुवर्तिनि चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्य दर्शनाः शुश्रूषमाणेः मुनयः अल्पभाषिणि ॥ २४ ॥

अर्भके	छोटे बालक(होनेपर भी)	शुश्रूषमाणे	सेवापरायण,
अखिल	सब	अल्पभाषिणि	कम बोलनेवाले
चापले	चपलताओंको	मयि	मुझपर
अपेते	छोड़े हुए,	ते	उन
दान्ते	इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले,	मुनयः	मुनियोंने
क्रीडनके	खिलौनोंको	यद्यपि	यद्यपि
अधृतः	न लेनेवाले,	तुल्यदर्शनाः	समदर्शी थे (फिर भी)
अनुवर्तिनि	आज्ञापालक,	कृपां	कृपा
		चक्रुः	की ॥२४॥

उच्छिष्टलेपाननुमोदितो द्विजैः
सकृत्स्म भुञ्जे तदपास्तकिल्बिषः ।
एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतस-
स्तद्धर्म एवात्मरुचिः प्रजायते ॥२५॥

उच्छिष्ट लेपान् अनुमोदितः द्विजैः सकृत् स्म भुञ्जे ततः अपास्त किल्बिषः एवं प्रवृत्तस्य विशुद्ध चेतसः ततः धर्म एव आत्म रुचिः प्रजायते ॥ २५ ॥

द्विजैः	उन ब्राह्मणोंसे	अपास्त	मिट गये ।
अनुमोदितः	अनुमति पाकर*	एवं	इस प्रकार
उच्छिष्ट	जूठा,	प्रवृत्तस्य	व्यवहार करते हुए
लेपान्	(बर्तनोंमें) लगा हुआ लेप	विशुद्ध तेजसः	अत्यन्त शुद्ध चित्तवाले
सकृत्	एक बार	आत्म	मेरी अपनी
स्म	ही	रुचिः	रुचि
भुञ्जे	खा लेता था ।	ततः	उन (योगियों) के
ततः	उससे	धर्म एव	धर्ममें ही
किल्बिषः	पाप	प्रजायते	उत्पन्न हो गयी ।२५।

तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायताम्
अनुग्रहेणाशृणवं मनोहराः ।
ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विशृण्वतः
प्रियश्रवस्यङ्ग ममाभवद्रुचिः ॥२६॥

तत्र अन्वहं कृष्णकथाः प्रगायतां अनुग्रहेण अशृणवं मनोहराः ताः श्रद्धया मे अनुपदं विशृण्वतः प्रियश्रवस्य अङ्ग मम अभवत् रुचिः ॥ २६ ॥

अङ्ग	प्रिय (व्यासजी) !	अन्वहं	प्रतिदिन
तत्र	वहाँ	मनोहराः	मनोहर

* क्योंकि स्मृतिमें आज्ञा है कि ब्राह्मण शूद्रको अपना उच्छिष्ट न दे ।

कृष्ण कथाः	श्रीकृष्ण की कथा	श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक
प्रगायतां	(उन महात्माओंके द्वारा) भली प्रकार गायन की जाती हुई	मे	मेरे
		विश्रृण्वतः	ध्यानपूर्वक सुनते हु
अनुग्रहेण	(उन महापुरुषोंकी) कृपासे	प्रिय श्रवस्य	प्रियकीर्ति (भगवान) में
अश्रृणवं	सुनता था।	मम	मेरी
ताः	उस (कथा) का	रुचिः	रुचि
अनुपदं	एक-एक पद	अभवत्	होगयी ॥२६॥

तस्मिंस्तदा लब्धरुचेर्महामुने
प्रियश्रवस्यस्खलिता मतिर्मम ।
ययाहमेतत्सदसत्स्वमायया
पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ॥२७॥

तस्मिन्: तदा लब्ध रुचेः महामुने प्रियश्रवस्य अस्खलिता मति मम यया अहं एतत् सदसत् स्वमायया पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ॥२७॥

महामुने	महामुनि व्यासजी !	यया	जिस (बुद्धि)के द्वार
तदा	तब	अहं	मैं
तस्मिन्	उन (भगवान) में	स्वमायया	अपनी मायासे
रुचेः	रुचिके	एतत्	यह
लब्धः	प्राप्त होनेपर	सदसत्	सत् असत् (जगत्)
प्रियश्रवस्य	प्रिय कीर्ति (भगवान) के विषयमें	मयि	मुझ
		परे	परम
मम	मेरी	ब्रह्मणि	ब्रह्ममें
मतिः	बुद्धि	कल्पितं	कल्पित
अस्खलिता	निश्चल होगयी,	पश्ये	देखने लगा ॥२७॥

इत्थं शरत्प्रावृषिकावृतू हरे-
र्विश्रृण्वतो मेऽनुसवं यशोऽमलम् ।
संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभिर्
भक्तिः प्रवृत्ताऽऽत्मरजस्तमोपहा ॥२८॥

इत्थं शरत् प्रावृषिकाः ऋतू हरेः विशृण्वतः मे अनुसवं यशः अमलं संकीर्त्यमानं मुनिभिः महात्मभिः भक्तिः प्रवृत्ताः आत्म रजः तमः अपहा ॥२८॥

इत्थं	इस प्रकार	मे	मेरे द्वारा
शरत्	शरद	विशृण्वतः	बहुत ध्यानपूर्वक (बराबर) श्रवण करनेसे
प्रावृषिकाः	प्रावृट्* ऋतुओंमें		
महात्मभिः	महात्मा	आत्म	अपने चित्तका
मुनिभिः	मुनियोंके द्वारा	रजः	रजोगुण (चंचलता)
अनुसवं	तीनों समय	तमः	तमोगुण (लय हो जाना) को
हरेः	श्रीहरिके		
अमलं	निर्मल	अपहा	मिटा देनेवाली
यशः	यशका	भक्तिः	भक्ति
संकीर्त्यमानं	संकीर्तन किये जानेसे	प्रवृत्ताः	सक्रिय हो गयी ।२८।

तस्यैवं मेऽनुरक्तस्य प्रश्रितस्य हतैनसः ।
श्रद्दधानस्य बालस्य दान्तस्यानुचरस्य च ॥२९॥

तस्य एवं मे अनुरक्तस्य प्रश्रितस्य हत एनसः श्रद्दधानस्य बालस्य दान्तस्य अनुचरस्य च ॥ २९ ॥

एवं	इस प्रकार	श्रद्दधानस्य	श्रद्धा करनेवाले,
तस्य	उस	दान्तस्य	इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले
मे	मुझ		
अनुरक्तस्य	प्रेम (भक्ति) करनेवाले	च	और
		अनुचरस्य	आज्ञापालक सेवक
प्रश्रितस्य	विनीतके	बालस्य	बालकको ॥२९॥
हत एनसः	निष्पाप हुए,		

---

* आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें ऋतुओंका नाम थोड़ा भिन्न है। उनके अनुसार ज्येष्ठ-आषाढ़ मास वर्षाऋतु और श्रावण-भाद्र प्रावृट् ऋतुके हैं। चातुर्मास प्रावृट् (आषाढ़ शु० ११) से प्रारम्भ होता है।

ज्ञानं गुह्यतमं यत्तत्साक्षाद्भगवतोदितम् ।
अन्ववोचन् गमिष्यन्तः कृपया दीनवत्सलाः ॥३०॥

ज्ञानं गुह्यतमं यत् तत् साक्षात् भगवता उदितं अन्वोचन् गमिष्यन्तः कृपया दीनवत्सलाः ॥ ३० ॥

यत्	जो	दीनवत्सलाः	दीनोंपर वात्सल्य रखनेवाले (उन मुनियोंने)
साक्षात्	स्वयं		
भगवता	भगवानके द्वारा		
उदितं	प्रकट हुआ (उपदिष्ट)	गमिष्यन्तः	जानेके समय
गुह्यतमं	अत्यन्त रहस्यात्मक	कृपया	कृपापूर्वक
ज्ञानं	ज्ञान है	अन्वोचन्	उपदेश किया ॥३०॥
तत्	वह		

येनैवाहं भगवतो वासुदेवस्य वेधसः ।
मायानुभावमविदं येन गच्छन्ति तत्पदम् ॥३१॥

येन एव अहं भगवतः वासुदेवस्य वेधसः माया अनुभावं अविदं येन गच्छन्ति तत् पदम् ॥ ३१ ॥

येन	जिसके द्वारा	अनुभावं	प्रभावको
एव	ही	अविदं	जान सका
अहं	मैंने	येन	जिसके जाननेपर
वेधसः	सृष्टिकर्ता	तत्	उन (भगवानके)
भगवतः	भगवान्	पदं	पदको
वासुदेवस्य	वासुदेवकी	गच्छन्ति	जाते (पाते) हैं ।३१।
माया	मायाके		

एतत्संसूचितं ब्रह्मंस्तापत्रयचिकित्सितम् ।
यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम् ॥३२॥

एतत् संसूचितं ब्रह्मन् तापत्रय चिकित्सितं यत् ईश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम् ॥ ३२ ॥

ब्रह्मन्	व्यासजी !	ईश्वरे	सर्व नियन्ता
एतत्	यह	ब्रह्मणि	परमात्मा
तापत्रय	तीनों तापोंकी	भगवति	सर्वेश्वर्ययुक्तमें
चिकित्सितं	चिकित्सा	कर्म	कर्मका
संसूचितं	भली प्रकार (मैंने) सूचित कर दी ।	भावितं	भावनासे समर्पण है ॥३२॥
यत्	कि वह		

आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत ।
तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम् ॥३३॥

आमयः यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत तत् एव हि आमयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम् ॥ ३३ ॥

सुव्रत	उत्तम व्रतनिष्ठ (व्यासजी) !	एव	ही
		आमयं	रोगकारी
भूतानां	प्राणियोंको	द्रव्यं	पदार्थ
येन	जिसके द्वारा (जिस वस्तुके सेवनसे)	हि	क्या
		चिकित्सितं	चिकित्सामें प्रयुक्त होनेपर*
यश्च	जो		
आमयः	रोग	पुनाति	पवित्र (आरोग्य)
जायते	उत्पन्न हो जाता है	न	नहीं करता ?॥३३॥
तत्	वह		

एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः ।
त एवात्मविनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे ॥३४॥

एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृति हेतवः त एव आत्म विनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे ॥ ३४ ॥

---

* होम्योपैथीका मूल सिद्धान्त ही है कि जिस पदार्थके सेवनसे जो रोग होते हैं, उसी पदार्थ के द्वारा (उसकी सूक्ष्म मात्रासे) वे रोग दूर हो जाते हैं । इस नियम को यहाँ बतलाया गया है । अतः होम्योपैथी नवीन आविष्कार नहीं है ।

एवं	इसी प्रकार	परे	परमात्मामें
सर्वे	सब	कल्पिताः	भावित (समर्पित)
क्रियायोगाः	क्रियायोग		करनेपर
नृणां	मनुष्योंके	आत्म	अपने (कर्म
संसृति	जन्म-मरणके		परम्पराके ही)
हेतवः	कारण हैं ।	विनाशाय	नष्ट करनेके
त	वे	कल्पन्ते	कारण बन जाते
एव	ही		हैं ॥३४॥

यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम् ।
ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम् ॥३५॥

यत् अत्र क्रियते कर्म भगवत् परितोषणं ज्ञानं यत् तत् अधीनं हि भक्तियोगः समन्वितम् ॥ ३५ ॥

हि	क्योंकि	अधीनं	आधीन (उसके
अत्र	इस लोकमें		द्वारा ही)
यत्	जो	यत्	जो
कर्म	कर्म	भक्तियोगः	भक्तियोगसे
भगवत्	भगवान्‌को	सम्वन्वितं	समन्वित
परितोषणं	सन्तुष्ट करनेके लिए	ज्ञानं	ज्ञान है
क्रियते	किया जाता है		(वह है) ॥३५॥
तत्	उसके		

कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगवच्छिक्षयासकृत् ।
गृणन्ति गुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरन्ति च ॥३६॥

कुर्वाणाः यत्र कर्माणि भगवत् इच्छया असकृत् गृणन्ति गुण नामानि कृष्णस्य अनुस्मरन्ति च ॥ ३६ ॥

यत्र	जिस (भगवदर्थ	असकृत्	बराबर
	कर्मके मार्गमें)	कर्माणि	कर्मोंको
भगवत	भगवानकी	कुर्वाणाः	करते हुए (लोग)
इच्छया	इच्छानुसार	कृष्णस्य	श्रीकृष्णके

गुण	गुणोंको	च	और
नामानि	(और) नामोंको	अनुस्मरन्ति	बराबर स्मरण
गृणन्ति	गाते हैं		करते हैं ॥३६॥

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥३७॥

नमः भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥ ३७ ॥

तुभ्यं	आप	प्रद्युम्नाय	प्रद्युम्नको,
भगवते	भगवान्	अनिरुद्धाय	अनिरुद्धको
वासुदेवाय	वासुदेवको	च	और
नमः	नमस्कार है ।	सङ्कर्षणाय	सङ्कर्षण (बलराम)
धीमहि	(आपका हम)		जी को
	ध्यान करते हैं ।	नमः	नमस्कार है ॥३७॥

इति मूर्त्यभिधानेन मन्त्रमूर्तिममूर्तिकम् ।
यजते यज्ञपुरुषं स सम्यग्दर्शनः पुमान् ॥३८॥

इति मूर्ति अभिधानेन मन्त्रमूर्तिं अमूर्तिकं यजते यज्ञपुरुषं स सम्यक् दर्शनः पुमान् ॥ ३८ ॥

इति	इस प्रकार (जो)	यजते	यजन करता है
मूर्ति	(चतुर्व्यूहात्मक)	स	वह
	मूर्तियोंके	पुमान्	पुरुष
अभिधानेन	नामोंसे	सम्यक्	ठीक
अमूर्तिकं	निराकार	दर्शनः	देखने (जानने)
मन्त्रमूर्ति	मन्त्रस्वरूप		वाला है ॥३८॥
यज्ञपुरुषं	यज्ञ पुरुषका		

इमं स्वनिगमं ब्रह्मन्नवेत्य मदनुष्ठितम् ।
अदान्मे ज्ञानमैश्वर्यं स्वस्मिन् भावं च केशवः ॥३९॥

इमं स्व निगमं ब्रह्मन् अवेत्य मत् अनुष्ठितं अदात् मे ज्ञानं ऐश्वर्यं स्वस्मिन् भावं च केशवः ॥ ३९ ॥

ब्रह्मन्	व्यासजी !	केशवः	भगवान् केशवने
इमं	इस	मे	मुझे
स्व	अपने द्वारा	ज्ञानं	ज्ञान,
निगमं	उपदिष्टका	ऐश्वर्यं	ऐश्वर्य
मत्	मेरे द्वारा	च	और
अनुष्ठितं	अनुष्ठान किया गया है,	स्वस्मिन्	अपनेमें
		भावं	भक्ति
अवेत्य	(ऐसा) जानकर	अदात्	प्रदान की ॥३९॥

त्वमप्यदभ्रश्रुत विश्रुतं विभोः
समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम् ।
आख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां
संक्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा ॥४०॥

त्वं अपि अदभ्र श्रुत विश्रुतं विभोः समाप्यते येन विदां बुभुत्सितं आख्याहि दुःखैः मुहुः अर्दित आत्मनां संक्लेश निर्वाणं उशन्ति न अन्यथा ॥४०॥

त्वं	आप	समाप्यते	परितुष्ट होती है ।
अपि	भी	दुःखैः	दुःखोंसे
अदभ्र	परिपूर्ण	मुहुः	बार बार
श्रुतः	ज्ञानवाले हैं	अर्दित	रौंदे
विभोः	सर्वव्यापक भगवानकी	आत्मनां	चित्तवालोंके
		संक्लेशः	क्लेशोंकी
विश्रुतं	कीर्तिका	निर्वाणं	समाप्तिका
आख्याहि	वर्णन कीजिये,	अन्यथा	दूसरा कोई
येन	जिसके द्वारा	उशन्ति	उपाय
विदां	विद्वानोंकी (भी)	न	नहीं है ॥४०॥
बुभुत्सितं	जिज्ञासा		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः

अथ षष्ठोऽध्यायः

सूत उवाच–

एवं निशम्य भगवान्देवर्षेर्जन्म कर्म च ।
भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्मन् व्यासः सत्यवतीसुतः ॥१॥

एवं निशम्य भगवान् देवर्षेः जन्म कर्म च भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्मन् व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥

ब्रह्मन्	शौनकादि ऋषियो !	भूयः	फिर
एवं	इस प्रकार	सत्यवतीसुतः	सत्यवती नन्दन
देवर्षेः	देवर्षि नारदके	भगवान्	भगवान्
जन्म	पूर्व जन्म	व्यासः	व्यासने
च	और	तं	उन (नारदजी) से
कर्म	कर्म (साधना) को	पप्रच्छ	पूछा ॥१॥
निशम्य	सुनकर		

व्यास उवाच–

भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टभिस्तव ।
वर्तमानो वयस्याद्ये ततः किमकरोद्भवान् ॥२॥

विक्षुभिः विप्रवसिते विज्ञान आदेष्टभिः तव वर्तमानः वयसि आद्ये ततः किं अकरोत् भवान् ॥ २ ॥

तव	आपको	विप्रवसिते	प्रवासमें चले जानेपर
विज्ञान	ज्ञानका		
आदेष्टभिः	(आदेश) उपदेश करनेवाले	आद्ये	आदिकी (बचपनकी)
भिक्षुभिः	भिक्षुओं (महात्माओं) के	वयसि	अवस्थामें
		वर्तमानः	होनेपर

भवान्	आपने	किं	क्या
ततः	तब	अकरोत्	किया ? ॥२॥

स्वायम्भुव कया वृत्त्या वर्तितं ते परं वयः ।
कथं चेदमुदस्राक्षीः काले प्राप्ते कलेवरम् ॥३॥

स्वायम्भुव कया वृत्त्याः वर्तितं ते परं वयः कथं च इदं उदस्राक्षीः काले प्राप्ते कलेवरम् ॥ ३ ॥

स्वायम्भुव	ब्रह्माजीके पुत्र !	काले	काल (मृत्यु) के
ते	आपकी	प्राप्ते	आनेपर
परं	शेष	इदं	इस (उस जन्मके)
वयः	आयु	कलेवरं	शरीरको
कया	किस	कथं	कैसे
वृत्त्याः	वृत्ति (प्रकार) से	उदस्राक्षीः	उत्सर्जित किया (छोड़ा) ? ॥३॥
वर्तितं	व्यतीत हुई		
च	और		

प्राक्कल्पविषयामेतां स्मृतिं ते सुरसत्तम ।
न ह्येष व्यवधात्काल एष सर्वनिराकृतिः ॥४॥

प्राक् कल्प विषयां एतां स्मृतिं ते सुर सत्तम न हि एष व्यवधात् कालः एष सर्वः निराकृतिः ॥ ४ ॥

सुर	देवताओंमें	एष	यह
सत्तम	श्रेष्ठ (नारदजी)	कालः	काल
ते	आपकी	व्यवधात्	बाधित (कैसे)
प्राक्	पहिले	न	नहीं कर सका
कल्प	जन्म	हि	क्योंकि
विषयां	सम्बन्धी	एष	यह (काल)
एतां	इस	सर्वः	सब कुछ
स्मृतिं	स्मृतिको	निराकृतिः	नष्ट कर देता है ।४॥

आरद उवाच–

भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिर्मम ।
वर्तमानो वयस्याद्ये तत एतदकारषम् ॥५॥

भिक्षुभिः विप्रवसिते विज्ञान आदेष्टृभिः मम वर्तमानः वयसि आद्ये तत एतत् अकारषम् ॥ ५ ॥

मम	मुझे	वयसि	आयुमें
विज्ञान	ज्ञानके	वर्तमानः	होनेपर भी
आदेष्टृभिः	उपदेश करनेवाले	तत्	तब (मैंने)
भिक्षुभिः	महात्माओंके	एतत्	यह
विप्रवसिते	प्रवासमें चले जानेपर	अकारषम्	किया ॥५॥
आद्ये	पहिली		

एकात्मजा मे जननी योषिन्मूढा च किंकरी ।
मय्यात्मजेऽनन्यगतौ चक्रे स्नेहानुबन्धनम् ॥६॥

एक आत्मजा मे जननी योषित् मूढ़ा च किंकरी मयि आत्मजे अनन्यगतौ चक्रे स्नेह अनुबन्धनम् ॥ ६ ॥

मे	मेरी	च	तथा
जननी	माता	किंकरी	दासी थी ।
एक	एक ही	अनन्यगतौ	अनन्यगति
आत्मजा	पुत्रवाली थी ।	मयि आत्मजे	मुझ पुत्रमें
मूढ़ा	(वह) नादान,	स्नेह अनुबन्धनं	अत्यधिक स्नेह
योषित्	स्त्री	चक्रे	करती थी ॥६॥

सास्वतन्त्रा न कल्पाऽऽसीद्योगक्षेमं ममेच्छती ।
ईशस्य हि वशे लोको योषा दारुमयी यथा ॥७॥

सा अस्वतन्त्रा न कल्प आसीत् योगक्षेमं मम इच्छती ईशस्य हि वशे लोकः योषा दारुमयी यथा ॥ ७ ॥

सा	वह	कल्प	समर्थ
अस्वतन्त्रा	पराधीन (होनेसे)	न	नहीं

आसीत्	थी,	दारुमयी	लकड़ी थी
मम	मेरा	योषा	पुतलीकी
योगक्षेमं	योगक्षेम (तो)	यथा	तरह
इच्छती	चाहती थी;	ईशस्य	ईश्वरके
हि	क्योंकि	वशे	वशमें हैं ॥७॥
लोकः	सब लोग		

अहं च तद्ब्रह्मकुले ऋषिवांस्तदपेक्षया ।
दिग्देशकालाव्युत्पन्नो बालकः पञ्चहायनः ॥८॥

अहं च तत् ब्रह्मकुले ऋषिवांः तत् अपेक्षया दिक् देशकाल अव्युत्पन्न बालकः पञ्चहायनः ॥ ८ ॥

तत्	उस (माँ की)	पञ्च	पाँच
अपेक्षया	अपेक्षा होनेसे	हायनः	वर्षका
अहं	मैं	बालकः	बालक (होनेसे)
च	भी	दिक्	दिशाओं
तत्	उसी	देश	स्थानों
ब्रह्मकुले	ब्राह्मणके घर	काल	समयसे
ऋषिवान्	रहता रहा (क्योंकि)	अव्युत्पन्नः	अनजान था ॥८॥

एकदा निर्गतां गेहादुहन्तीं निशि गां पथि ।
सर्पोऽदशत्पदा स्पृष्टः कृपणां कालचोदितः ॥९॥

एकदा निर्गतां गेहात् दुहन्तीं निशि गां पथि सर्पः अदशत् पदा स्पृष्ट कृपणां कालः चोदितः ॥ ९ ॥

एकदा	एक बार	सर्पः	सर्पने
गां	गायको	पथि	मार्गमें
दुहन्तीं	दुहनेके लिए	पदा	पैरसे
निशि	रातको	स्पृष्टः	छू जानेपर
गेहात्	घरसे	काल	कालकेद्वारा
निर्गतां	निकली हुई	चोदितः	प्रेरित
कृपणां	बेचारीको	अदशत्	दंशन कर लिया ॥९

तदा तदहमीशस्य भक्तानां शमभीप्सतः ।
अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशमुत्तराम् ॥१०॥

तदा तत् अहं ईशस्य भक्तानां शं अभीप्सतः अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशं उत्तराम् ॥ १० ॥

तदा	तब	तत्	वहँ
अहं	मैं	अनुग्रहं	अनुग्रह
भक्तानां	भक्तोंका	मन्यमानः	मानता हुआ
शं	कल्याण	उत्तरां	उत्तरकी
अभीप्सतः	चाहते हुए	दिशं	दिशामें
ईशस्य	ईश्वरका	प्रातिष्ठं	चल पड़ा ॥१०॥

स्फीताञ्जनपदांस्तत्र पुरग्रामव्रजाकरान् ।
खेटखर्वटवाटीश्च वनान्युपवनानि च ॥११॥

स्फीतान् जनपदान् तत्र पुरः ग्रामः व्रजः आकरान् खेटः खर्वटः वाटीः च वनानि उपवनानि च ॥ ११ ॥

तत्र	उस मार्गमें	खेटः	खेड़े-छोटे ग्राम थे,
स्फीतान्	सम्पन्न	खर्वटः	खलिहान थे,
जनपदान्	मनुष्योंकी बस्तियाँ थीं (जिनमें)	च	और
		वाटीः	अकेली (खेतोंपर) झोपड़ियाँ थीं,
पुरः	नगर थे,	वनानि	वन थे
ग्रामः	गाँव (कस्बे) थे,	च	और
व्रजः	स्थानान्तरण होते रहनेवाले गाँव थे,	उपवनानि	उपवन-बगीचे थे ॥११॥
आकरान्	खदाने थीं,		

चित्रधातुविचित्राद्रीनिभभग्नभुजद्रुमान् ।
जलाशयाञ्छिवजलान्नलिनीः सुरसेविताः ॥१२॥

चित्र धातु विचित्र अद्रीन् इभ भग्न भुजः द्रुमान् जलाशययान् शिव जलान् नलिनीः सुर सेविताः ॥ १२ ॥

चित्र	अनेक रंगोंकी	शिव	कल्याणकारी
धातु	धातुएँ (गेरू, रामरज आदि),		(निर्मल)
विचित्र	अनेक आकारवाले	जलान्	जलवाले
अद्रीन्	पर्वतोंको,	जलाशयान्	जलाशयोंको,
इभ	हाथीके द्वारा		(जिनमें)
भग्न	तोड़ी हुई	सुर	देवताओंकी
भुज	शाखाओंवाले	सेविताः	सेवामें लगनेवाली
द्रुमान्	वृक्षोंको,	नलिनीः	कमलिनी थीं ।१२।

चित्रस्वनैः पत्ररथैर्विभ्रमद्भ्रमरश्रियः ।
नलवेणुशरस्तम्बकुशकीचकगह्वरम् ॥१३॥

चित्र स्वनैः पत्ररथैः विभ्रमत् भ्रमर श्रियः नल वेणु शरस्तम्ब कुश कीचक गह्वरम् ॥ १३ ॥

चित्र	अनेक प्रकारके	वेणु	बांस,
स्वनैः	बोली बोलनेवाले	शरस्तम्ब	काँसके झुरमुट,
पत्ररथैः	पक्षी थे,	कुश	कुश,
भ्रमर	भौंरों	कीचक	टेढ़े उलझे बाँसोंसे
श्रियः	की शोभा	गह्वरं	बहुत घना (वन)
विभ्रमत्	फैल रही थी,		था ॥१३॥
नल	नरकुल		

एक एवातियातोऽहमद्राक्षं विपिनं महत् ।
घोरं प्रतिभयाकारं व्यालोलूकशिवाजिरम् ॥१४॥

एकः एव अतियातः अहं अद्राक्षं विपिनं महत् घोरं प्रति भयाकार व्यालः उलूकः शिवाः अजिरम् ॥ १४ ॥

एकः	अकेला	अहं	मैंने
एव	ही	व्यालः	सर्पों,
अतियातः	बहुत चलकर	उलूकः	उल्लू,

शिवाः	शृगालोंके	भयाकारं	भयका स्वरूप हो (ऐसा)
अजिरम्	घूमनेके आँगन जैसा	विपिनं	वन
बहुत्	बड़ा भारी	अद्राक्षं	देखा ॥१४॥
घोरं	भयानक		
इति	जैसे		

परिश्रान्तेन्द्रियात्माहं तृट्परीतो बुभुक्षितः ।
स्नात्वा पीत्वा ह्रदे नद्या उपस्पृष्टो गतश्रमः ॥१५॥

परिश्रान्तः इन्द्रियः आत्माः अहं तृट परीतः बुभुक्षितः स्नात्वा पीत्वा ह्रदे नद्याः उपसृष्टः गतः श्रमः ॥ १५ ॥

अहं	मैं	नद्याः	नदीके
इन्द्रियः	इन्द्रियोंसे	ह्रदे	ह्रद (कुण्ड) के
आत्माः	मनसे	उपसृष्टः	पास पहुँचकर
परिश्रान्तः	बहुत थक गया था,	स्नात्वा	स्नान करके
तृट्	प्याससे	पीत्वा	जल पीकर
परीतः	घिरा था,	श्रमः	थकान
बुभुक्षितः	भूखा था,	गतः	दूर हुई ॥१५॥

तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये पिप्पलोपस्थ आस्थितः ।
आत्मनाऽऽत्मानमात्मस्थं यथाश्रुतमचिन्तयम् ॥१६॥

तस्मिन् निर्मनुजे अरण्ये पिप्पल उपस्थः आस्थितः आत्मना आत्मानं आत्मस्थं यथा श्रुतं अचिन्तयम् ॥ १६ ॥

तस्मिन्	उस	आत्मना	अपने मनमें
निर्मनुजे	मनुष्य रहित	आत्मानं	अपने आत्माका
अरण्ये	वनमें	आत्मस्थं	अपने भीतर ही
पिप्पल	पीपल वृक्षकी	यथाश्रुतं	जैसा सुना था वैसा
उपस्थः	जड़के समीप	अचिन्तयम्	चिन्तन करने लगा ॥१६॥
आस्थितः	बैठकर		

ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा ।
औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः ॥१७॥

ध्यायतः चरणाम्भोजं भाव निर्जितः चेतसा औत्कण्ठ्य अश्रु: कलाक्षस्य हृदि आसीत् मे शनैः हरिः ॥ १७ ॥

भाव	भावनासे	कलाक्षस्य	भरे नेत्रवाले
निर्जितः	भली प्रकार जीते	मे	मेरे
चेतसा	चित्तके द्वारा	हृदि	हृदयमें
चरणाम्भोजं	चरणकमलका	हरिः	श्रीहरि
ध्यायतः	ध्यान करते हुए	शनैः	धीरेसे
औत्कण्ठ्य	उत्कण्ठासे	आसीत्	प्रकट होगये ॥१७॥
अश्रु:	आँसू		

प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकाङ्गोऽतिनिर्वृतः ।
आनन्दसम्प्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने ॥१८॥

प्रेम अति भरः निर्भिन्नः पुलकः अंगः अति निर्वृतः आनन्द सम्प्लवे लीनः न अपश्यं उभयं मुने ॥ १८ ॥

मुने	व्यासजी !	आनन्द	आनन्दकी
अति	अत्यन्त	सम्प्लवे	बाढ़में
प्रेम	प्रेमके	लीनः	डूब गया
भरः	उभाड़से	उभयं	दोनों (अपने और ध्येय) को
निर्भिन्नः	उठ खड़े हुए	अपश्यं	देखता
पुलकः	रोमोंसे	न	नहीं था । (भूल गया ।) ॥१८॥
अङ्गः	शरीर भर गया ।		
अति	बहुत अधिक		
निर्वृतः	आनन्दमग्न होकर		

रूपं भगवतो यत्तन्मनःकान्तं शुचापहम् ।
अपश्यन् सहसोत्तस्थे वैक्लव्याद्दुर्मना इव ॥१९॥

रूपं भगवता, यत् तत् मनः कान्तं शुचाः अपहं अपश्यन् सहसा उत्तस्थे वैकल्यात् दुर्मना इव ॥ १९ ॥

मनः	मनको	रूपं	रूप था (उसको)
कान्तं	अत्यन्त प्रिय,	अपश्यन्	न देखकर
शुचाः	शोकको	सहसाः	अचानक
अपहं	दूर करनेवाला	वैकल्यात्	व्याकुलतासे
भगवता	भगवान्‌का	दुर्मना	खिन्न
तत्	वह	इव	की भाँति
यत्	जो	उत्तस्थे	उठ खड़ा हुआ ॥१९॥

दिदृक्षुस्तदहं भूयः प्रणिधाय मनो हृदि ।
वीक्षमाणोऽपि नापश्यमवितृप्त इवातुरः ॥२०॥

दिदृक्षुः तत् अहं भूयः प्रणिधाय मनः हृदि वीक्षमाणः अपि न अपश्यं अवितृप्तः इव आतुरः ॥ २० ॥

हृदि	हृदयमें	अपि	पर भी
तत्	उस (रूप) को	अहं	मैं
भूयः	फिरसे	अपश्यं	देख
दिदृक्षुः	देखनेकी इच्छासे,	न	नहीं सका,
मनः	मनको	अवितृप्तः	अतृप्त
प्रणिधाय	भली प्रकार एकाग्र करके	इव	के समान
वीक्षमाणः	देखनेका प्रयत्न करने	आतुरः	व्याकुल होगया।२०।

एवं यतन्तं विजने मामाहागोचरो गिराम् ।
गम्भीरश्लक्ष्णया वाचा शुचः प्रशमयन्निव ॥२१॥

एवं यतन्तं विजने मां आह अगोचरः गिरां गम्भीरं श्लक्ष्णया वाचाः शुचः प्रशमयन् इव ॥ २१ ॥

विजने	निर्जन वनमें	गिरां	वाणीके
एवं	इस प्रकार	अगोचरः	अगोचर (भगवान्)
यतन्तं	प्रयत्न करते हुए	गम्भीरं	गम्भीर
मां	मुझसे	श्लक्ष्णया	मधुर

वाचाः	वाणीसे	इव	से
शुचः	शोकको	आह	बोले ॥२१॥
प्रशमयन्	शान्त करते हुए		

*श्रीभगवानुवाच–

हन्तास्मिञ्जन्मनि भवान्मा मां द्रष्टुमिहार्हति ।
अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम् ॥२२॥

हन्त अस्मिन् जन्मनि भवान् मा मां द्रष्टुं इह अर्हति अविपक्वः कषायाणां दुर्दर्शः अहं कुयोगिनाम् ॥ २२ ॥

हन्त	खेद है कि	मा	नहीं हो ।
अस्मिन्	इस	अविपक्वः	पूर्ण शुद्ध नहीं हुई
जन्मनि	जन्ममें	कषायाणां	वासनाओंवाले
भवान्	तुम	कुयोगिनां	अधकचरे योगियोंके
इह	यहाँ (पृथ्वीपर)		लिए
मां	मुझे	अहं	मैं
द्रष्टुं	देखनेके	दुर्दर्शः	दुर्लभ दर्शनवाला
अर्हति	योग्य (अधिकारी)		हूँ ॥२२॥

सकृद् यद् दर्शितं रूपमेतत्कामाय तेऽनघ ।
मत्कामः शनकैः साधु सर्वान्मुञ्चति हृच्छयान् ॥२३॥

सकृत् यत् दर्शितं रूपं एतत् कामाय ते अनघ मत् कामः शनकैः साधुः सर्वान् मुञ्चति हृच्छयान् ॥ २३ ॥

अनघ	निष्पाप !	दर्शितं	दिखलाया है (वह)
सकृत्	एक बार	ते	तुम्हारी
यत्	जो	कामाय	लालसा बढ़ानेको
एतत्	यह		(दिखलाया है) ।
रूपं	रूप	मत्	मेरी (प्राप्ति की)

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

कामः	कामनावाला	सर्वान्	सब
साधुः	सज्जन पुरुष	हृच्छयान्	वासनाओंको
शनकैः	धीरे-धीरे	मुञ्चति	त्याग देता है ॥२३॥

सत्सेवया दीर्घया ते जाता मयि दृढा मतिः ।
हित्वावद्यमिमं लोकं गन्ता मज्जनतामसि ॥२४॥

सत् सेवया अदीर्घया ते जाताः मयि दृढाः मतिः हित्वा अवद्यं इमं लोकं गन्ताः मत् जनतां असि ॥ २४ ॥

सत्	संतोंकी	इमं	इस
सेवया	सेवा	अवद्यं	मलिन
अदीर्घया	थोड़े कालकी	लोकं	लोक (देह) को
ते	(होनेपर भी) तुम्हारी	हित्वा	त्यागकर
मयि	मुझमें	मत्	मेरे
दृढाः	दृढ	जनतां	पार्षदत्वको
मतिः	बुद्धि	गन्ताः	जानेवाले
जाता	(तुम्हारी) उत्पन्न होगयी है।	असि	हो ॥२४॥

मतिर्मयि निबद्धेयं न विपद्येत कर्हिचित् ।
प्रजासर्गनिरोधेऽपि स्मृतिश्च मदनुग्रहात् ॥२५॥

मतिः मयि निबद्धा इयं न विपद्येत कर्हिचित् प्रजाः सर्ग निरोधे अपि स्मृतिः च मत् अनुग्रहात् ॥ २५ ॥

मयि	मुझमें	सर्ग	सृष्टि
निबद्धा	बँधी हुई	निरोधे	प्रलयमें
इयं	यह (तुम्हारी)	अपि	भी
मतिः	बुद्धि	मत्	मेरे
कर्हिचित्	कभी भी	अनुग्रहात्	अनुग्रहसे
विपद्येत	टूटेगी	स्मृतिः	स्मृति
न	नहीं।	च	भी (बनी)
प्रजाः	प्रजाओंकी		रहेगी ॥२५॥

*नारद उवाच**–

एतावदुक्त्वोपरराम तन्महद्भूतं नभोलिङ्गमलिङ्गमीश्वरम् ।
अहं च तस्मै महतां महीयसे शीर्ष्णावनामं विदधेऽनुकम्पितः ॥२६॥

एतावत् उक्त्वा उपरराम तत् महत् भूतं नभोलिङ्गं अलिङ्गं ईश्वरं अहं च तस्मै महतां महीयसे शीर्ष्णाः अवनामं विदधे अनुकम्पितः ॥२६॥

एतावत्	इतना ही	अहं	मैंने
उक्त्वा	कहकर	च	भी
तत्	वह	अनुकम्पितः	(उनका) अनुगृहीत होकर
महत्	महान		
भूतं	स्वरूप	तस्मै	उन
नभो	आकाश	महतां	महानोंसे भी
लिङ्गं	चिह्नवाले (निराकार)	महीयसे	महत्तमको
		शीर्ष्णाः	सिरसे
अलिङ्गं	अव्यक्त	अवनामं	प्रणाम
ईश्वरं	ईश्वर	विदधे	किया ॥२६॥
उपरराम	चुप होगये ।		

नामान्यनन्तस्य हतत्रपः पठन्
गुह्यानि भद्राणि कृतानि च स्मरन् ।
गां पर्यटंस्तुष्टमना गतस्पृहः
कालं प्रतीक्षन् विमदो विमत्सरः ॥२७॥

नामानि अनन्तस्य हतत्रपः पठन् गुह्यानि भद्राणि कृतानि च स्मरन् गां पर्यटन् तुष्ट मनाः गतस्पृहः कालं प्रतीक्षन् विमदः विमत्सरः ॥ २७ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अनन्तस्य	भगवान् अनन्तके
नामानि	नामोंको
हृतत्रपः	लज्जा छोड़कर
पठन्	पढ़ते (गाते) हुए
च	और
गुह्यानि	रहस्यमय
भद्राणि	मंगलकारी
कृतानि	लीलाओंको
स्मरन्	स्मरण (चन्तन) करते हुए
विमदः	मदरहित
विमत्सरः	मत्सररहित
गतस्पृहः	स्पृहा (कामनाओं) को छोड़कर
तुष्टमनाः	सन्तुष्ट मनसे
कालं	कालकी
प्रतीक्षन	प्रतीक्षा करते हुए
गां	पृथ्वीपर
पर्यटन्	(मैं) घूमता रहा ॥२७॥

एवं कृष्णमतेर्ब्रह्मन्नसक्तस्यामलात्मनः ।
कालः प्रादुरभूत्काले तडित्सौदामनी यथा ॥२८॥

एवं कृष्ण मतेः ब्रह्मन् असक्तस्य अमलात्मनः कालः प्रादुरभूत् काले तडित् सौदामिनी यथा ॥ २८ ॥

ब्रह्मन्	व्यासजी !
एवं	इस प्रकार
कृष्ण	श्रीकृष्णमें
मतेः	लगी बुद्धिवाले
असक्तस्य	अनासक्त
अमलात्मनः	निर्मल चित्तवाले (मेरे लिए)
काले	समयपर
कालः	मृत्यु
प्रादुरभूत्	प्रकट हुई
यथा	जैसे
सौदामिनी	घटाओंमें
तडित्	बिजली (अचानक) प्रकट होती है ।२८।

प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुम् ।
आरब्धकर्मनिर्वाणो न्यपतत् पाञ्चभौतिकः ॥२९॥

प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुं आरब्ध कर्म निर्वाणः न्यपतत् पाञ्चभौतिकः ॥ २९ ॥

मयि	मुझे
तां	वह
शुद्धां	शुद्ध
भागवतीं	भगवत्पार्षदका
तनुं	शरीर

प्रपुज्यमाने	प्राप्त होनेके अवसरपर	निर्वाणः	समाप्त होजानेपर
आरब्ध	प्रारब्ध	पाञ्चभौतिकः	पञ्च महाभूतोंसे बना शरीर
कर्म	कर्मके	न्यपतत्	नष्ट होगया ॥२९॥

कल्पान्त इदमादाय शयानेऽम्भस्युदन्वतः ।
शिशयिषोरनुप्राणं विविशेऽन्तरहं विभोः ॥३०॥

कल्पान्ते इदं आदाय शयाने अम्भसि उदन्वतः शिशयिषोः अनुप्राणं विविशे अन्तः अहं विभोः ॥ ३० ॥

कल्पान्ते	कल्पके अन्तमें	शिशयिषोः	सोनेकी इच्छावाले ब्रह्माजीके साथ
इदं	इस सृष्टिको	अनुप्राणं	श्वास वायुके साथ
आदाय	समेटकर	अहं	मैं
उदन्वतः	कारणार्णवके	अन्तः	भीतर
अम्भसि	जलमें	विविशे	प्रविष्ट होगया ।३०।
शयाने	सोते हुए		
विभोः	भगवान विष्णुमें		

सहस्रयुगपर्यन्ते उत्थायेदं सिसृक्षतः ।
मरीचिमिश्रा ऋषयः प्राणेभ्योऽहं च जज्ञिरे ॥३१॥

सहस्र युग पर्यन्ते उत्थाय इदं सिसृक्षतः मरीचि मिश्राः ऋषयः प्राणेभ्यः अहं च जज्ञिरे ॥ ३१ ॥

सहस्र	सहस्र	प्राणेभ्यः	प्राणसे
युग	युग	मरीचि	मरीचि
पर्यन्ते	जितना समय (ब्राह्मी रात्रि) बीत जानेपर	मिश्राः	आदि
		ऋषयः	ऋषिगण
		च	और
उत्थाय	उठकर	अहं	मैं
इदं	इस संसारकी	जज्ञिरे	उत्पन्न हुआ ॥३१॥
सिसृक्षतः	सृष्टि करनेकी इच्छा वाले (ब्रह्माजी) के		

अन्तर्बहिश्च लोकांस्त्रीन् पर्येम्यस्कन्दितव्रतः ।
अनुग्रहान्महाविष्णोरविघातगतिः क्वचित् ॥३२॥

अन्तः बहिः च लोकान् त्रीन् पर्येमि अस्कन्दितः व्रतः अनुग्रहात् महाविष्णोः अविघात गतिः क्वचित् ॥ ३ ॥

त्रीन्	तीनों	अनुग्रहात्	अनुग्रहसे
लोकान्	लोकोंके	क्वचित्	कहीं भी
अन्तः	भीतर	गतिः	मेरी गति
बहिः	बाहर	अविघात	रोकी नहीं जाती
च	भी	व्रतः	मेरा व्रत (भक्ति)
पर्येमि	मैं पर्यटन करता हूँ,	अस्कन्दितः	कभी स्खलित नहीं होता ॥३२॥
महाविष्णोः	महाविष्णुके		

देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम् :
मूर्च्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम् ॥३३॥

देवदत्तां इमां वीणां स्वर ब्रह्म विभूषितां मूर्छयित्वा हरिकथां गायमानः चरामि अहम् ॥ ३३ ॥

इमां	इस	मूर्छयित्वा	बजाते हुए
देवदत्तां	भगवानकी दी हुई	हरिकथां	श्रीहरिकी कथा
स्वर ब्रह्म	स्वर ब्रह्म (भगवन्नामयश) से	गायमानः	गायन करते हुए
		अहं	मैं
विभूषितां	विशेषतः अलंकृत	चरामि	विचरण करता हूँ ॥३३॥
वीणां	वीणाको		

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः ।
आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥३४॥

प्रगायतः स्व वीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥ ३४ ॥

तीर्थपादः	जिनके चरण तीर्थ हैं	प्रियश्रवाः	जिनका यश सुननेमें प्रिय लगता है (वे भगवान)

स्व	अपने	आहूत	बुलाये गये
वीर्याणि	पराक्रमों (लीलाओं) को	इव	के समान
		शीघ्रं	झटपट
प्रगायतः	गाते हुए	दर्शनं	दर्शन
मे	मेरे	याति	देने लगते हैं ॥३४॥
चेतसि	चित्तमें		

एतद्धचातुरचित्तानां मात्रास्पर्शेच्छया मुहुः ।
भवसिन्धुप्लवो दृष्टो हरिचर्यानुवर्णनम् ॥३५॥

एतत् हि ध्यातुः अचित्तानां मात्रा स्पर्श इच्छयाः मुहुः भवसिन्धु प्लवः दृष्टः हरिचर्याः अनुवर्णनम् ॥ ३५ ॥

हि	क्योंकि		वालोंके लिए
अचित्तानां	अस्थिर चित्तवाले	एतत्	यही
मात्रा	तन्मात्राओं (शब्द, स्पर्श,रूप, रस, गंध) के	हरिचर्याः	भगवानकी लीलाओंका
		अनुवर्णनं	बार-बार वर्णन
स्पर्श	भोग	भवसिन्धु	संसार सागरसे पार होनेको
इच्छयाः	इच्छासे		
मुहुः	बार-बार	प्लवः	जहाज
ध्यातुः	(विषयोंमें) जाने	दृष्टः	बतलाया गया है।३५।

यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः ।
मुकुन्दसेवया यद्वत्तथाऽऽत्माद्धा न शाम्यति ॥३६॥

यम आदिभिः योगपथैः काम लोभ हतः मुहुः मुकुन्द सेवया यद्वत् तथा आत्मा अद्धा न शाम्यति ॥ ३६ ॥

काम	काम	मुकुन्द	भगवान् मुकुन्द
लोभ	लोभसे	सेवया	सेवासे
मुहुः	बार-बार	यद्वत्	जैसा
हतः	आहत	अद्धा	प्रत्यक्ष
आत्मा	चित्त	शाम्यति	शान्त (शुद्ध)होता है

तथा	वैसा	योगपथैः	योगके मार्गसे
यम	यम	न	नहीं
आदि	नियम,धारणा ध्यान आदि		(शुद्ध होता) ॥३६॥

सर्वं तदिदमाख्यातं यत्पृष्ठोऽहं त्वयानघ ।
जन्मकर्मरहस्यं मे भवतश्चात्मतोषणम् ॥३७॥

सर्वं तत् इदं आख्यातं यत् पृष्टः अहं त्वया अनघ जन्म कर्म रहस्यं मे भवता च आत्म तोषणम् ॥ ३७ ॥

अनघ	निष्पाप व्यासजी !	जन्म	जन्म
यत्	जो	कर्म	कर्म (तथा)
त्वया	आपके द्वारा	भवता	आपके
अहं	मुझसे	आत्म	चित्तको
पृष्टः	पूछा गया	तोषणं	सन्तुष्ट करनेवाला
इदं	यह	रहस्यं	रहस्य
सर्वं	सब	च	भी
तत्	वह	आख्यातं	बतला दिया ॥३७॥
मे	मेरा		

सूत उवाच–

एवं सम्भाष्य भगवान्नारदो वासवीसुतम् ।
आमन्त्र्य वीणां रणयन् ययौ यादृच्छिको मुनिः ॥३८॥

एवं सम्भाष्य भगवान् नारदः वासवीसुतं आमन्त्र्य वीणां रणयन् ययौ यादृच्छिकः मुनिः ॥ ३८ ॥

एवं	इस प्रकार	यादृच्छिकः	इच्छानुसार घूमनेवाले
सम्भाष्य	कहकर	भगवान्	भगवान् (ऐश्वर्यवान्)
वासवीसुतं	व्यासजीसे	नारदः	नारद
आमन्त्र्य	अनुमति लेकर		

मुनिः	मुनि	रणयन्	बजाते हुए
वीणां	वीणाको	ययौ	चले गये ॥३८॥

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः ।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत् ॥३९॥

अहो देवर्षिः धन्यः अयं यत् कीर्तिं शारङ्ग धन्वनः गायन् माद्यन् इदं तन्त्र्याः रमयति आतुरं जगत् ॥ ३९ ॥

अहो	अहा	माद्यन्	आनन्द मग्न हुए
अयं	ये	तन्त्र्याः	वीणाके द्वारा
देवर्षिः	देवर्षि नारदजी	इदं	इस
धन्यः	धन्य हैं	आतुरं	आतुर (त्रिताप व्याकुल)
यत्	जो	जगत्	संसारको
शारङ्ग धन्वनः	शारङ्ग धन्वा भगवानकी	रमयति	आनन्दित करते रहते हैं ॥३९॥
कीर्तिं	सुयशको		
गायन्	गाते हुए		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः

अथ सप्तमोऽध्यायः

शौनक उवाच-

निर्गते नारदे सूत भगवान् बादरायणः ।
श्रुतवांस्तदभिप्रेतं ततः किमकरोद्विभुः ॥१॥

निर्गते नारदे सूत भगवान् बादरायणः श्रुतवान् तत् अभिप्रेतं ततः किं अकरोत् विभुः ॥ १ ॥

सूत	सूतजी !	तत्	वह
नारदे	देवर्षि नारदके	अभिप्रेतं	अपना अभीष्ट
निर्गते	चले जानेपर	श्रुतवान्	सुन लिया था
भगवान्	शक्तियुक्त	ततः	तब फिर
विभुः	सर्वज्ञ	किं	क्या
बादरायणः	व्यासजीने	अकरोत्	किया ॥१॥

सूत उवाच-

ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यामाश्रमः पश्चिमे तटे ।
शम्याप्रास इति प्रोक्त ऋषीणां सत्रवर्धनः ॥२॥

ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यां आश्रमः पश्चिमे तटे शम्याप्रास इति प्रोक्तः ऋषीणां सत्र वर्द्धनः ॥ २ ॥

ब्रह्मनद्यां	ब्रह्मनदी	वर्द्धनः	बढ़ानेवाला
सरस्वत्यां	सरस्वतीके	शम्याप्रास	शम्याप्रास
पश्चिमे	पश्चिमी	इति	इस
तटे	किनारेपर	प्रोक्तः	नामका
ऋषीणां	ऋषियोंके	आश्रमः	आश्रम है ॥२॥
सत्र	यज्ञोंको		

तस्मिन् स्व आश्रमे व्यासो बदरीखण्डमण्डिते ।
आसीनोऽप उपस्पृश्य प्रणिदध्यौ मनः स्वयम् ॥३॥

तस्मिन् स्व आश्रमे व्यासः बदरीखण्डमण्डिते आसीनः अपः उपस्पृश्य प्रणिदध्यौ मनः स्वयं ॥ ३ ॥

तस्मिन्	उस	**व्यासः**	व्यासजीने
बदरीखण्डमण्डिते	बेरोंके झुंडसे शोभित	**अपः**	जलसे
		उपस्पृश्य	आचमन करके
स्व	अपने	**मनः**	मनको
आश्रमे	आश्रममें	**स्वयं**	मनके ही द्वारा
आसीनः	बैठकर	**प्रणिदध्यौ**	एकाग्र किया ॥३॥

भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले ।
अपश्यत्पुरुषं पूर्वं मायां च तदपाश्रयाम् ॥४॥

भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणहिते अमले अपश्यत् पुरुषं पूर्वं मायां च तत् अपाश्रयाम् ॥ ४ ॥

भक्तियोगेन	भक्तियोगके द्वारा	**पुरुषं**	पुरुष परमात्माको
सम्यक्	भली प्रकार	**च**	और
प्रणिहिते	एकाग्र हुए	**तत्**	उनके
अमले	निर्मल	**अपाश्रयां**	आश्रयमें रहनेवाली
मनसि	अन्तःकरणमें	**मायां**	मायाको
पूर्वं	आदि	**अपश्यत्**	देखा ॥४॥

यया सम्मोहितोजीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् ।
परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ॥५॥

यया सम्मोहितः जीवः आत्मानं त्रिगुणात्मकं परः अपि मनुते अनर्थं तत् कृतं च अभिपद्यते ॥ ५ ॥

यया	जिस (माया) से	**परः**	पर होनेपर
सम्मोहितः	सम्मोहित	**अपि**	भी
जीवः	जीव	**आत्मानं**	अपने आपको

त्रिगुणात्मकं	तीनों गुणोंसे युक्त	कृतं	किये हुए
मनुते	मानता है	अनर्थं	अनर्थोंको
च	और	अभिपद्यते	भोगता है ॥५॥
तत्	मायाके द्वारा		

अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे ।
लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम् ॥६॥

अनर्थः उपशमं साक्षात् भक्तियोगं अधोक्षजे लोकस्य अजानतः विद्वान् चक्रे सात्वत संहिताम् ॥ ६ ॥

अनर्थ	अनर्थोंकी	अजानतः	यह अज्ञात है,
उपशमं	शान्तिका	विद्वान्	ऐसा जानकर
साक्षात्	प्रत्यक्ष साधन	सात्वत	परमहंस
अधोक्षजे	हृषीकेशमें	संहितां	संहिता
भक्तियोगं	भक्तियोग है ।		(श्रीमद्भागवत) का
लोकस्य	लोगोंको	चक्रे	निर्माण किया ॥६॥

यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे ।
भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा ॥७॥

यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे भक्तिः उत्पद्यते पुंसः शोक मोह भय अपहा ॥ ७ ॥

यस्यां	जिसके	अपहा	दूर करनेवाली
श्रूयमाणायां	श्रवणमें लगे	परमपूरुषे	परमपुरुष
पुंसः	पुरुषोंमें	कृष्णे	श्रीकृष्ण में
वै	निश्चय ही	भक्तिः	भक्ति
शोक	शोक,	उत्पद्यते	उत्पन्न हो जाती
मोह	मोह,		है ॥७॥
भय	भयको		

स संहितां भागवतीं कृत्वानुक्रम्य चात्मजम् ।
शुकमध्यापयामास निवृत्तिनिरतं मुनिः ॥८॥

स संहितां भागवतीं कृत्वा अनुक्रम्य च आत्मज शुकं अध्यापयामास निवृत्ति निरतं मुनिः ॥ ८ ॥

स	उन	अनुक्रम्य	दुबारा देखकर
मुनिः	मुनि व्यासजीने	निवृत्ति	निवृत्ति
भागवतीं	श्रीमद्भागवतको	निरतं	निरत
संहितां	संहिता	आत्मजं	अपने पुत्र
कृत्वा	बनाकर	शुकं	शुकदेवजीको
च	और	अध्यापयामास	पढ़ाया ॥८॥

शौनक उवाच–

स वै निवृत्तिनिरतः सर्वत्रोपेक्षको मुनि ।
कस्य वा बृहतीमेतामात्मारामः समभ्यसत् ॥९॥

स वै निवृत्ति निरतः सर्वत्र उपेक्षकः मुनिः कस्य वा बृहतीं एतां आत्मारामः समभ्यसत ॥ ९ ॥

स	वे		आनन्द करनेवाले हैं ।
मुनिः	मुनि शुकदेवजी		
वै	तो	कस्य वा	किस कारणसे
निवृत्ति	निवृत्तिमें	एतां	इस
निरतः	अत्यन्त परायण हैं,	बृहतीं	बड़ी संहिताको
सर्वत्र	सब कहीं (सबकी)	समभ्यसत	भली प्रकार अभ्यास
उपेक्षकः	उपेक्षा करनेवाले हैं,		(अध्ययन)
आत्मारामः	अपनी आत्मामें ही		किया ? ॥९॥

सूत उवाच–

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ॥१०॥

आत्मारामाः च मुनयः निर्ग्रन्थाः अपि उरुक्रमे कुर्वन्ति अहैतुकीं भक्तिं इत्थं भूत गुणः हरिः ॥ १० ॥

आत्मारामाः	आत्मामें ही आनन्द करनेवाले	उरुक्रमे	अनन्त लीलामयकी
		अहैतुकीं	निष्काम
च	और	भक्तिं	भक्ति
निर्ग्रन्थाः	अविद्या ग्रन्थिसे रहित	कुर्वन्ति	करते हैं।
अपि	होनेपर भी	हरिः	भगवान्
मुनयः	मुनि (मननशील) लोग	इत्थंभूत	इस प्रकारके
		गुणः	गुणवाले ही हैं ॥१०॥

हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणिः ।
अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः ॥११॥

हरेः गुण आक्षिप्त मतिः भगवान् बादरायणिः अध्यगात् महत् आख्यानं नित्यं विष्णुजनः प्रियः ॥ ११ ॥

भगवान्	भगवान्	नित्यं	सदा
बादरायणिः	श्रीव्यासनन्दनजीने	विष्णुजनः	भगवद् भक्तोंको
हरेः	श्रीहरिके	प्रियः	प्रिय
गुण	गुणोंसे	महत्	बड़े
आक्षिप्त	आकर्षित	आख्यानं	आख्यान भागवतको
मतिः	बुद्धि होकर	अध्यगात्	अध्ययन किया ॥११॥

परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्मकर्मविलापनम् ।
संस्थां च पाण्डुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्णकथोदयम् ॥१२॥

परीक्षितः अथः राजर्षेः जन्म कर्म विलापनं संस्थां च पाण्डुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्ण कथा उदयम् ॥ १२ ॥

अथ	अब	कर्म	कर्म,
कृष्ण	श्रीकृष्णकी	विलापनं	मोक्ष
कथा	कथाकी	च	और
उदयम्	उद्गम रूप	पाण्डुपुत्राणां	पाण्डवोंके
राजर्षेः	राजर्षि	संस्थां	महाप्रयाणको
परीक्षितः	परिक्षितकी	वक्ष्ये	बतलाऊँगा ॥१२॥
जन्म	उत्पत्ति,		

यदा मृधे कौरवसृञ्जयानां
वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु ।
वृकोदराविद्धगदाभिमर्श-
भग्नोरुदण्डे धृतराष्ट्रपुत्रे ॥१३॥

यदा मृधे कौरव पाण्डवानां वीरेषु अथ वीरगतिं गतेषु वृकोदर आविद्ध गदा अभिमर्ष भग्न उरुदण्डे धृतराष्ट्र पुत्रे ॥ १३ ॥

यदा	जब	अथ	तदनन्तर
मृधे	युद्धमें	वृकोदरआविद्ध	भीमसेनकी चलायी
कौरव	कौरव	गदा	गदाके
पाण्डवानां	पाण्डव पक्षके	अभिमर्ष	आघातसे
वीरेषु	वीरोंके	धृतराष्ट्र	धृतराष्ट्रके
वीरगतिं	वीरगति	पुत्रे	पुत्र (दुर्योधन) के
गतेषु	जानेपर (मारे जानेपर)	उरुदण्डे	जाघोंके
		भग्न	टूट जानेपर ॥१३॥

भर्तुः प्रियं द्रौणिरिति स्म पश्यन्
कृष्णासुतानां स्वपतां शिरांसि ।
उपाहरद् विप्रियमेव तस्य
जुगुप्सितं कर्म विगर्हयन्ति ॥१४॥

भर्तुः प्रियं द्रोणिः इति स्म पश्यन् कृष्णा सुतानां स्वपतां शिरांसि उपाहरत् विप्रियं एव तस्य जुगुप्सितं कर्म विगर्हयन्ति ॥ १४ ॥

द्रोणिः	द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने	कृष्णा	द्रौपदीके
भर्तुः	अपने स्वामी दुर्योधनका	सुताणां	पुत्रोंके
प्रियं	प्रिय	शिरांसि	सिरोंको
इति स्म	इतना ही	उपाहरत्	(काटकर) ले आना (यह कार्य)
पश्यन्	देखा कि	तस्य	उस (दुर्योधन) को भी
स्वपतां	सोते हुए		

विप्रियं	अप्रिय	कर्म	कर्मकी
एव	ही लगा; क्योंकि	विगर्हयन्ति	(सब) निन्दा करते हैं ॥१४॥
जुगुप्सितं	निन्दित		

माता शिशूनां निधनं सुतानां
निशम्य घोरं परितप्यमाना ।
तदारुदद्वाष्पकलाकुलाक्षी
तां सान्त्वयन्नाह किरीटमाली ॥१५॥

माताः शिशूनां निधनं सुतानां निशम्य घोरं परितप्यमाना तदा अरुदत् वाष्पकलाः आकुलाक्षी तां सान्त्वयन् आह किरीटमाली ॥ १५ ॥

माताः	माता द्रौपदी	आकुलाक्षी	व्याकुल नेत्रोंवाली
शिशूनां	शिशु	अरुदत्	रोने लगी,
सुतानां	पुत्रोंकी	तदा	उस समय
घोरं	भयानक	तां	उसको
निधनं	मृत्यु	सान्त्वयन्	सान्त्वना देते हुए
निशम्य	सुनकर	किरीटमाली	अर्जुन
परितप्यमाना	दुःखी हुई	आह	बोले ॥१५॥
वाष्पकलाः	आँसुओंसे		

*अर्जुन उवाच**–

तदा शुचस्ते प्रमृजामि भद्रे
यद्ब्रह्मबन्धोः शिर आततायिनः ।
गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैरुपाहरे
त्वाऽऽक्रम्य यत्स्नास्यसि दग्धपुत्रा ॥१६॥

तदा शुचः ते प्रमृजामि भद्रे यत् ब्रह्मबन्धोः शिर आततायिनः गाण्डीव मुक्तैः विशिखैः उपाहरे तु आक्रम्य यत् स्नास्यसि दग्धपुत्रा ॥ १६ ॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भद्रे	कल्याणी !	गाण्डीव	गाण्डीव धनुषसे
तदा	उस समय	मुक्तैः	छूटे हुए
ते	तुम्हारे	विशिखैः	बाणोंसे
शुचः	आँसुओंको	उपाहरे	काट लाऊँगा
प्रमृजामि	पोंछूंगा	तु यत्	और जब
यत्	जब	दग्धपुत्रा	पुत्रोंके दाहके
आततायिनः	आततायी		पश्चात् तुम
ब्रह्मबन्धोः	अधम ब्राह्मणका	आक्रम्य	उसपर पैर रखकर
शिर	मस्तक	स्नास्यसि	स्नान करोगी ॥१६॥

सूत उवाच-*

इति प्रियां वल्गुविचित्रजल्पैः
स सान्त्वयित्वाच्युतमित्रसूतः ।
अन्वाद्रवद्दंशित उग्रधन्वा
कपिध्वजो गुरुपुत्रं रथेन ॥१७॥

इति प्रियां वल्गु विचित्र जल्पैः स सान्त्वयित्वा अच्युत मित्र सूतः
अनु अद्रवत् दंशितः उग्रधन्वा कपिध्वजः गुरुपुत्रं रथेन ॥ २७ ॥

इति	इस प्रकार	अच्युतमित्र	अपने मित्र
वल्गु	मीठी		श्रीकृष्णको
विचित्र	विचित्र	सूतः	सारथी बनाकर
जल्पैः	बातोंसे	दंशितः	कवच धारण करके
प्रियां	पत्नी द्रौपदीको	रथेन	रथपर बैठकर
सान्त्वयित्वा	सान्त्वना देकर	गुरुपुत्रं	गुरु द्रोणाचार्यके
स	उन		पुत्रके
उग्रधन्वा	भयानक धनुषवाले	अनु	पीछे
कपिध्वजः	कपिध्वज अर्जुनने	अद्रवत्	दौड़े ॥१७॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

तमापतन्तं स विलक्ष्य दूरात्
कुमारहोद्विग्नमना रथेन ।
पराद्रवत्प्राणपरीप्सुरुर्व्यां
यावद्गमं रुद्रभयाद्यथार्कः ॥१८॥

तं आपतन्तं स विलक्ष्य दूरात् कुमारहा उद्विग्न मनाः रथेन पराद्रवत् प्राण परीप्सुः उर्व्यां यावत् गमं रुद्रभयात् यथा अर्कः ॥ १८ ॥

कुमारहा	बच्चोंकी हत्यासे	रथेन	रथपर बैठकर
उद्विग्नमनाः	उद्विग्न चित्तवाले	उर्व्यां	पृथ्वीपर
स	उस (अश्वत्थामा)ने	यावत्	जहाँतक
दूरात्	दूरसे	गमं	जा सकता था
तं	उन (अर्जुन) को	पराद्रवत्	भागता गया
आपतन्तं	झपटे आते	यथा	जैसे
विलक्ष्य	देखकर	रुद्रभयात्	शंकरजीके भयसे
प्राण	प्राण	अर्कः	सूर्य (भागे थे)॥१८॥
परीप्सुः	बचानेकी इच्छासे		

यदाशरणमात्मानमैक्षत श्रान्तवाजिनम् ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरो मेने आत्मत्राणं द्विजात्मजः ॥१९॥

यदा अशरणं आत्मानं ऐक्षत श्रान्त वाजिनं अस्त्रं ब्रह्मशिरः मेने आत्मत्राणं द्विजात्मजः ॥ १९ ॥

यदा	जब	अशरणं	सहायक रहित
द्विजात्मजः	ब्राह्मणपुत्र (अश्वत्थामा) ने	ऐक्षत	देखा (तब)
		ब्रह्मशिरः	ब्रह्मशिर नामक
श्रान्त	थके हुए	अस्त्रं	अस्त्रको
वाजिनं	घोड़ोंको (और)	आत्मत्राणं	अपना रक्षक
आत्मानं	अपनेको	मेने	माना ॥१९॥

अथोपस्पृश्य सलिलं संदधे तत्समाहितः ।
अजानन्नुपसंहारं प्राणकृच्छ्र उपस्थिते ॥२०॥

अथ उपस्पृश्य सलिलं सन्दधे तत् समाहितः अजानन् उपसंहारं प्राणकृच्छ्र उपस्थिते ॥ २० ॥

उपसंहारं	शान्त करना	सलिलं	जलसे
अजानन्	न जानते हुए भी	उपस्पृश्य	आचमन करके
प्राणकृच्छ्र	प्राणोंपर संकट	समाहितः	एकाग्र होकर
उपस्थिते	उपस्थित होजानेसे	तत्	उस अस्त्रका
अथ	तब	सन्दधे	सन्धान किया ॥२०॥

ततः प्रादुष्कृतं तेज, प्रचण्डं सर्वतोदिशम् ।
प्राणापदमभिप्रेक्ष्य विष्णुं जिष्णुरुवाच ह ॥२१॥

ततः प्रादुष्कृतं तेजः प्रचण्डं सर्वतः दिशं प्राणः आपदं अभिप्रेक्ष्य विष्णुं जिष्णुः उवाच ह ॥ २१ ॥

ततः	तब	ह	निश्चित
सर्वतः	सभी	आपदं	आपत्ति
दिशं	दिशाओंमें	अभिप्रेक्ष्य	आयी देखकर
प्रचण्डं	प्रचण्ड	जिष्णुः	अर्जुन
तेजः	तेज	विष्णुं	श्रीकृष्णसे
प्रादुष्कृतं	प्रकट हुआ,	उवाच	बोला ॥२१॥
प्राणः	प्राणोंपर		

अर्जुन उवाच-

कृष्ण कृष्ण महाभाग भक्तानामभयंकर ।
त्वमेको दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः ॥२२॥

कृष्ण कृष्ण महाभाग भक्तानां अभयंकर त्वं एकः दह्यमानानां अपवर्गः असि संसृतेः ॥ २२ ॥

महाभाग	परम सौभाग्य रूप	अभयंकर	अभय देनेवाले
कृष्ण कृष्ण	हे श्रीकृष्ण !	संसृतेः	संसार चक्रमें
भक्तानां	भक्तोंको	दह्यमानानां	जलते हुओंके लिए

र्थ	तुम	अपवर्गः	मोक्ष देनेवाले
एकः	एकमात्र	असि	हो ॥२२॥

त्वमाद्यः पुरुषः साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परः ।
मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि ॥२३॥

त्वं आद्यः पुरुषः साक्षात् ईश्वरः प्रकृतेः परः मायां व्युदस्य चित् शक्त्या कैवल्ये स्थितः आत्मनि ॥ २३ ॥

त्वं	तुम	चित्	ज्ञानमयी
आद्यः	आदि	शक्त्या	शक्तिसे
पुरुषः	पुरुष	मायां	मायाको
प्रकृतेः	प्रकृतिसे	व्युदस्य	हटाकर
परः	परे	कैवल्ये	अद्वितीय
साक्षात्	साक्षात्	आत्मनि	आत्मस्वरूपमें
ईश्वरः	ईश्वर हो,	स्थितः	स्थित हो ॥२३॥

स एव जीवलोकस्य मायामोहितचेतसः ।
विधत्से स्वेन वीर्येण श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥२४॥

स एव जीवलोकस्य माया मोहित चेतसः विधत्से स्वेन वीर्येण श्रेयः धर्मादि लक्षणम् ॥ २४ ॥

स	वही तुम	वीर्येण	पराक्रमसे
एव	ही	धर्मादि	धर्म, मोक्ष आदि
माया	मायासे	लक्षणं	लक्षणवाले
मोहित	मोहित	श्रेयः	कल्याणकारी
चेतसः	चित्तवाले		कर्मोंका
जीवलोकस्य	जीवोंके लिए	विधत्से	विधान करते
स्वेन	अपने ही		हो ॥२४॥

तथायं चावतारस्ते भुवो भारजिहीर्षया ।
स्वानां चानन्यभावानामनुध्यानाय चासकृत् ॥२५॥

तथा अयं च अवतारः ते भुवि भार जिहीर्षया स्वानां च अनन्य भावानां अनुध्यानाय च असकृत् ॥ २५ ॥

तथा	इसी प्रकार	स्वानां	अपने
ते	आपका	अनन्य	अनन्य
अयं	यह	भावानां	भाववालोंके लिए
अवतारः	अवतार	असकृत्	निरन्तर
च	भी	च	तथा
भुवि	पृथ्वीका	अनु	बार-बार
भार	भार	ध्यानाय	ध्यान करनेके लिए है ॥२५॥
जिहीर्षया	दूर करनेके लिए		
च	और		

किमिदं स्वित्कुतो वेति देवदेव न वेद्म्यहम् ।
सर्वतोमुखमायाति तेजः परमदारुणम् ॥२६॥

किं इदं स्वित् कुतः वा एति देवदेव न वेद्मि अहं सर्वतोमुखं आयाति तेजः परम दारुणम् ॥ २६ ॥

देवदेव	देवदेव !	किं	क्या
परम	अत्यन्त	स्वित्	है,
दारुणं	भयानक	कुतः	कहाँसे
तेजः	तेज	वा एति	तो आ रहा है—
सर्वतोमुखं	सब ओरसे	अहं	मैं
आयाति	आ रहा है	न	नहीं
इदं	यह	वेद्मि	जानता ॥२६॥

श्रीभगवानुवाच–

वेत्थेदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रं प्रदर्शितम् ।
नैवासो वेद संहारं प्राणबाध उपस्थिते ॥२७॥

वेत्थ इदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्मं अस्त्रं प्रदर्शितं नैव असौ वेद संहारं प्राणबाधः उपस्थिते ॥ २७ ॥

प्राणबाधः	प्राणोंका संकट	द्रोणपुत्रेण	द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामा द्वारा
उपस्थिते	आ जानेपर		

प्रदर्शितं	प्रदर्शन (प्रयोग) हुआ	असौ	यह (अश्वत्थामा)
		संहारं	इसे लौटाना
इदं	यह	नैव	नहीं ही
ब्राह्मं अस्त्रं	ब्रह्मास्त्र	वेद	जानता ॥२७॥
वेत्थ	जानो		

न ह्यस्यान्यतमं किञ्चिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम् ।
जह्यस्त्रतेज उन्नद्धमस्त्रज्ञो ह्यस्त्रतेजसा ॥२८॥

न हि अस्य अन्यतमं किंचित् अस्त्रं प्रति अवकर्शनं जहि अस्त्रतेजः उन्नद्धं अस्त्रज्ञः हि अस्त्रतेजसा ॥ २८ ॥

हि	क्योंकि	हि	क्योंकि
अस्य	इस (ब्रह्मास्त्र) का	अस्त्रज्ञः	तुम अस्त्रके ज्ञाता हो,
प्रति	उलटे		
अवकर्शनं	खींच लेनेवाला	उन्नद्धं	बढ़े हुए
अन्यतमं	दूसरा	अस्त्रतेजः	अस्त्रके तेजको
किंचित्	कोई भी	अस्त्रतेजसा	ब्रह्मास्त्रके तेजसे
अस्त्रं	अस्त्र	जहि	मार दो ॥२८॥
न	नहीं है,		

सूत उवाच–

श्रुत्वा भगवता प्रोक्तं फाल्गुनः परवीरहा ।
स्पृष्ट्वापस्तं परिक्रम्य ब्राह्मं ब्राह्माय संदधे ॥२९॥

श्रुत्वा भगवता प्रोक्तं फाल्गुनः परवीरहा स्पृष्ट्वा अपः तं परिक्रम्य ब्राह्मं ब्राह्माय संदधे ॥ २९ ॥

भगवता	भगवानकी	फाल्गुनः	अर्जुनने
प्रोक्तं	कही बातको	अपः	जलसे
श्रुत्वा	सुनकर	स्पृष्ट्वा	आचमन करके
परवीरहा	शत्रु पक्षके वीरोंके नाशक	तं	उन (श्रीकृष्ण) की
		परिक्रम्य	परिक्रमा करके

ब्राह्माय	ब्रह्मास्त्रपर	संदधे	संधान किया ॥२९॥
ब्राह्मं	ब्रह्मास्त्रका		

संहत्यान्योन्यमुभयोस्तेजसी शरसंवृते ।
आवृत्य रोदसी खं च ववृधातेऽर्कवह्निवत् ॥३०॥

संहत्य अन्योन्यं उभयोः तेजसी शर संवृते आवृत्य रोदसीः खं च ववृधाते अर्कः वह्निवत् ॥ ३० ॥

शर	वाणोंसे	च	और
संवृते	भली प्रकार घिरे	खं	आकाशको
उभयोः	दोनों	आवृत्य	घेरकर
तेजसी	तेजोमय (ब्रह्मास्त्र)	अर्कः	सूर्य एवं
अन्योन्यं	एक दूसरेसे	वह्नि	अग्नि
संहत्य	टकराकर	वत्	की भाँति
रोदसीः	दिशाओंको	ववृधाते	बढ़ने लगे ॥३०॥

दृष्ट्वास्त्रतेजस्तु तयोस्त्रीँल्लोकान् प्रदहन्महत् ।
दह्यमानाः प्रजाः सर्वाः सांवर्तकममंसत ॥३१॥

दृष्टवा अस्त्र तेजः तु तयोः त्रीन् लोकान् प्रदहन् महत् दह्यमानाः प्रजाः सर्वाः सांवर्तकं अमंसत ॥ ३१ ॥

तयोः	उन दोनों	दृष्टवा	देखकर
महत्	महान	दह्यमानाः	दग्ध हो रहे
अस्त्र	अस्त्रोंके	सर्वाः	सभी
तेजः	तेजको	प्रजाः	प्रजाने (उसको)
त्रीन्	तीनों	तु	निश्चित
लोकान्	लोकोंको	सांवर्तकं	प्रलयाग्नि
प्रदहन्	भस्म करते	अमंसत	मान लिया ॥३१॥

प्रजोपप्लवमालक्ष्य लोकव्यतिकरं च तम् ।
मतं च वासुदेवस्य संजहारार्जुनो द्वयम् ॥३२॥

प्रजा उपप्लवं आलक्ष्य लोक व्यतिकरं च तं मतं च वासुदेवस्य संजहार अर्जुनः द्वयम् ॥ ३२ ॥

प्रजा	प्रजाका	च	तथा
उपप्लवं	विनाश	वासुदेवस्य	श्रीकृष्णकी
च	और	मतं	सम्मतिसे
लोक	लोकमें	अर्जुनः	अर्जुनने
प्रतिकरं	अव्यवस्था करनेवाले	द्वय	दोनों (ब्रह्मास्त्रों)को
तं	उन (तेजों) को	संजहार	खींच लिया ॥३२॥
आलक्ष्य	देखकर		

ततः आसाद्य तरसा दारुणं गौतमीसुतम् ।
बबन्धामर्षताम्राक्षः पशुं रशनया यथा ॥३३॥

ततः आसाद्य तरसा दारुणं गौतमीसुतं बबन्ध अमर्ष ताम्राक्षः पशुं रशनया यथा ॥ ३३ ॥

ततः	इसके पश्चात् (अर्जुनने)	ताम्राक्षः	लाल-लाल नेत्र करके
दारुणं	क्रूर	रशनया	रस्सीसे
गौतमीसुतं	अश्वत्थामाको	पशुं	पशुकी
तरसा	वेगपूर्वक	यथा	भाँति
आसाद्य	पकड़कर	बबन्ध	बांध दिया ॥३३॥
अमर्ष	क्रोधसे		

शिबिराय निनीषन्तं दाम्ना बद्ध्वारिपुं बलात् ।
प्राहार्जुनं प्रकुपितो भगवानम्बुजेक्षणः ॥३४॥

शिबिराय निनीषन्तं दाम्नां बद्ध्वा रिपुं बलात् प्राह अर्जुनं प्रकुपितः भगवान् अम्बुजेक्षणः ॥ ३४ ॥

दाम्ना	रस्सीसे	निनीषन्तं	ले जाते हुए
बद्ध्वा	बाँधकर	अर्जुनं	अर्जुनसे
रिपुं	शत्रु (अश्वत्थामा) को	प्रकुपितः	अत्यन्त क्रुद्ध होकर
		अम्बुजेक्षणः	कमललोचन
बलात्	बलपूर्वक	भगवान्	श्रीकृष्ण
शिबिराय	अपने शिविर	प्राह	बोले ॥३४॥

*श्रीभगवानुवाच**

मैनं पार्थार्हसि त्रातुं ब्रह्मबन्धुमिमं जहि ।
योऽसावनागसः सुप्तानवधीन्निशि बालकान् ॥३५॥

मा एनं पार्थ अर्हसि त्रातुं ब्रह्मबन्धुं इमं जहि यः असौ अनागसः सुप्तान् अवधीत् निशि बालकान् ॥ ३५ ॥

पार्थ	अर्जुन !	यः	जो
एनं	इसको	असौ	इसने
त्रातुं	बचाना	अनागसः	निरपराध
अर्हसि	उचित	सुप्तान्	सोते हुए
मा	नहीं है,	बालकान्	बालकोंका
इमं	इस	निशि	रात्रिमें
ब्रह्मबन्धुं	अधम ब्राह्मणको	अवधीत्	वध किया है ॥३५॥
जहि	मारदो		

मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडम् ।
प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित् ॥३६॥

मत्तं प्रमत्तं उन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडं प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित् ॥ ३६ ॥

मत्तं	असावधान	प्रपन्नं	शरणागत,
प्रमत्तं	(नशादिसे) मतवाले	विरथं	रथहीन,
उन्मत्तं	पागल,	भीतं	भयभीत
सुप्तं	सोते	रिपुं	शत्रुको
बालं	बालक,	धर्मवित्	धर्मज्ञ पुरुष
स्त्रियं	स्त्री,	न	नहीं
जडं	मूर्ख,	हन्ति	मारते ॥३६॥

स्वप्राणान् यः परप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणः खलः ।
तद्वधस्तस्य हि श्रेयो यद्दोषाद्याात्यधः पुमान् ॥३७॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

स्व प्राणान् यः परः प्राणैः प्रपुष्णाति अघृणः खलः तत् वधः तस्य हि श्रेयः यत् दोषात् याति अधः पुमान् ॥ ३७ ॥

यः	जो	वधः	मार देना
अघृणः	क्रूर	तस्य	उसीके लिए
खलः	दुष्ट	श्रेयः	कल्याणकारी है,
स्व	अपने	हि	क्योंकि
प्राणान्	प्राणोंको	यत्	ऐसे
परः	दूसरेके	दोषात्	दोषोंसे
प्राणैः	प्राण लेकर	पुमान्	पुरुष
प्रपुष्णाति	पोषित करता है,	अधः	नीचे (नरकोंको)
तत्	उसको	याति	जाता है ॥३७॥

प्रतिश्रुतं च भवता पाञ्चाल्यै शृण्वतो मम ।
आहरिष्ये शिरस्तस्य यस्ते मानिनि पुत्रहा ॥३८॥

प्रतिश्रुतं च भवता पाञ्चाल्यैः शृण्वतः मम आहरिष्ये शिरः तस्य यः ते मानिनि पुत्रहा ॥ ३८ ॥

च	और	यः	जो
मम	मेरे	ते	तुम्हारे
शृण्वतः	सुनते हुए	पुत्रहा	पुत्रोंको मारनेवाला है,
भवता	तुमने		
पाञ्चाल्यैः	द्रौपदीसे	तस्य	उसका
प्रतिश्रुतं	प्रतिज्ञाकी है—	शिरः	मस्तक
मानिनि	मानिनी !	आहरिष्ये	काट लाऊँगा ॥३८॥

तदसौ वध्यतां पाप आतताय्यात्मबन्धुहा ।
भर्तुश्च विप्रियं वीर कृतवान् कुलपांसनः ॥३९॥

तत् असौ बध्यतां पापः आततायि आत्म बन्धुहा भर्तुः च विप्रियं वीर कृतवान् कुलपांसनः ॥ ३९ ॥

वीर	अर्जुन !	असौ	इस
तत्	इसलिए	पापः	पापी,

आततायि	आततायी,	कुलपांसनः	(इस) कुलाङ्गारने तो
आत्म	अपने		
बन्धुहा	सम्बन्धियोंको मारने वालेको	भर्तुः	अपने स्वामी (दुर्योधन) का भी
वध्यतां	मारदो,	विप्रियं	अप्रिय
च	और	कृतवान्	किया है ॥३९॥

सूत उवाच–*

एवं परीक्षता धर्मं पार्थः कृष्णेन चोदितः ।
नैच्छद्धन्तुं गुरुसुतं यद्यप्यात्महनं महान् ॥४०॥

एवं परीक्षता धर्मं पार्थः कृष्णेन चोदितः न इच्छत हन्तुं गुरुसुतं यद्यपि आत्महनं महान् ॥ ४० ॥

एवं	इस प्रकार	आत्महनं	अपनेको ही मारने वाला अपराधी था (फिर भी)
कृष्णेन	श्रीकृष्णके द्वारा		
धर्मं	धर्मकी		
परीक्षता	परीक्षा लेते हुए	पार्थः	अर्जुनने
चोदितः	प्रेरित किये जानेपर (भी),	गुरुसुतं	गुरुपुत्रको
		हन्तुं	मारनेकी
यद्यपि	यद्यपि (वह)	इच्छत्	इच्छा
महान्	बड़ा भारी	न	नहीं की ॥४०॥

अथोपेत्य स्वशिबिरं गोविन्दप्रियसारथिः ।
न्यवेदयत्तं प्रियायै शोचन्त्या आत्मजान् हतान् ॥४१॥

अथ उपेत्य स्व शिविरं गोविन्द प्रिय सारथिः न्यवेदयत् तं प्रियायैः शोचन्त्या आत्मजान् हतान् ॥ ४१ ॥

अथ	इसके अनन्तर	सारथिः	सारथी (हैं वह अर्जुन)
गोविन्द	श्रीकृष्ण (जिसके)		
प्रिय	प्रिय (और)	स्व	अपने

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

शिविरं	शिविरमें	शोचन्त्या	शोक करती हुई
उपेत्य	पहुँचकर	प्रियायैः	प्रिया द्रौपदीको
सः	उसे (अश्वत्थामा)को	न्यवेदयत्	निवेदित किया
हतान्	मारे गये		(सामने खड़ा कर
आत्मजान्	पुत्रोंका		दिया) ॥४१॥

तथाऽऽहृतं पशुवत् पाशबद्ध-
मवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन ।
निरीक्ष्य कृष्णापकृतं गुरोः सुतं
वामस्वभावा कृपया ननाम च ॥४२॥

तथा आहृतं पशुवत् पाश बद्धं अवाङ् मुखं कर्म जुगुप्सितेन निरीक्ष्य कृष्णाः अपकृतं गुरोः सुतं वाम स्वभावा कृपया ननाम च ॥ ४२ ॥

तथा	इस प्रकार	गुरोः	गुरुके
पशुवत्	पशुकी भाँति	सुतं	पुत्रको
पाश	रस्सीसे	निरीक्ष्य	देखकर
बद्धं	बाँधकर	कृष्णाः	द्रौपदीने
आहृतं	लाये गये	वाम	दयालु
जुगुप्सितेन	निन्दित	स्वभावा	स्वभाववाली होनेसे
कर्म	कर्म (करनेसे)	च	और
अवाङ्	नीचे	कृपया	कृपावश
मुखं	मुख झुकाये	ननाम	(अश्वत्थामाको)
अपकृतं	अपमानित		प्रणाम किया ॥४२॥

उवाच चासहन्त्यस्य बन्धनानयनं सती ।

उवाच च असहन्ती अस्य बन्धन आनयनं सती ।

च	और	आनयनं	ले आया जाना
अस्य	इस (अश्वत्थामाका)	असहन्ती	सहन न करके
बन्धन	बाँधकर		
सती	द्रौपदी	उवाच	बोली

द्रौपद्युवाच-*

मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ॥४३॥

मुच्यतां मुच्यतां एष ब्राह्मणः नितरां गुरुः ॥ ४३ ॥

एष	इन्हें	नितरां	अत्यन्त
मुच्यतां	छोड़ दो	गुरुः	माननीय हैं
मुच्यतां	छोड़ दो (ये)	ब्राह्मणः	ब्राह्मण हैं ॥४३॥

सरहस्यो धनुर्वेदः सविसर्गोपसंयमः ।
अस्त्रग्रामश्च भवता शिक्षितो यदनुग्रहात् ॥४४॥

स रहस्यः धनुर्वेदः सविसर्गः उपसंयमः अस्त्रग्रामाः च भवता शिक्षितः यत् अनुग्रहात् ॥ ४४ ॥

यत्	जिनके	अस्त्रग्रामाः	अस्त्रोंके समूह
अनुग्रहात्	अनुग्रहसे	सविसर्गः	छोड़नेकी विधि,
भवता	आप लोगोंने	उपसंयमः	लौटा लेने (शान्त कर देने) की विधि
सरहस्यः	रहस्योंके साथ	शिक्षितः	सीखी है ॥४४॥
धनुर्वेदः	धनुर्वेद		
च	और		

स एष भगवान् द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते ।
तस्यात्मनोऽर्धं पत्न्यास्ते नान्वगाद्वीरसूः कृपी ॥४५॥

स एष भगवान् द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते तस्य आत्मनः अर्धं पत्न्याः ते न अन्वगात् वीरसूः कृपी ॥ ४५ ॥

स	वही	वर्तते	उपस्थित हैं,
एष	ये	तस्य	उन (द्रोणाचार्य) की
भगवान्	भगवान्	आत्मनः अर्धं	अर्धाङ्गिनी
द्रोण	द्रोणाचार्य	पत्न्याः	पत्नी
प्रजारूपेण	पुत्र रूपमें	कृपी	कृपी

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

रसूः	वीर प्रसविनी (होनेसे—पुत्रस्नेह वश) उन (आचार्यके)	न अन्वगात्	पीछे नहीं गयीं (सती नहीं हुईं) ॥४५॥

तद् धर्मज्ञ महाभाग भवद्भिर्गौरवं कुलम् ।
वृजिनं नार्हति प्राप्तुं पूज्यं वन्द्यमभीक्ष्णशः ॥४६॥

तत् धर्मज्ञ महाभागाः भवद्भिः गौरवं कुलं वृजिनं न अर्हति प्राप्तुं पूज्यं वन्द्यं अभीक्ष्णशः ॥ ४६ ॥

तद्	अतः	वन्द्यं	वन्दनीय
महाभागाः	महाभागो !	गौरवं	गुरुका
धर्मज्ञ	(आप) धर्मको जाननेवाले हैं	कुलं	कुल
		वृजिनं	व्यथा
भवद्भिः	आप लोगों द्वारा	प्राप्तुं	पानेके
अभीक्ष्णशः	नित्य	अर्हति	योग्य
पूज्यं	पूजनीय	न	नहीं है ॥४६॥

मा रोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता ।
यथाहं मृतवत्साऽऽर्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहुः ॥४७॥

मा रोदीत् अस्य जननी गौतमीः पतिदेवताः यथा अहं मृत वत्साः आर्ता रोदिमि अश्रुमुखीः मुहुः ॥ ४७ ॥

यथा	जैसे	पतिदेवताः	पतिव्रता
मृतवत्साः	पुत्रोंके मर जानेपर	अस्य	इनकी
अहं	मैं	जननी	माता
मुहुः	बार-बार	गौतमीः	कृपी (उस प्रकार)
अश्रुमुखीः	मुखपर आँसू बहाती	मा	न
आर्ता	आर्त होकर	रोदीत्	रोवे ॥४७॥
रोदिमि	रो रही हूँ,		

यैः कोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैरजितात्मभिः ।
तत् कुलं प्रदहत्याशु सानुबन्धं शुचार्पितम् ॥४८॥

यैः कोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैः अजितात्मभिः तत् कुलं प्रदहति आशु स अनुबन्धं शुचाः अर्पितम् ॥ ४८ ॥

यैः	जिन	आशु	शीघ्र ही
अजिताभिः	असंयत चित्तवाले	शुचाः	शोकमें
राजन्यैः	राजाओं द्वारा	अर्पितं	डालकर
ब्रह्मकुलं	ब्राह्मणोंका कुल	अनुबन्धं	संबन्धियोंके
कोपितं	क्रुद्ध किया गया है, (वह)	स	साथ
		प्रदहति	भस्म कर देता है ॥४८॥
तत्	उनके		
कुलं	कुलको		

सूत उवाच–

धर्म्यं न्याय्यं सकरुणं निर्व्यलीकं समं महत् ।
राजा धर्मसुतो राज्ञाः प्रत्यनन्दद्वचो द्विजाः ॥४९॥

धर्म्यं न्याय्यं सकरुणं निर्व्यलीकं समं महत् राजाः धर्मसुतः राज्ञाः प्रत्यनन्दत् वचः द्विजाः ॥ ४९ ॥

द्विजाः	शौनकादि विप्रो !	निर्व्यलीकं	अनिन्दित,
राज्ञाः	महारानी द्रौपदीकी	महत्	महान्,
वचः	बात	समं	समतायुक्त थी ।
धर्म्मं	धर्म सम्मत,	राजाः	राजा
न्याय्यं	न्याययुक्त,	धर्मसुतः	युधिष्ठिरने (उसका)
सकरुणं	कृपापूर्ण	प्रत्यनन्दत्	समर्थन किया ॥४९॥

नकुलः सहदेवश्च युयुधानो धनंजयः ।
भगवान् देवकीपुत्रो ये चान्ये याश्च योषितः ॥५०॥

नकुलः सहदेवः च युयुधानः धनंजयः भगवान् देवकीपुत्रः ये च अन्ये याः च योषितः ॥ ५० ॥

नकुलः	नकुल	च	और
सहदेवः	सहदेव	युयुधानः	सात्यकि

धनंजय	अर्जुन	याः	जो
भगवान्	भगवान्	योषितः	स्त्रियाँ थीं
देवकीपुत्रः	देवकीनन्दन	च	उन्होंने भी
च	तथा		(अभिनन्दन
ये	जो		किया) ॥५०॥
अन्ये	दूसरे थे		

तत्राहामर्षितो भीमस्तस्य श्रेयान् वधः स्मृतः ।
न भर्तुर्नात्मनश्चार्थे योऽहन् सुप्तान् शिशून् वृथा ॥५१॥

तत्र आह अमर्षितः भीमः तस्य श्रेयान् वधः स्मृतः न भर्तुः न आत्मनः च अर्थे यः अहन् सुप्तान् शिशून् वृथा ॥ ५१ ॥

तत्र	वहाँ	अर्थे	लिए (बल्कि)
अमर्षितः	अमर्ष (क्रोध) में	वृथा	व्यर्थ ही
	भरे	सुप्तान्	सोते हुए
भीमः	भीमसेन	शिशून्	शिशुओंको
आह	बोले—	अहन्	मार दिया
यः	जिसने	तस्य	उसका
न	नहीं	वधः	वध
भर्तुः	स्वामीके लिए	श्रेयान्	कल्याणकारी
च	और	स्मृतः	कहा गया (धर्म
न	नहीं		सम्मत) है ॥५१॥
आत्मनः	अपने		

निशम्य भीमगदितं द्रौपद्याश्च चतुर्भुजः ।
आलोक्य वदनं सख्युरिदमाह हसन्निव ॥५२॥

निशम्य भीम गदितं द्रौपद्याः च चतुर्भुजः आलोक्य वदनं सख्युः इदं आह हसन् इव ॥ ५२ ॥

चतुर्भुजः	भगवान श्रीकृष्णने	गदितं	कही बातको
भीम	भीमसेनकी	निशम्य	सुनकर
च	और	सख्युः	सखा अर्जुनके
द्रौपद्याः	द्रौपदीकी	वदनं	मुखको

आलोक्य	देखकर	इदं	यह
हसन्	हँसते हुए	आह	कहा ॥५२॥
इव	जैसे		

*श्रीभगवानुवाच**–

ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हणः ।
मयैवोभयमाम्नातं परिपाह्यनुशासनम् ॥५३॥

ब्रह्मबन्धुः न हन्तव्यः आततायी वध अर्हणः मया एव उभयं आम्नातं परिपाहि अनुशासनम् ॥ ५३ ॥

ब्रह्मबन्धुः	ब्राह्मणाधम भी	एव	ही
हन्तव्यः	मारने योग्य	उभयं	दोनों (बातें)
न	नहीं है,	आम्नातं	शास्त्रमें कही गयी हैं
आततायी	आततायी	अनुशासनं	(अतः) शास्त्राज्ञाका
वध	मार देने	परिपाहि	ठीक पालन
अर्हणः	योग्य है,		करो ॥५३॥
मया	मेरे द्वारा		

कुरु प्रतिश्रुतं सत्यं यत्तत्सान्त्वयता प्रियाम् ।
प्रियं च भीमसेनस्य पाञ्चाल्या मह्यमेव च ॥५४॥

कुरु प्रतिश्रुतं सत्यं यत् तत् सान्त्वयता प्रियां प्रियं च भीमसेनस्य पाञ्चाल्याः मह्यं एव च ॥ ५४ ॥

यत्	जो	च	और
प्रियां	पत्नी (द्रौपदी) को	भीमसेनस्य	भीमसेनका
सान्त्वयता	सान्त्वना देते समय	पाञ्चाल्याः	द्रौपदीका
प्रतिश्रुतं	(तुमने) प्रतिज्ञाकी है	च	और
तत्	वह	मह्यं	मेरा
सत्यं	सच	एव	भी
कुरु	करो	प्रियं	प्रिय करो ॥५४॥

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ श्रीकृष्ण उवाच है।

सूत उवाच-

अर्जुनः सहसाऽऽज्ञाय हरेर्हार्दमथासिना ।
मणिं जहार मूर्धन्यं द्विजस्य सहमूर्धजम् ॥५५॥

अर्जुनः सहसा आज्ञाय हरेः हार्दं अथ असिना मणिं जहार मूर्धन्यं द्विजस्य सह मूर्धजम् ॥ ५५ ॥

अर्जुनः	अर्जुनने	द्विजस्य	ब्राह्मण अश्वत्थामाके
सहसा	अचानक	मूर्धन्यं	केशोंमें लगी
हरेः	श्रीकृष्णकी	मणिं	मणिको
हार्दं	आन्तरिक इच्छाको	मूर्धजम्	जटाके
आज्ञाय	जानकर	सह	साथ
अथ	उस समय	जहार	छीन (काट) लिया ॥५५॥
असिना	तलवारसे		

विमुच्य रशनाबद्धं बालहत्याहतप्रभम् ।
तेजसा मणिना हीनं शिबिरान्निरयापयत् ॥५६॥

विमुच्य रशना बद्धं बालहत्याः हतप्रभं तेजसा मणिना हीनं शिबिरात् निरयापयत् ॥ ५६ ॥

रशना	रस्सीसे	मणिना	मणिसे
बद्धं	बँधेको	हीनं	रहित (अश्वत्थामा) को
विमुच्य	खोलकर	शिबिरात्	शिविरसे
बालहत्याः	बालकोंकी हत्यासे	निरयापयत्	निकाल दिया ॥५६॥
हतप्रभं	श्रीहीन,		
तेजसा	तेजसे (और)		

वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा ।
एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः ॥५७॥

वपनं द्रविण आदानं स्थानात् निर्यापणं तथा एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधः न अन्यः अस्ति दैहिकः ॥ ५७ ॥

वपनं	बाल मूंड़ देना,	ब्रह्मबन्धूनां	ब्राह्मणाधमोंका
द्रविण	धन	वधः	वध है।
आदानं	छीन लेना	हि	क्योंकि
तथा	और	अन्यः	दूसरा
स्थानात्	स्थानसे	दैहिकः	शरीर वधका
निर्यापणं	निकाल देना—	न	(विधान) नहीं
एष	यही	अस्ति	है ॥५७॥

पुत्रशोकातुराः सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया।
स्वानां मृतानां यत्कृत्यं चक्रुर्निर्हरणादिकम् ॥५८॥

पुत्रशोक आतुराः सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया स्वानां मृतानां यत् कृत्यं चक्रुः निर्हरण आदिकम् ॥ ५८ ॥

पुत्रशोक	पुत्रोंकेशोकसे	स्वानां	अपने सम्बन्धियोंके
आतुराः	व्याकुल		लिए
कृष्णया	द्रौपदी	यत्	जो
सह	सहित	निर्हरण	दाह
सर्वे	सब	आदिकं	आदिक
पाण्डवाः	पाण्डव	कृत्यं	कर्म था (वह)
मृतानां	मरे हुए	चक्रुः	किया ॥५८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः

2-4

—∞—

अथाष्टमोऽध्यायः

सूत उवाच-

अथ ते सम्परेतानां स्वानामुदकमिच्छताम् ।
दातुं सकृष्णा गङ्गायां पुरस्कृत्य ययुः स्त्रियः ॥१॥

अथ ते सम्परेतानां स्वानां उदकं इच्छतां दातुं सकृष्णाः गङ्गायां पुरस्कृत्य ययुः स्त्रियः ॥ १ ॥

अथ	इसके बाद	इच्छतां	इच्छुक
ते	वे (पाण्डव)	स्वानां	स्वजनोंको
सकृष्णाः	द्रौपदीके साथ		(जलाञ्जली)
स्त्रियः	स्त्रियोंको	दातुं	देने
पुरस्कृत्य	आगे करके	गङ्गायां	गंगा किनारे
सम्परेतानां	मरे हुए	ययुः	गये ॥१॥
उदकं	पानीके		

ते निनीयोदकं सर्वे विलप्य च भृशं पुनः ।
आप्लुता हरिपादाब्जरजःपूतसरिज्जले ॥२॥

ते निनीय उदकं सर्वे विलप्य च भृशं पुनः आप्लुताः हरिपादाब्ज रजः पूत सरित् जले ॥ २ ॥

ते	उन	पुनः	फिर [illegible] रा
सर्वे	सबने	हरिपादाब्ज	श्रीहरिके
उदकं	जल		चरण-कमलोंकी
निनीय	दिया	रजः	धूलिसे
च	और	पूत	पवित्र
भृशं	बहुत अधिक	सरितजले	गङ्गाजलमें
विलप्य	विलाप किया	आप्लुताः	स्नान किया ॥२॥

तत्रासीनं कुरुपतिं धृतराष्ट्रं सहानुजम् ।
गान्धारीं पुत्रशोकार्तां पृथां कृष्णां च माधवः ॥३॥

तत्र आसीनं कुरुपतिं धृतराष्ट्रं सह अनुजं गान्धारीं पुत्र शोक आर्तां पृथां कृष्णां च माधवः ॥ ३ ॥

तत्र	वहाँ	शोक	शोकसे
आसीनं	बैठे हुए	आर्तां	व्याकुल
अनुजं	छोटे भाई विदुरके	गान्धारीं	गान्धारीको
सह	साथ	पृथां	कुन्तीको
कुरुपतिं	कुरुकुलके स्वामी	च	और
धृतराष्ट्रं	धृतराष्ट्रको	कृष्णां	द्रौपदीको
पुत्र	पुत्रोंके	माधवः	श्रीकृष्णने

सान्त्वयामास मुनिभिर्हतबन्धूञ् शुचार्पितान् ।
भूतेषु कालस्य गतिं दर्शयन्नप्रतिक्रियाम् ॥४॥

सान्त्वयामास मुनिभिः हत बन्धून् शुचा अर्पितान् भूतेषु कालस्य गतिं दर्शयन् अप्रतिक्रियाम् ॥ ४ ॥

हतबन्धून्	जिनके सम्बन्धी मारे गये थे	कालस्य	कालकी
		गतिं	गति
शुचा	(उन) शोक	दर्शयन्	दिखला (समझा) कर
अर्पितान्	ग्रस्त (लोगोंको)		
भूतेषु	प्राणियोंके प्रति	मुनिभिः	मुनियोंके साथ
अप्रतिक्रियां	प्रतिकार विवर्जित	सान्त्वयामास	सान्त्वना दी ॥४॥

साधयित्वाजातशत्रोः स्वं राज्यं कितवैर्हृतम् ।
घातयित्वासतो राज्ञः कचस्पर्शक्षतायुषः ॥५॥

साधयित्वा अजातशत्रोः स्वं राज्यं कितवैः हृतं घातयित्वा असतः राज्ञः कच स्पर्श क्षत आयुषः ॥ ५ ॥

कितवैः	धूर्तोंके द्वारा	स्वं	अपना
हृतं	हरण किया हुआ	राज्यं	राज्य

अजातशत्रोः	युधिष्ठिरको	क्षत	नष्ट प्राय हुई
साधयित्वा	वापस दिलवाकर	आयुषः	आयुवाले
राज्ञः	महारानी द्रौपदीके	असतः	दुर्जनों (कौरवों) को
कच	बालोंको	घातयित्वा	मरवाकर ॥५॥
स्पर्श	छूने (खींचने) से		

याजयित्वाश्वमेधैस्तं त्रिभिरुत्तमकल्पकैः ।
तद्यशः पावनं दिक्षु शतमन्योरिवातनोत् ॥६॥

याजयित्वा अश्वमेधैः तं त्रिभिः उत्तम कल्पकैः तत् यशः पावनं दिक्षुः शतमन्योः इव आतनोत् ॥ ६ ॥

तं	उन (राजा युधिष्ठिर) से	तत्	उनका
उत्तम कल्पकैः	उत्तम सामग्री एवं विधिसे	पावनं	पवित्र
त्रिभिः	तीन	यशः	सुयश
अश्वमेधैः	अश्वमेध	शतमन्योः	शतक्रतु इन्द्रके
याजयित्वा	यज्ञोंको कराकर	इव	समान
		दिक्षुः	सब दिशाओंमें
		आतनोत्	फैला दिया ॥६॥

आमन्त्र्य पाण्डुपुत्रांश्च शैनेयोद्धवसंयुतः ।
द्वैपायनादिभिर्विप्रैः पूजितैः प्रतिपूजितः ॥७॥

आमन्त्र्य पाण्डुपुत्रांः च शैनेय उद्धव संयुतः द्वैपायन आदिभिः विप्रैः पूजितः प्रतिपूजितः ॥ ७ ॥

पाण्डुपुत्रांः	पाण्डवोंसे	पूजितः	सत्कृत होकर
आमन्त्र्य	अनुमति (विदा) लेकर	प्रतिपूजितः	बदलेमें उनका सत्कार करके
च	और	शैनेय	सात्यकि
द्वैपायन	व्यासजी	उद्धव	उद्धवके
आदिभिः विप्रैः	आदि (धौम्पादि) ब्राह्मणोंसे	संयुतः	के साथ ॥७॥

गन्तुं कृतमतिर्ब्रह्मन् द्वारकां रथमास्थितः ।
उपलेभेऽभिधावन्तीमुत्तरां भयविह्वलाम् ॥८॥

गन्तुं कृतमतिः ब्रह्मन् द्वारकां रथं आस्थितः उपलेभे अभिधावन्तीं उत्तरां भयविह्वलाम् ॥ ८ ॥

ब्रह्मन्	शौनकजी ! (भगवान)	आस्थितः	बैठ गये (उस समय)
द्वारकां	द्वारिका	अभिधावन्तीं	अपनी ओर दौड़ती
गन्तुं	जानेका	भय विह्वलां	भयसे व्याकुल
कृतमतिः	निश्चय करके	उत्तरां	(अभिमन्यु पत्नी) उत्तराको
रथं	रथपर	उपलेभे	देखा ॥८॥

उत्तरोवाच–

पाहि पाहि महायोगिन्देवदेव जगत्पते ।
नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥९॥

पाहि पाहि महायोगिन् देवदेव जगत्पतेः न अन्यं त्वत् अभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥ ९ ॥

महायोगिन्	महायोगी	अभयं	अभय देनेवाला
देवदेव	देवदेव	न	नहीं
जगत्पतेः	जगन्नाथ	पश्ये	देखती हूँ
पाहि	रक्षा करो	यत्र	जहाँ (संसारमें)
पाहि	रक्षा करो।	परस्परं	एक दूसरेसे
त्वत्	आपसे	मृत्युः	मौत होती है ॥९॥
अन्यं	भिन्न (किसीको)		

अभिद्रवति मामीश शरस्तप्तायसो विभो ।
कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम् ॥१०॥

अभि द्रवति मां ईश शरः तप्त आयसः विभो कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भः निपात्यताम् ॥ १० ॥

ईश	सर्व समर्थ !	कामं	भले
विभो	सर्वव्यापक !	दहतु	जलादे, (परन्तु)
मां	मेरी ओर	नाथ	प्रभो !
अभिद्रवति	दौड़ा आता	मे	मेरे
आयसः	लोहेका	गर्भः	गर्भको
तप्त	जलता	मा	नहीं
शरः	वाण	निपात्यतां	नष्ट करे ॥१०॥
मां	मुझे		

सूत उवाच–

उपधार्य वचस्तस्या भगवान् भक्तवत्सलः ।
अपाण्डवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥११॥

उपधार्य वचः तस्याः भगवान् भक्तवत्सलः अपाण्डवं इदं कर्तुं द्रौणेः अस्त्रं अबुध्यत ॥ ११ ॥

तस्याः	उस उत्तराकी	अपाण्डवं	पाण्डुवंश रहित
वचः	बातको	कर्तुं	करनेके लिए
उपधार्य	सुनकर	द्रौणेः	अश्वत्थामाका
भक्तवत्सलः	भक्तवत्सल	अस्त्रं	अस्त्र है
भगवान्	भगवान्‌ने	अबुध्यत	(यह) जान
इदं	इस (पृथ्वी) को		लिया ॥११॥

तर्ह्येवाथ मुनिश्रेष्ठ पाण्डवाः पञ्च सायकान् ।
आत्मनोऽभिमुखान्दीप्तानालक्ष्यास्त्राण्युपाददुः ॥१२॥

तर्हि एव अथ मुनिश्रेष्ठ पाण्डवाः पञ्च सायकान् आत्मनः अभिमुखान् दीप्तान् आलक्ष्य अस्त्राणि उपाददुः ॥ १२ ॥

मुनिश्रेष्ठ	मुनियोंमें श्रेष्ठ शौनकजी !	पाण्डवाः	पाण्डवोंने
		पञ्च	पाँच
अथ	तदनन्तर	दीप्तान्	प्रज्वलित
तर्हि एव	उसी समय ही	सायकान्	वाणोंको

आत्मनः	अपने	अस्त्राणि	(अपने) अस्त्रोंको
अभिमुखान्	सम्मुख आते	उपाददुः	उठा लिया ॥१२॥
आलक्ष्य	देखकर		

व्यसनं वीक्ष्य तत्तेषामनन्यविषयात्मनाम् ।
सुदर्शनेन स्वास्त्रेण स्वानां रक्षां व्यधाद्विभुः ॥१३॥

व्यसनं वीक्ष्य तत् तेषां अनन्य विषया आत्मनां सुदर्शनेन स्व अस्त्रेण स्वानां रक्षां व्यधात् विभुः ॥ १३ ॥

अनन्य	अन्य विषयमें—	विभुः	सर्वसमर्थ (श्रीकृष्ण)
	जिनका	स्व	अपने
विषयात्मनां	चित्त नहीं जाता	अस्त्रेण	अस्त्र
तेषां	उन पाण्डवोंका	सुदर्शनेन	सुदर्शनचक्रसे
तत्	वह	स्वानां	अपने भक्तोंकी
व्यसनं	संकट	रक्षा	रक्षा
वीक्ष्य	देखकर	व्यधात्	कर दी ॥१३॥

अन्तःस्थ सर्वभूतानामात्मा योगेश्वरो हरिः ।
स्वमायया ऽऽवृणोद्गर्भं वैराट्याः कुरुतन्तवे ॥१४॥

अन्तःस्थः सर्वभूतानां आत्मा योगेश्वरः हरिः स्व मायया आवृणोत् गर्भं वैराट्याः कुरु तन्तवे ॥ १४ ॥

सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके	कुरु	कुरुकुलकी
अन्तःस्थः	भीतर स्थित	तन्तवे	परम्परा बनाये
आत्मा	आत्मा		रखनेके लिए
योगेश्वरः	योगेश्वर	वैराट्याः	विराट्-नन्दिनी
हरिः	श्रीकृष्णने		(उत्तरा) के
स्व	अपनी	गर्भं	गर्भको
मायया	मायाके द्वारा	आवृणोत्	ढक दिया ॥१४॥

यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघं चाप्रतिक्रियम् ।
वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यद् भृगूद्वह ॥१५॥

यद्यपि अस्त्रं ब्रह्मशिरः तु अमोघं च अप्रतिक्रियं वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यत् भृगूद्वह ॥ १५ ॥

भृगूद्वह	मृगु श्रेष्ठ शौनकजी !	अप्रतिक्रियं	उसका कोई प्रतिकार नहीं,
यद्यपि	यद्यपि	वैष्णवं	(लेकिन वह) वैष्णव
ब्रह्मशिरः	ब्रह्मशिर	तेज	तेज (सुदर्शन चक्र)के
अस्त्रं	अस्त्र	आसाद्य	सामने पड़कर
तु	तो	समशाम्यत्	पूर्णतः शान्त
अमोघं	अव्यर्थ है		हो गया ॥१५॥
च	और		

मा संस्था ह्येतदाश्चर्यं सर्वाश्चर्यमयेऽच्युते ।
य इदं मायया देव्या सृजत्यवति हन्त्यजः ॥१६॥

मां संस्था हि एतत् आश्चर्यं सर्व आश्चर्यमये अच्युते य इदं मायया देव्याः सृजति अवति हन्ति अजः ॥ १६ ॥

सर्व	सब	य	जो
आश्चर्यमये	आश्चर्यमय	अजः	अजन्मा होते भी
अच्युते	अच्युतके लिए	इदं	इस (विश्व) का
एतत्	यह	देव्याः	देवी
आश्चर्यं	आश्चर्यजनक	मायया	मायाके द्वारा
मां	मत	सृजति	सृजन,
संस्था	मानना (चाहिये),	अवति	पालन, और
हि	क्योंकि	हन्ति	संहार करते हैं ॥१६॥

ब्रह्मतेजोविनिर्मुक्तैरात्मजैः सह कृष्णया ।
प्रयाणाभिमुखं कृष्णमिदमाह पृथा सती ॥१७॥

ब्रह्मतेजः विनिर्मुक्तैः आत्मजैः सह कृष्णया प्रयाण अभिमुखं कृष्णं इदं आह पृथा सती ॥ १७ ॥

ब्रह्मतेजः	ब्रह्मास्त्रके तेजसे	आत्मजैः	अपने पुत्रों(पाण्डवों) एवं
विनिर्मुक्तैः	भली प्रकार मुक्त हुए	कृष्णया	द्रौपदीके

सह	साथ	अभिमुखं	उद्यत
सती	सती	कृष्णं	श्रीकृष्णसे
पृथा	कुन्तीने	इदं	यह
प्रयाण	जानेको	आह	कहा ॥१७॥

कुन्त्युवाच-

नमस्ये पुरुषं त्वाऽऽद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम् ।
अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम् ॥१८॥

नमस्ये पुरुषं तु आद्यं ईश्वरं प्रकृतेः परं अलक्ष्यं सर्वभूतानां अन्तः बहिः अवस्थितम् ॥ १८ ॥

आद्यं	आदि	बहिः	बाहर
पुरुषं	पुरुष	अवस्थितं	स्थित,
ईश्वरं	ईश्वर,	तु	किन्तु
प्रकृतेः	प्रकृतिसे	अलक्ष्यं	लक्षित न होनेवाले
परं	परे,	नमस्ये	(आपको) नमस्कार
सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके		करती हूँ ॥१८॥
अन्तः	भीतर (एवं)		

मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाधोक्षजमव्ययम् ।
न लक्ष्यसे मूढदृशा नटो नाट्यधरो यथा ॥१९॥

माया जवनिकाः आच्छन्नं अज्ञा अधोक्षजं अव्ययं न लक्ष्यसे मूढदृशाः नटः नाट्यधरः यथा ॥ १९ ॥

माया	मायाके	मूढदृशा	मूढ़ दृष्टिवालीसे
जवनिकाः	पर्देसे	न लक्ष्यसे	लक्षित नहीं होते हो
आच्छन्नं	ढके (छिपे) हुए	यथा	जैसे
अधोक्षजं	इन्द्रियोंके पीछे	नाट्यधरः	नाटक करनेवाला
	रहनेवाले	नटः	नट (पहिचाना नहीं
अव्ययं	अव्यय (आप)		जाता) ॥१९॥
अज्ञा	(मुझ) अज्ञानी		

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् ।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येमहि स्त्रियः ॥२०॥

तथा परमहंसानां मुनीनां अमल आत्मनां भक्तियोग विधानार्थं कथं पश्येमहि स्त्रियः ॥ २० ॥

तथा	ऐसे ही	विधानार्थं	विधान करनेके लिए (आपका यह लीला रूप है)
अमल	निर्मल		
आत्मनां	चित्तवाले		
परमहंसानां	परमहंस	स्त्रियः	(मैं) स्त्री
मुनीनां	मुनियोंको	कथं	कैसे
भक्तियोग	भक्तियोगका	पश्येमहि	(ठीक) देख सकती हूँ ॥२०॥

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च ।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥२१॥

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥ २१ ॥

वासुदेवाय	वसुदेवपुत्र	नन्दगोपकुमाराय	नन्दनन्दन
कृष्णाय	श्रीकृष्ण (आप)	गोविन्दाय	गोविन्दको
देवकीनन्दनाय	देवकीनन्दन	नमो नमः	बार-बार नमस्कार ॥२१॥
च	और		

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥२२॥

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने नमः पङ्कजनेत्राय नमः ते पङ्कजअंघ्रये ॥ २२ ॥

पङ्कजनाभाय	कमलनाभिको	नमः	नमस्कार,
नमः	नमस्कार,	ते	आपके
पङ्कजमालिने	कमलमालाधारीको	पङ्कजअंघ्रये	चरणकमलको
नमः	नमस्कार,	नमः	नमस्कार ॥२२॥
पङ्कजनेत्राय	कमललोचनको		

यथा हृषीकेश खलेन देवकी
कंसेन रुद्धातिचिरं शुचार्पिता ।
विमोचिताहं च सहात्मजा विभो
त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ॥२३॥

यथा हृषीकेश खलेन देवकीः कंसेन रुद्धा अतिचिरं शुचा अर्पिताः विमोचिताः अहं च सह आत्मजाः विभो त्वयि एव नाथेन मुहुः विपद्गणात् ॥ २३ ॥

हृषीकेश	हृषीकेश !	**विभो**	प्रभो !
यथा	जैसे (तुमने)	**त्वयि**	तुम
खलेन	दुष्ट	**नाथेन**	स्वामीके द्वारा
कंसेन	कंसके द्वारा	**एव**	ही
रुद्धा	बंदी बनायी गयी	**मुहुः**	बार-बार
अति चिरं	बहुत कालतक	**विपद्गणात्**	विपत्तियोंसे
शुचा	शोक	**अहं**	मैं
अर्पिताः	ग्रस्त रही	**च**	भी
देवकीः	देवकीको	**सह आत्मजाः**	पुत्रोंके साथ (छुड़ायी गयी)॥२३॥
विमोचिताः	छुड़ाया		

विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शना-
दसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः ।
मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो
द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिताः ॥२४॥

विषात् महाग्नेः पुरुषात् अदर्शनात् असत् सभायाः वनवास कृच्छ्रतः मृधे मृधे अनेक महारथाः अस्त्रतः द्रोणि अस्त्रेतः च अस्म हरे अभिरक्षिताः ॥ २४ ॥

विषात्	विषसे (भीमसेनकी),	**अदर्शनात्**	अदृश्य रहनेवाले
महाग्नेः	(लाक्षागृहकी) भयानक अग्निसे,	**पुरुषात्**	पुरुष (यक्ष) से,
		असत्	दुष्टोंकी
		सभायाः	सभा (द्यूतसभा) से,

वनवास	वनवासके	द्रोणि	अश्वत्थामाके
कृच्छ्रतः	कष्टोंसे,	अस्त्रतः	अस्त्र (ब्रह्मास्त्र) से
अनेक	अनेक	हरेः	श्रीहरि (आपके द्वारा)
मृधे मृधे	युद्धोंमें	अभिरक्षिताः	भली प्रकार (हम)
महारथाः	महारथियोंके		रक्षित
अस्त्रतः	दिव्यास्त्रोंसे	अस्म	हुए हैं ॥२४॥
च	और		

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥२५॥

विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो भवतः दर्शनं यत् स्यात् अपुनः भव दर्शनम् ॥ २५ ॥

जगद्गुरो	हे जगद्गुरो !	भवतः	आपके
नः	हम लोग	दर्शनं	दर्शन
तत्र तत्र	जहाँ जहाँ रहें, वहीं	स्यात्	होते हैं (जिससे)
शश्वत्	बराबर	भव	संसारका
विपदः	विपत्तियाँ	दशनं	दर्शन
सन्तु	आवें, (क्योंकि)	अपुनः	फिर नहीं
यत्	इससे		होता ॥२५॥

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ।
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम् ॥२६॥

जन्म ऐश्वर्य श्रुतः श्रीभिः एधमान मदः पुमान् न एव अर्हति अभिधातुं वै त्वां अकिञ्चन गोचरम् ॥ २६ ॥

वै	निश्चय ही	श्रीभिः	लक्ष्मीके द्वारा
जन्म	(उच्च कुलमें)	एधमान	बढ़े हुए
	जन्म होनेसे,	मदः	अभिमानवाले
ऐश्वर्य	ऐश्वर्य पाकर,	पुमान्	पुरुष
श्रुतः	(शास्त्रोंका) विद्वान	अकिञ्चन	अकिंचन
	होनेसे (एवं)	गोचरं	को दर्शन देनेवाले

त्वां	आपका	अर्हति	योग्य
अभिधातुं	नाम लेनेके	न एव	नहीं ही है ॥२६॥

नमोऽकिंचनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये ।
आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः ॥२७॥

नमः अकिञ्चन वित्ताय निवृत्त गुणवृत्तये आत्मारामाय शान्ताय कैवल्य पतये नमः ॥ २७ ॥

अकिंचन	अकिंचनोंके	आत्मारामाय	आत्माराम
वित्ताय	धन	शान्ताय	शान्त (स्वरूप)
नमः	आपको नमस्कार	कैवल्य	मोक्षके
गुणवृत्तये	त्रिगुणमयी (माया) की वृत्तियोंसे	पतये	स्वामी
निवृत्त	परे	नमः	आपको नमस्कार ॥२७॥

मन्ये त्वां कालमीशानमनादिनिधनं विभुम् ।
समं चरन्तं सर्वत्र भूतानां यन्मिथः कलिः ॥२८॥

मन्ये त्वां कालं ईशानं अनादि निधनं विभुं समं चरन्तं सर्वत्र भूतानां यत् मिथः कलिः ॥ २८ ॥

त्वां	आपको	चरन्तं	विचरण करते हुए भी
अनादि निधनं	अनादि, अनन्त	यत्	जिस (आपकी) प्रेरणासे
विभुं	सर्वव्यापक	भूतानां	प्राणियोंमें
ईशानं	सर्वनियन्ता	मिथः	परस्पर
कालं	काल	कलिः	कलह (होता रहता)
मन्ये	मानती हूँ ।		है ॥२८॥
सर्वत्र	सर्वत्र		
समं	समान		

न वेद कश्चिद्भगवंश्चिकीर्षितं
तवेहमानस्य नृणां विडम्बनम् ।
न यस्य कश्चिद्दयितोऽस्ति कर्हिचिद्
द्वेष्यश्च यस्मिन् विषमा मतिर्नृणाम् ॥२९॥

न वेद कश्चित् भगवन् चिकीर्षितं तव ईहमानस्य नृणां विडम्बनं
न यस्य कश्चित् दयितः अस्ति कर्हिचित् द्वेष्यः च यस्मिन् विषमा मतिः
नृणाम् ॥ २९ ॥

भगवन्	भगवन् !	दयितः	प्रिय
नृणां	मनुष्योंके समान	न	नहीं
विडम्बनं	लीला	अस्ति	है
ईहमानस्य	करते हुए की	च	और
तव	आपकी	कर्हिचित्	कोई भी
चिकीर्षितं	करनेकी इच्छा (क्या है यह)	द्वेष्यः	द्वेष करने योग्य (भी नहीं है)
कश्चित्	कोई भी	यस्मिन्	जिस (आप) में
न	नहीं	नृणां	मनुष्योंकी
वेद	जानता, (क्योंकि)	मतिः	बुद्धि ही
यस्य	जिसका	विषमाः	विषम है ॥२९॥
कश्चित्	कोई भी		

जन्म कर्म च विश्वात्मन्नजस्याकर्तुरात्मनः ।
तिर्यङ्नृषिषु यादःसु तदत्यन्तविडम्बनम् ॥३०॥

जन्म कर्म च विश्वात्मन् अजस्य अकर्तुः आत्मनः तिर्यङ् नृ ऋषिषु
यादःसु तत् अत्यन्त विडम्बनम् ॥ ३० ॥

विश्वात्मन्	विश्वात्मा !	यादःसु	जलचरोंमें
अजस्य	अजन्मा,	जन्म	अवतार लेना
अकर्तुः	अकर्ता,	च	और
आत्मनः	आत्मस्वरूप आपका	कर्म	कर्म करना—
तिर्यङ्	पशु-पक्षियोंमें,	तत्	वह
नृ	मनुष्य रूपमें	अत्यन्त	अत्यन्त
ऋषिषु	ऋषियोंमें,	विडम्बनं	लीला ही है ॥३०॥

गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्
या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसम्भ्रमाक्षम् ।
वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य
सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥३१॥

गोप्यः आददे त्वयि कृतः आगसि दाम तावत् या ते दशा अश्रु कलिल अञ्जन सम्भ्रम अक्षं वक्त्रं निनीय भय भावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीः अपि यत् विभेति ॥ ३१ ॥

यत्	जिससे
भीः	भय
अपि	भी
विभेति	डरता है,
त्वयि	(वही) आप—
आगसि	(दधि भाण्ड फोड़नेका) अपराध
कृतः	करनेपर,
गोप्यः	गोपी यशोदाने
दाम	रस्सी
आददे	उठायी,
तावत्	तब—
अञ्जन	अञ्जनकी
कलिल	कालिमा मिश्रित
अश्रु	आँसुओंसे
सम्भ्रम	चञ्चल
अक्षं	नेत्र (और)
वक्त्रं	मुख
निनीय	नीचे लटकाये,
भय	भयकी
भावनया	भावनासे
स्थितस्य	अवस्थित
ते	तुम्हारी
या	जैसी
दशा	अवस्था हुई,
सा	वह
मां	मुझे
विमोहयति	बहुत मोहमें डालती है ॥३१॥

केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये ।
यदोः प्रियस्यान्ववाये मलयस्येव चन्दनम् ॥३२॥

केचित् आहुः अजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये यदोः प्रियस्य अन्ववाये मलयस्य इव चन्दनम् ॥ ३२ ॥

केचित्	कोई कोई
आहुः	कहते हैं
मलयस्य	मलयाचलपर
चन्दनं इव	चन्दनकी भाँति
प्रियस्य	(अपने) प्रिय
पुण्यश्लोकस्य	पवित्र कीर्ति
यदोः	राजा यदुकी
कीर्तये	कीर्तिके लिए (उनके)
अन्ववाये	वंशमें
अजं	अजन्मा (होकर भी)
जातं	(आपने) जन्म लिया है ॥३२॥

अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात् ।
अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ॥३३॥

अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितः अभ्यगात् अजः त्वं अस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ॥ ३३ ॥

अपरे	दूसरे (कहते हैं कि)	क्षेमाय	कल्याणके लिए
वसुदेस्य	वसुदेवसे	च	और
देवक्यां	देवकीमें	सुरद्विषां	देवताओंसे द्वेष करनेवालोंके
याचितः	उनकी प्रार्थनासे		
त्वं	आप	वधाय	वधके लिए
अजः	अजन्मा होनेपर भी	अभ्यगात्	अवतीर्ण हुए ॥३३॥
अस्य	इस जगतके		

भारावतारणायान्ये भुवो नाव इवोदधौ ।
सीदन्त्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवार्थितः ॥३४॥

भारः अवतारणाय अन्ये भुवः नाव इव उदधौः सीदन्त्याः भूरि भारेण जातः हि आत्मभुवाः अर्थितः ॥ ३४ ॥

अन्ये	कोई दूसरे (कहते हैं कि)	भारः	भार
		अवतारणाय	उतारनेके लिए
उदधौः	समुद्रमें	हि	क्योंकि
भूरि	(दैत्योंके) बहुत	आत्मभुवाः	स्वयंभू ब्रह्माजीके द्वारा
भारेण	भारसे		
सीदन्त्याः	कष्ट पाती हुई	अर्थितः	प्रार्थित होकर (आप)
नाव	नौका		
इव	के समान	जातः	प्रकट हुए हैं ॥३४॥
भुवः	पृथ्वीका		

भवेऽस्मिन् क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः ।
श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन ॥३५॥

भवे अस्मिन् क्लिश्यमानानां अविद्या काम कर्मभिः श्रवण स्मरण अर्हानि करिष्यन् इति केचन ॥ ३५ ॥

अस्मिन्	इस	स्मरण	स्मरण (करने)
भवे	संसारमें	अर्हाणि	योग्य (लीला)
अविद्या	अविद्या (जन्य)	करिष्यन्	करनेके लिए (आपने
काम	कामनाओं		अवतार लिया है)
कर्मभिः	कर्मोंके द्वारा	इति	ऐसा
क्लिश्यमाणानां	क्लेश पाते लोगोंके (कल्याणार्थ उनके)	केचन	कोई कोई कहते हैं ॥३६॥
श्रवण	श्रवण (और)		

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः
स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं
भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥३६॥

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति अभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तव ईहितं जनाः त एव पश्यन्ति अचिरेण तावकं भव प्रवाह उपरमं पदाम्बुजम् ॥३६॥

तव	आपकी	त	वे
ईहितं	चेष्टाओं (लीलाओं) को	एव	ही
		अचिरेण	शीघ्र
जनाः	(जो) लोग	भव	संसार
अभीक्ष्णशः	बराबर	प्रवाह	प्रवाह (जन्म-मरण) से
शृण्वन्ति	सुनते हैं,		
गायन्ति	गाते हैं,	उपरमं	उपराम (समाप्त) करनेवाले
गृणन्ति	कीर्तन (वर्णन) करते हैं,	तावकं	आपके
स्मरन्ति	स्मरण करते हैं,	पदाम्बुजं	चरण-कमलोंका
नन्दन्ति	उससे आनन्दित होते हैं	पश्यन्ति	दर्शन करते हैं ॥३६॥

अप्यद्य नस्त्वं स्वकृतेहित प्रभो
जिहाससि स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः ।
येषां न चान्यद्भवतः पदाम्बुजात्
परायणं राजसु योजितांहसाम् ॥३७॥

अपि अद्य नः त्व स्वकृते हित प्रभो जिहाससि स्वित् सुहृदः अनुजीविनः येषां न च अन्यत् भवतः पदाम्बुजात् परायणं राजसु योजितः अंहसाम् ॥ ३७ ॥

प्रभो	हे प्रभो !	अनुजीविनः	(जो) आपके अनुजीवी (आश्रित) हैं,
राजसु	राजाओंसे	सुहृदः	सम्बन्धी हैं,
अंहसां	शत्रुता	स्वकृते	आपने स्वयं
योजितः	कर लेनेवाले	हित	जिनका हित किया है,
नः	हम लोगोंको,	अद्य	आज
येषां	जिनका	त्वं	आप
भवतः	आपके	अपि	भी
पदाम्बुजात्	चरण-कमलोंसे	स्वित्	क्या (उनको)
अन्यत्	पृथक	जिहाससि	त्याग देंगे ? ॥३७॥
परायणं	आश्रय		
न	नहीं है		
च	और		

के वयं नामरूपाभ्यां यदुभिः सह पाण्डवाः ।
भवतोऽदर्शनं यर्हि हृषीकाणामिवेशितुः ॥३८॥

के वयं नाम रूपाभ्यां यदुभिः सह पाण्डवाः भवतः अदर्शनं यर्हि हृषीकाणां इव ईशितुः ॥ ३८ ॥

ईशितुः	इन्द्रियोंके ईश जीव (के बिना)	यदुभिः	यदुवंशियोंके
हृषीकाणां	इन्द्रियोंकी	सह	साथ
इव	भाँति	वयं	हम
यर्हि	जब	पाण्डवाः	पाण्डव,
भवतः	आपका	नाम	नाम–
अदर्शनं	दर्शन नहीं होता (तब)	रूपाभ्यां	रूपसे
		के	किस गणनामें रह जाते हैं ॥३८॥

नेयं शोभिष्यते तत्र यथेदानीं गदाधर ।
त्वत्पदैरङ्किता भाति स्वलक्षणविलक्षितैः ॥३९॥

न इयं शोभिष्यते तत्र यथा इदानीं गदाधर त्वत् पदैः अङ्किता भाति स्वलक्षण विलक्षितैः ॥ ३९ ॥

गदाधर	हे गदाधर !	त्वत्	आपके
यथा	जैसे	पदैः	पदोंसे
इदानीं	इस समय	अङ्किता	चिह्नित होकर
इयं	यह भूमि (हस्तिनापुरी)	भाति	शोभित हो रही है,
		तत्र	(आपके) वहाँ जानेपर
स्वलक्षण	अपने लक्षणोंसे		
विलक्षितैः	विशेष रूपसे पहचानी जानेवाले	न	नहीं
		शोभिष्यते	शोभित होंगी ॥३९॥

इमे जनपदाः स्वृद्धाः सुपक्वौषधिवीरुधः ।
वनाद्रिनद्युदन्वन्तो ह्येधन्ते तव वीक्षितैः ॥४०॥

इमे जनपदाः स्वृद्धाः सुपक्व औषधिः वीरुधः वनः अद्रिः नदीः उदन्वन्तः हि एधन्ते तव वीक्षितैः ॥ ४० ॥

तव	आपकी	सुपक्व	भली प्रकार फलते पकते हैं,
वीक्षितैः	दृष्टि पड़ने		
हि	के कारण	वनः	वन,
इमे	ये	अद्रिः	पर्वत,
जनपदाः	जनपद	नदीः	नदियाँ,
स्वृद्धाः	सम्पन्न हैं,	उदन्वतः	समुद्र,
औषधिः	(अन्नादि)औषधियाँ,	एधन्ते	बढ़ते हैं ॥४०॥
वीरुधः	वृक्ष,		

अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्ते स्वकेषु मे ।
स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु ॥४१॥

अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्तेः स्वकेषु मे स्नेहपाशं इमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु ॥ ४१ ॥

विश्वेश	विश्वेश !	विश्वमूर्तेः	विश्वमूर्ति !
विश्वात्मन्	विश्वात्मा !	अथ	अब

स्वकेषु	अपने सम्बन्धी	इमं	यह
पाण्डुषु	पाण्डवों और	स्नेहपाशं	मोहका पाश
वृष्णिषु	यदुवंशियोंमें		(बन्धन)
दृढं	दृढ़तासे बँधा	छिन्धि	काट दीजिये ॥४१॥
मे	मेरा		

त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् ।
रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति ॥४२॥

त्वयि मे अनन्य विषया मतिः मधुपतेः असकृत् रतिं उद्वहतात् अद्धा गङ्गा इव ओघं उदन्वति ॥ ४२ ॥

मधुपतेः	हे श्रीकृष्ण !	विषयाः	विषयवाली
उदन्वति	समुद्रकी ओर	मतिः	बुद्धि
गङ्गा	गंगाके	त्वयि	तुममें
ओघं	प्रवाहकी	असकृत	निरन्तर
इव	भाँति	अद्धा	अपने आप
मे	मेरी	रतिं	प्रीति
अनन्य	अनन्य (दूसरे किसीमें न जानेवाली)	उद्वहतात्	वहन करती रहे ॥४२॥

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्
राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।
गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार
योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥४३॥

श्रीकृष्ण कृष्ण सखः वृष्णि ऋषभः अवनि ध्रुक् राजन्यवंश दहनात् अपवर्ग वीर्यः गोविन्द गोः द्विज सुर आर्ति हर अवतारः योगेश्वरः अखिलगुरो भगवन् नमः ते ॥ ४३ ॥

श्रीकृष्ण	श्रीकृष्ण !	वृष्णि	वृष्णिवंश
कृष्ण	अर्जुनके	ऋषभः	शिरोमणि !
सखः	सखा !	अवनि	पृथ्वीके

धुक्	रक्षक !	सुर	देवताओंके
राजन्यवंश	राजाओंके वंशके लिए	आर्ति	संकटको
		हर	हरण करनेके लिए
वहनात्	अग्नि स्वरूप !	अवतारः	अवतार लेनेवाले
अपवर्ग	मोक्ष (देनेवाले) !	योगेश्वरः	योगेश्वर !
वीर्यः	पराक्रमशील !	अखिलगुरो	सब चराचरके गुरु !
गोविन्द	गोविन्द !	भगवन्	भगवान् !
गोः	गौ,	ते	आपको
द्विज	ब्राह्मण (और)	नमः	नमस्कार है ॥४३॥

सूत उवाच–

पृथयेत्थं कलपदैः परिणूताखिलोदयः ।
मन्दं जहास वैकुण्ठो मोहयन्निव मायया ॥४४॥

पृथया इत्थं कलपदैः परिणूताः अखिल उदयः मन्दं जहास वैकुण्ठः मोहयन् इव मायया ॥ ४४ ॥

इत्थं	इस प्रकार	वैकुण्ठः	श्रीकृष्ण
पृथया	कुन्तीजी द्वारा	मायया	मायासे
कलपदैः	मधुर शब्दोंसे	मोहयन्	मोहित करते
अखिल	सब	इव	हुए-से
उदयः	लीलाओंका	मन्दं	मन्द-मन्द
परिणूताः	वर्णन करनेपर	जहास	मुसकराये ॥४४॥

तां बाढमित्युपामन्त्र्य प्रविश्य गजसाह्वयम् ।
स्त्रियश्च स्वपुरं यास्यन् प्रेम्णा राज्ञा निवारितः ॥४५॥

तां बाढं इति उपामन्त्र्य प्रविश्य गजसा आह्वयं स्त्रियः च स्वपुरं मास्यन् प्रेम्णा राज्ञाः निवारितः ॥ ४५ ॥

तां	उन (कुन्ती) को	उपामन्त्र्य	कहकर,
बाढं	ठीक है,	गजसाह्वयं	हस्तिनापुरमें
इति	ऐसा—	प्रविश्य	जाकर

च	और	राज्ञाः	राजा युधिष्ठिरके
स्त्रियः	रानियोंके साथ		द्वारा
स्वपुरं	अपने नगर द्वारिका	प्रेमणा	प्रेमसे
प्रास्थन्	जाने लगे (तब)	निवारितः	रोक लिये गये ॥४५॥

व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञैः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ।
प्रबोधितोऽपीतिहासैर्नाबुध्यत शुचार्पितः ॥४६॥

व्यास आद्यैः ईश्वर ईहाज्ञैः कृष्णेन अद्भुत कर्मणा प्रबोधितः अपि इतिहासैः न अबुध्यत शुचार्पितः ॥ ४६ ॥

ईश्वर	ईश्वरकी	इतिहासैः	इतिहासके
ईहाज्ञैः	इच्छाको जाननेवाले		उदाहरणोंसे
व्यास	व्यास (नारद धौम्य)	प्रबोधितः	समझाये जानेपर
आद्यैः	आदिक (महर्षियों)	अपि	भी
	द्वारा	शुचार्पितः	शोकग्रस्त (राजा
अद्भुत कर्मणा	(और) अद्भुतकर्मा		युधिष्ठिर)
कृष्णेन	श्रीकृष्ण द्वारा	न	नहीं
		अबुध्यत	समझ सके ॥४६॥

आह राजा धर्मसुतश्चिन्तयन् सुहृदां वधम् ।
प्राकृतेनात्मना विप्राः स्नेहमोहवशं गतः ॥४७॥

आह राजाः धर्मसुतः चिन्तयन् सुहृदां वधं प्राकृतेन आत्मना विप्राः स्नेह मोह वशं गतः ॥ ४७ ॥

विप्राः	शौनकादि ऋषियो !	मोह	मोहके
सुहृदां	सम्बन्धियोंके	वश	वशमें
वधं	वधको	गतः	होकर
चिन्तयन्	सोचते हुए	राजाः	राजा
प्राकृतेन	अविवेक युक्त	धर्मसुतः	युधिष्ठिर
आत्मना	चित्तसे	आह	बोले ॥४७॥
स्नेह	स्नेह एवं		

*युधिष्ठिर उवाच–**

अहो मे पश्यताज्ञानं हृदि रूढं दुरात्मनः ।
पारक्यस्यैव देहस्य बह्वचो मेऽक्षौहिणीर्हताः ॥४८॥

अहो मे पश्यत अज्ञानं हृदि रूढं दुरात्मनः पारक्यस्य एव देहस्य बह्वचः मे अक्षौहिणीः हताः ॥ ४८ ॥

अहो	भला	एव	ही जो है
मे	मुझ	देहस्य	उस देहके लिए
दुरात्मनः	दुरात्माके	मे	मैंने
हृदि	हृदयमें	बह्वचः	बहुत-सी
रूढं	बद्धमूल	अक्षौहिणीः	अक्षौहिणी (सेनाको)
अज्ञानं	अज्ञानको	हताः	मार दिया ॥४८॥
पश्यत	देखो		
पारक्यस्य	दूसरों (गीध, अग्नि आदि) के लिए		

बालद्विजसुहृन्मित्रपितृभ्रातृगुरुद्रुहः ।
न मे स्यान्निरयान्मोक्षो ह्यपि वर्षायुतायुतैः ॥४९॥

बाल द्विज सुहृत् मित्र पितृ भातृ गुरु द्रुहः न मे स्यात् निरयात् मोक्षः हि अपि वर्ष अयुता युतैः ॥ ४९ ॥

हि	क्योंकि	मे	मेरा
बाल	बालक,	अयुतायुतैः	करोड़ों
द्विज	ब्राह्मण,	वर्षैः	वर्षोंमें
सुहृत	सम्बन्धी,	अपि	भी
मित्र	मित्र	निरयात्	नरकसे
पितृ	चाचा-ताऊ,	मोक्षः	छुटकारा
भ्रातृ	भाई (और)	न	नहीं
गुरु	गुरुसे	स्यात्	होगा ॥४९॥
द्रुहः	द्रोह करनेवाले		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

नैनो राज्ञः प्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धे वधो द्विषाम् ।
इति मे न तु बोधाय कल्पते शासनं वचः ॥५०॥

न एनः राज्ञः प्रजाभर्तुः धर्मयुद्धे वधः द्विषां इति मे न तु बोधाय कल्पते शासनं वचः ॥ ५० ॥

प्रजाभर्तुः	प्रजाके पालन करनेवाले	शासनं	शास्त्राज्ञा
		वचः	वाणी
राज्ञः	राजाके लिए	तु	निश्चय ही
धर्मयुद्धे	धर्मयुद्धमें	मे	मेरे
द्विषां	शत्रुओंका	बोधाय	बोध (समझा देने) को
वधः	वध		
एनः	पाप	कल्पते	समर्थ
न	नहीं है—	न	नहीं है ॥५०॥
इति	इस प्रकारकी		

स्त्रीणां मद्धतबन्धूनां द्रोहो योऽसाविहोत्थितः ।
कर्मभिर्गृहमेधीयैर्नाहं कल्पो व्यपोहितुम् ॥५१॥

स्त्रीणां मत् हत बन्धूनां द्रोहः यः असा इह उत्थितः कर्मभिः गृहमेधीयैः न अहं कल्पः व्यपोहितम् ॥ ५१ ॥

मत्	मेरे द्वारा		(वह)
हत	मारे गये	गृहमेधीयैः	गृहस्थोचित
बन्धूनां	सम्बन्धियोंके कारण	कर्मभिः	(यज्ञादि) कर्मों द्वारा
यः	जो		
असा	यह	अहं	मैं
द्रोहः	द्रोह	व्यपोहितुं	दूर करनेमें
स्त्रीणां	स्त्रियोंमें	कल्पः	समर्थ
इह	यहाँ	न	नहीं हूँ ॥५१॥
उत्थितः	उपस्थित हुआ है		

यथा पङ्केन पङ्काम्भः सुरया वा सुराकृतम् ।
भूतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥५२॥

यथा पङ्केन पङ्क अम्भः सुरया वा सुराकृतं भूत हत्यां तथा एव एकां न यज्ञैः मार्ष्टुं अर्हति ॥ ५२ ॥

यथा	जैसे	**तथा**	वैसे
पङ्केन	कीचड़से	**एव**	ही
पङ्क	कीचड़ भरा	**एकां**	एक भी
अम्भः	जल (स्वच्छ नहीं हो सकता)	**भूतहत्यां**	प्राणीकी हत्या
		यज्ञैः	यज्ञोंके द्वारा
वा	अथवा	**मार्ष्टुं**	मिटाई
सुरया	शराबसे	**न**	नहीं
सुराकृतं	शराबका (नशा नहीं उतर सकता)	**अर्हति**	जा सकती ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे अथाष्टमोऽध्यायः

अथ नवमोऽध्यायः

सूत उवाच–

इति भीतः प्रजाद्रोहात्सर्वधर्मविवित्सया ।
ततो विनशनं प्रागाद् यत्र देवव्रतोऽपतत् ॥१॥

इति भीतः प्रजा द्रोहात् सर्व धर्म विवित्सया ततः विनशनं प्रागात् यत्र देवव्रतः अपतत् ॥ १ ॥

इति	इस प्रकार	ततः	वहाँसे
प्रजा	प्रजाके	विनशनं	युद्ध स्थलमें
द्रोहात्	द्रोहसे	प्रागात्	गये
भीतः	डरे हुए (युधिष्ठर)	यत्र	जहाँ
सर्व	सब	देवव्रतः	भीष्मजी
धर्म	धर्मोंको	अपतत्	(शरशय्यापर)
विवित्सया	जाननेकी इच्छासे		गिरे थे ॥१॥

तदा ते भ्रातरः सर्वे सदश्वैः स्वर्णभूषितैः ।
अन्वगच्छन् रथैर्विप्रा व्यासधौम्यादयस्तथा ॥२॥

तदा ते भ्रातरः सर्वे सदश्वैः स्वर्णभूषितैः अन्वगच्छन् रथैः विप्राः व्यासः धौम्य आदयः तथा ॥ २ ॥

तदा	तब	तथा	और
स्वर्णभूषितैः	स्वर्णा भरणोंसे अलंकृत	व्यास	व्यास
		धौम्य	धौम्य
सदश्वैः	उत्तम घोड़ोंवाले	आदयः	आदि
रथैः	रथोंसे	विप्राः	ब्राह्मणोंने (भी उनका)
ते	उनके		
सर्वे	सब	अन्वगच्छन्	अनुगमन किया ॥२॥
भ्रातरः	भाई		

भगवानपि विप्रर्षे रथेन सधनञ्जयः ।
स तैर्व्यरोचत नृपः कुवेर इव गुह्यकैः ॥३॥

भगवान् अपि विप्रर्षे रथेन सधनञ्जयः स तैः व्यरोचत् नृपः कुबेर इव गुह्यकैः ॥ ३ ॥

विप्रर्षे	शौनकजी !	स	वे
सधनञ्जयः	अर्जुनके साथ	नृपः	राजा युधिष्ठिर
भगवान्	भगवान श्रीकृष्ण	गुह्यकैः	यक्षोंके साथ
अपि	भी	कुबेर	कुबेर
रथेन	रथपर बैठकर (गये)	इव	के समान
तैः	उन सब लोगोंके (साथ)	व्यरोचत्	शोभित हुए ॥३॥

दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवश्च्युतमिवामरम् ।
प्रणेमुः पाण्डवा भीष्मं सानुगाः सह चक्रिणा ॥४॥

दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवः च्युतं इव अमरं प्रणेमुः पाण्डवाः भीष्मं सानुगाः सह चक्रिणा ॥ ४ ॥

भूमौ	पृथ्वीपर	दृष्ट्वा	देखकर
दिवः	स्वर्गसे	सानुगाः	साथ आये लोगों सहित
च्युतं	गिरे हुए	पाण्डवाः	पाण्डवोंने
अमरं	देवता	चक्रिणाः	चक्रपाणि श्रीकृष्णके
इव	के समान	सह	साथ
निपतितं	(शरशय्यापर) गिरे हुए	प्रणेमुः	प्रणाम किया ॥४॥
भीष्मं	भीष्मको		

तत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षयश्च सत्तम ।
राजर्षयश्च तत्रासन् द्रष्टुं भरतपुङ्गवम् ॥५॥

तत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षयः च सत्तम राजर्षयः च तत्र आसन् द्रष्टुं भरत पुंगवम ॥ ५ ॥

तत्र	सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ शौनकजी !	च	तथा
		तत्र	वहाँ
	वहाँ	राजर्षयः	राजर्षि लोग भी
	सब	भरतर्षभं	भरतकुलमें श्रेष्ठ भीष्मको
	ब्रह्मर्षिगण	द्रष्टुं	देखनेके लिए
च	और	आसन्	आये थे ॥५॥
	देवर्षिगण		

पर्वतो नारदो धौम्यो भगवान् बादरायणः ।
बृहदश्वो भरद्वाजः सशिष्यो रेणुकासुतः ॥६॥

पर्वतः नारदः धौम्यः भगवान् बादरायणः बृहदश्वः भरद्वाजः सशिष्यः रेणुकासुतः ॥ ६ ॥*

वसिष्ठ इन्द्रप्रमदस्त्रितो गृत्समदोऽसितः ।
कक्षीवान् गौतमोऽत्रिश्च कौशिकोऽथ सुदर्शनः ॥७॥

वशिष्ठ इन्द्रप्रमदः त्रितः गृत्समदः असितः कक्षीवान् गौतमः अत्रिः च कौशिकः अथ सुदर्शनः ॥ ७ ॥

अन्ये च मुनयो ब्रह्मन् ब्रह्मरातादयोऽमलाः ।
शिष्यैरुपेता आजग्मुः कश्यपाङ्गिरसादयः ॥८॥

अन्ये च मुनयः ब्रह्मन् ब्रह्मरात आदयः अमलाः शिष्यैः उपेता आजग्मुः कश्यप, आङ्गिरस आदयः ॥ ८ ॥

ब्रह्मन्	शौनकजी !	उपेता	साथ
अन्ये	दूसरे	कश्यप	कश्यप,
ब्रह्मरात	शुकदेवजी	आङ्गिरस	अंगिरा पुत्र बृहस्पति
आदयः	आदि	आदयः	आदिक
मुनयः	मुनिगण,	च	भी
अमलाः	पवित्र	आजग्मुः	आये ॥८॥
शिष्यैः	शिष्योंके		

* केवल नाम हैं दो श्लोकोंमें। इनका अन्वय, अर्थ देना व्यर्थ विस्तार है।

तान् समेतान् महाभागानुपलभ्य वसूत्तमः ।
पूजयामास धर्मज्ञो देशकालविभागवित् ॥९॥

तान् समेतान् महाभागान् उपलभ्य वसु उत्तमः पूजयामास धर्मज्ञः देशकाल विभागवित् ॥ ९ ॥

तान्	उन	विभागवित्	विभागको जाननेवाले
महाभागान्	महाभागोंको	धर्मज्ञः	धर्मज्ञ
समेतान्	चारों ओरसे आये	वसु उत्तमः	वसु श्रेष्ठ भीष्मजीने (उनका)
उपलभ्य	देखकर	पूजयामास	सत्कार किया ॥९॥
देशकाल	देशकालके		

कृष्णं च तत्प्रभावज्ञ आसीनं जगदीश्वरम् ।
हृदिस्थं पूजयामास माययोपात्तविग्रहम् ॥१०॥

कृष्णं च तत् प्रभावज्ञ आसीनं जगदीश्वरं हृदिस्थं पूजयामास मायया उपात्त विग्रहम् ॥ १० ॥

मायया	मायासे	हृदिस्थं	हृदयमें स्थित
विग्रहं	लीला-विग्रह	जगदीश्वरं	जगदीश्वरको
उपात्त	धारण किये	तत्	उनके
आसीनं	वहाँ विराजमान	प्रभावज्ञ	प्रभावको जाननेवाले (भीष्मने)
कृष्णं	श्रीकृष्णको	पूजयामास	सत्कृत किया ॥१०॥
च	भी		

पाण्डुपुत्रानुपासीनान् प्रश्रयप्रेमसङ्गतान् ।
अभ्याचष्टानुरागाश्रैरन्धीभूतेन चक्षुषा ॥११॥

पाण्डुपुत्रान् उपासीनान् प्रश्रयः प्रेम संगतान् अभ्याचष्ट अनुराग अश्रैः अन्धीभूतेन चक्षुषा ॥ ११ ॥

प्रश्रयः	विनम्रता (और)	उपासीनान्	समीप बैठे
प्रेम	प्रेम	पाण्डुपुत्रान्	पाण्डवोंको
संगतान्	सहित आकर	अनुराग	स्नेहके

अश्रुभिः	आँसुओंसे	अभ्याचष्ट	देखकर (उनसे भीष्म) बोले ॥११॥
अन्धीभूतेन	धुंधली पड़ी		
चक्षुषा	आँखोंसे		

*भीष्म उवाच–**

अहो कष्टमहोऽन्याय्यं यद्यूयं धर्मनन्दनाः ।
जीवितुं नार्हथ क्लिष्टं विप्रधर्माच्युताश्रयाः ॥१२॥

अहो कष्टं अहो अन्याय्यं यत् यूयं धर्मनन्दनाः जीवितुं न अर्हथ क्लिष्टं विप्र धर्म अच्युत आश्रयाः ॥ १२ ॥

धर्मनन्दनाः	धर्म पुत्रो !	धर्म	धर्म (और)
अहो	बड़े	अच्युत	भगवानके
कष्टं	कष्टकी,	आश्रयाः	आश्रित होकर
अहो	बड़े	क्लिष्टं	कष्टपूर्वक
अन्याय्यं	अन्यायकी बात है	जीवितं	जीवन बितानेके
यत्	क्योंकि	अर्हथ	योग्य
यूयं	तुम लोग	न	नहीं हो ॥१२॥
विप्र	ब्राह्मण,		

संस्थितेऽतिरथे पाण्डौ पृथा बालप्रजा वधूः ।
युष्मत्कृते बहून् क्लेशान् प्राप्ता तोकवती मुहुः ॥१३॥

संस्थिते अतिरथे पाण्डौ पृथाः बालप्रजाः वधूः युष्मत्कृते बहून् क्लेशान् प्राप्ता तोकवती मुहुः ॥ १३ ॥

अतिरथे	अतिरथी	तोकवती	शिशु सन्तान होनेसे
पाण्डौ	पाण्डुके	युष्मत्कृते	तुम लोगोंके लिए
संस्थिते	मर जानेपर	मुहुः	बार-बार
बालप्रजाः	छोटे बच्चोंवाली	बहून्	बहुत
वधूः	कुलवधू	क्लेशान्	दुःखोंको
पृथाः	कुन्ती	प्राप्ता	भोगती रही ॥१३॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सर्वं कालकृतं मन्ये भवतां च यदप्रियम् ।
सपालो यद्वशे लोको वायोरिव घनावलिः ॥१४॥

सर्वं कालकृतं मन्ये भवतां यत् अप्रियं सपालः यत् वशे लोकः वायोः इव घनावलिः ॥ १४ ॥

भवतां	तुम लोगोंका	वशे	वशमें
यत्	जो	सपालः	लोकपालों सहित
अप्रियं	अप्रिय हुआ है	लोकः	सब लोक हैं,
सर्वं	वह सब (मैं)	इव	जैसे
कालकृतं	कालका किया	वायोः	वायुके वशमें
मन्ये	मानता हूँ,	घनावलिः	मेघोंका समूह होता है ॥१४॥
यत्	जिस कालके		

यत्र धर्मसुतो राजा गदापाणिर्वृकोदरः ।
कृष्णोऽस्त्री गाण्डिवं चापं सुहृत्कृष्णस्ततो विपत् ॥१५॥

यत्र धर्मसुतः राजाः गदापाणिः वृकोदरः कृष्णः अस्त्री गाण्डिवं चापं सुहृत् कृष्णः ततः विपत् ॥ १५ ॥

यत्र	(नहीं तो) जहाँ	गाण्डिवं	गाण्डीव जैसा (अछेद्य)
धर्मसुतः	धर्मपुत्र युधिष्ठिर	चापं	धनुष हो,
राजाः	राजा हों,	कृष्णः	श्रीकृष्ण जैसे (सर्वसमर्थ)
वृकोदरः	भीमसेन (जैसे बलवान)	सुहृत्	मित्र हों,
गदापाणिः	हाथमें गदा लिए (तत्पर) हों,	ततः	वहाँ भी
कृष्णः	अर्जुन जैसे	विपत्	विपत्ति आवे ॥१५॥
अस्त्री	अस्त्रज्ञ हों,		

न ह्यस्य कर्हिचिद्राजन् पुमान् वेद विधित्सितम् ।
यद्विजिज्ञासया युक्ता मुह्यन्ति कवयोऽपि हि ॥१६॥

न हि अस्य कर्हिचित् राजन् पुमान् वेद विधित्सितं यत् विजिज्ञासया युक्ताः मुह्यन्ति कवयः अपि हि ॥ १६ ॥

हि	क्योंकि	हि	क्योंकि
राजन्	राजन् !	यत्	जिसे
अस्य	इन (कालरूप) श्रीकृष्णका	विजिज्ञासया	जाननेकी इच्छा करके
विधित्सितं	विधान	कवयः	बुद्धिमान
क्वाऽपि	कभी भी	युक्ताः	योगी
पुमान्	कोई व्यक्ति	अपि	भी
न	नहीं	मुह्यन्ति	मोहित हो जाते हैं ॥१६॥
वेद	जानता		

तस्मादिदं दैवतन्त्रं व्यवस्य भरतर्षभ ।
तस्यानुविहितोऽनाथा नाथ पाहि प्रजाः प्रभो ॥१७॥

तस्मात् इदं दैवतन्त्रं व्यस्य भरतर्षभ तस्य अनु विहितः अनाथा नाथ पाहि प्रजाः प्रभो ॥ १७ ॥

तस्मात्	इसलिए	नाथ	स्वामी हो (अतः)
इदं	इन सब घटनाओंको	तस्य	उस ईश्वरके
दैवतन्त्रं	ईश्वराधीन	विहितः	विधानको
व्यवस्य	समझकर	अनु	अनुसरण करते हुए
भरतर्षभ	भरतवंशमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर !	अनाथा	अनाथ हुई
		प्रजाः	प्रजाकी
प्रभो	तुम समर्थ हो	पाहि	रक्षा करो ॥१७॥

एष वै भगवान् साक्षादाद्यो नारायणः पुमान् ।
मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरति वृष्णिषु ॥१८॥

एष वै भगवान् साक्षात् आद्यः नारायणः पुमान् मोहयन् मायया लोकं गूढः चरति वृष्णिषु ॥ १८ ॥

वै	निश्चय ही	पुमान्	पुरुष
एष	ये श्रीकृष्ण	भगवान्	भगवान्
साक्षात्	प्रत्यक्ष	नारायणः	नारायण हैं,
आद्यः	आदि	मायया	(अपनी) मायासे

लोकं	लोगोंको	गूढः	छिपे हुए
मोहयन्	मोहित करते हुए	चरति	विचरण करते
वृष्णिषु	यदुवंशमें		हैं ॥१८॥

अस्यानुभावं भगवान् वेद गुह्यतमं शिवः ।
देवर्षिर्नारदः साक्षाद्भगवान् कपिलो नृप ॥१९॥

अस्य अनुभावं भगवान् वेद गुह्यतमं शिवः देवर्षि नारदः साक्षात् भगवान् कपिलः नृप ॥ १९ ॥

नृप	राजन् !	देवर्षिनारदः	देवर्षिनारद (और)
अस्य	इन श्रीकृष्णके	साक्षात्	साक्षात्
गुह्यतमं	अत्यन्त गोपनीय	भगवान्	भगवान
अनुभावं	प्रभावको	कपिलः	कपिल
भगवान्	भगवान	वेद	जानते हैं ॥१९॥
शिवः	शंकरजी,		

यं मन्यसे मातुलेयं प्रियं मित्रं सुहृत्तमम् ।
अकरोः सचिवं दूतं सौहृदादथ सारथिम् ॥२०॥

यं मन्यसे मातुलेयं प्रियं मित्रं सुहृत्तमं अकरोः सचिवं दूतं सौहृदात् अथ सारथिम् ॥ २० ॥

यं	जिनको (तुम लोग)	सचिवं	मन्त्री,
मातुलेयं	अपने मामाका पुत्र,	दूतं	दूत
प्रियं	प्रिय	अथ	तथा
मित्रं	मित्र,	सौहृदात्	प्रेमवश
सुहृत्तमं	श्रेष्ठतम सम्बन्धी	सारथिं	सारथीतक
मन्यसे	मानते हो (और)	अकरोः	बनाया है ॥२०॥

सर्वात्मनः समदृशो ह्यद्वयस्यानहङ्कृतेः ।
तत्कृतं मतिवैषम्यं निरवद्यस्य न क्वचित् ॥२१॥

सर्वात्मनः समदृशः हि अद्वयस्य अनहंकृतेः तत् कृतं मति वैषम्यं निरवद्यस्य न क्वचित् ॥ २१ ॥

हि	क्योंकि	क्वचित्	कभी भी
सर्वात्मनः	सर्वात्मा,	तत्	उस अहंकार
समदृशः	समदर्शी,	कृतं	से उत्पन्न
अद्वयस्य	अद्वितीय,	मति	बुद्धिकी
अनहंकृतेः	अहंकार रहित,	वैषम्यं	विषमता
निरवद्यस्य	निष्पाप श्रीकृष्णमें	न	नहीं होती ॥२१॥

तथाप्येकान्तभक्तेषु पश्य भूपानुकम्पितम् ।
यन्मेऽसूंस्त्यजतः साक्षात्कृष्णो दर्शनमागतः ॥२२॥

तथा अपि एकान्त भक्तेषु पश्य भूप अनुकम्पितं यत् मे असूंः त्यजतः साक्षात् कृष्णः दर्शनं आगतः ॥ २२ ॥

भूप	राजन् !	मे	मुझ
तथा	ऐसा होनेपर	असूंः	प्राण
अपि	भी	त्यजतः	छोड़ते हुएके
एकान्त	अनन्य	साक्षात्	सामने
भक्तेषु	भक्तपर (इनका)	कृष्णः	श्रीकृष्णने
अनुकम्पितं	अनुग्रह	दर्शनं	दर्शन
पश्य	देखो	आगतः	दिया ॥२२॥
यत्	जो		

भक्त्याऽऽवेश्य मनो यस्मिन् वाचा यन्नाम कीर्तयन् ।
त्यजन् कलेवरं योगी मुच्यते कामकर्मभिः ॥२३॥

भक्त्या आवेश्य मनः यस्मिन् वाचा यत् नाम कीर्तयन् त्यजन् कलेवरं योगी मुच्यते काम कर्मभिः ॥ २३ ॥

यस्मिन्	जिनमें	नाम	नाम
भक्त्या	भक्तिसे	कीर्तयन्	कीर्तन करते हुए,
मनः	मनको	कलेवरं	शरीरको
आवेश्य	लगाकर,	त्यजन्	छोड़कर
वाचा	वाणीसे	योगी	योगी
यत्	जिनका		

काम	कामनाओं तथा	मुच्यते	मुक्त हो जाता
कर्मभिः	कर्मोंके (बन्धन) से		है ॥२३॥

स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां
कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम् ।
प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लस-
न्मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः ॥२४॥

स देवदेवः भगवान् प्रतीक्षतां कलेवरं यावत् इदं हिनोमि अहं प्रसन्न हास अरुण लोचन उल्लसत् मुखाम्बुजः ध्यानपथः चतुर्भजः ॥ २४ ॥

स	वे	चतुर्भजः	चतुर्भुज रूपसे
देवदेवः	देवदेव	ध्यानपथः	(केवल) ध्यानमें
भगवान्	भगवान्,		आनेवाले,
प्रसन्न	प्रसन्न	इदं	इस
हास	हास्य (और)	कलेवरं	शरीरको
अरुण	अरुण	यावत्	जबतक
लोचन	लोचनोंसे	अहं	मैं
उल्लसत	उल्लसित	हिनोमि	छोड़ू (तबतक)
मुखाम्बुजः	कमल मुखवाले,	प्रतीक्षतां	प्रतीक्षा करें ॥२४॥

सूत उवाच–

युधिष्ठिरस्तदाकर्ण्य शयानं शरपञ्जरे ।
अपृच्छद्विविधान्धर्मानृषीणां चानुशृण्वताम् ॥२५॥

युधिष्ठिरः तत् आकर्ण्य शयानं शर पञ्जरे अपृच्छत् विविधान् धर्मान् ऋषीणां च अनुशृण्वताम् ॥ २५ ॥

युधिष्ठिरः	राजा युधिष्ठिरने	च	भी
तत्	वह (भीष्मकी बात)	अनुशृण्वतां	सुनते हुए
आकर्ण्य	सुनकर	शर	बाणोंकी
ऋषीणां	ऋषियोंके	पञ्जरे	शय्यापर

शयानं	सोये हुए (भीष्म पितामह) से	धर्मान्	धर्मोंको
विविधान्	विविध	अपृच्छत्	पूछा ॥२५॥

पुरुषस्वभावविहितान् यथावर्णं यथाश्रमम् ।
वैराग्यरागोपाधिभ्यामाम्नातोभयलक्षणान् ॥२६॥

पुरुष स्वभाव विहितान् यथावर्ण यथाश्रमं वैराग्य राग उपधिभ्यां आम्नातः उभय लक्षणान् ॥ २६ ॥

यथावर्ण	(तब भीष्मजीने) वर्णके अनुसार,	राग	राग (आसक्ति)
		उपाधिभ्यां	की उपाधियोंसे
यथाश्रमं	आश्रमकें अनुसार,	उभय	दोनों (प्रवृत्ति एवं निवृत्ति)
पुरुष	पुरुषोंके		
स्वभाव	स्वभावके अनुसार	लक्षणान्	लक्षणवाले
विहितान्	विहित	आम्नातः	शास्त्र वर्णित ॥२६॥
वैराग्य	वैराग्य		

दानधर्मान् राजधर्मान् मोक्षधर्मान् विभागशः ।
स्त्रीधर्मान् भगवद्धर्मान् समासव्यासयोगतः ॥२७॥

दानधर्मान् राजधर्मान् मोक्षधर्मान् विभागशः स्त्रीधर्मान् भगवत् धर्मान् समास व्यास योगतः ॥ २७ ॥

दानधर्मान्	दान करनेके धर्म,	विभागशः	पृथक-पृथक
राजधर्मान्	राजाओंके धर्म,	समास	संक्षिप्त एवं
मोक्षधर्मान्	मोक्षदायी धर्म,	व्यास	विस्तार
स्त्रीधर्मान्	स्त्रियोंके धर्म,	योगतः	पूर्वक वर्णन किया ॥२७॥
भगवत्	भगवानको पानेके		
धर्मान्	धर्मोंको		

धर्मार्थकाममोक्षांश्च सहोपायान् यथा मुने ।
नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामास तत्त्ववित् ॥२८॥

धर्म अर्थ काम मोक्षांः च सहोपायान् यथा मुने नाना आख्यान इतिहासेषु वर्णयामास तत्त्ववित् ॥ २८ ॥

मुने	शौनकजी !	सहोपायान्	उपायों (साधनों)
तत्त्ववित्	तत्त्वज्ञानी		के साथ
	(भीष्मजी) ने	इतिहासेषु	इतिहासोंमें
धर्म	धर्म,	यथा	जैसा
अर्थ	अर्थ,	नाना	अनेकों
काम	काम	आख्यान	कथाएँ हैं वैसा
च	और	वर्णयामास	वर्णन किया ॥२८॥
मोक्षान्	मोक्षोंका		

धर्मं प्रवदतस्तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः ।
यो योगिनश्छन्दमृत्योर्वाञ्छितस्तूत्तरायणः ॥२९॥

धर्मं प्रवदतः तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः यः योगिनः छन्द मृत्योः वाञ्छितः तु उत्तरायणः ॥ २९ ॥

तस्य	उन (भीष्म) के	छन्द	इच्छानुसार*
धर्मं	धर्मका	मृत्योः	मृत्युका
प्रवदतः	प्रवचन करते	स	वह
यः	जो	उत्तरायणः	उत्तरायणका
योगिनः	योगियोंको	कालः	समय■
तु	भी	प्रत्युपस्थितः	आगया ॥२९॥
वाञ्छितः	अभीष्ट है (ऐसा)		

तदोपसंहृत्य गिरः सहस्रणी-
र्विमुक्तसङ्गं मन आदिपूरुषे ।
कृष्णे लसत्पीतपटे चतुर्भुजे
पुरःस्थितेऽमीलितदृग्व्यधारयत् ॥३०॥

---

* गीतामें और भागवतमें भी अमुक कालमें मृत्यु, इच्छानुसार मरनेमें समर्थके लिए ही है।

■ भागवतमें आगे 'देशे च कालेच मनो न सञ्जयेत्' कहेंगे।

तदा उपसंहृत्य गिरः ससन्नणीः विमुक्त संगं मनः आदिपूरुषे, कृष्णे तत् पीतपटे चतुर्भुजे पुरःस्थिते अमीलित दृक् व्यधारयत् ॥ ३० ॥

...ा	तब
...न्नणीः	सहस्रों रथियोंके नेता (भीष्मने)
...रः	वाणीका
...संहृत्य	उपसंहार करके (मौन होकर)
...मुक्त संगं	आसक्ति रहित
...नः	मनको
...ीतपटे	पीताम्बरसे
लसत्	सुशोभित,
चतुर्भुजे	चतुर्भुज,
पुरःस्थिते	सामने खड़े
आदिपूरुषे	आदि पुरुष
कृष्णे	श्रीकृष्णमें
अमीलित दृक्	खुले नेत्रोंसे (देखते हुए)
व्यधारयत्	लगा दिया ॥३०॥

विशुद्धया धारणया हताशुभ-
स्तदीक्षयैवाशु गतायुधव्यथः ।
निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रम-
स्तुष्टाव जन्यं विसृजञ्जनार्दनम् ॥३१॥

विशुद्धया धारणया हताः अशुभः तत् ईक्षया एव आशु गतः आयुध व्यथः निवृत्तः सर्व इन्द्रिय वृत्ति विभ्रमः तुष्टावजन्यं विसृजत् जनार्दनम् ॥३१॥

...विशुद्धया	(भगवानकी) अत्यन्त शुद्ध
...धारणया	धारणासे
...शुभः	(उनके) पाप
...हताः	नष्ट होगये थे,
...तत्	उन श्रीकृष्णकी
...ईक्षया	दृष्टि पड़ते
...एव	ही
...आयुध	शस्त्रोंके चोटकी
...व्यथः	पीड़ा
आशु	शीघ्र ही
गतः	दूर होगयी थी,
सर्व	सब
इन्द्रिय	इन्द्रियोंकी
वृत्ति	वृत्तियोंकी
विभ्रमः	चञ्चलता
निवृत्तः	मिट चुकी थी, (वे)
जनार्दनं	श्रीकृष्णकी
तुष्टावजन्यं	स्तुति करने
विसृजत्	लगे ॥३१॥

भीष्म उवाच–

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा
भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि ।
स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं
प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥३२॥

इति मतिः उपकल्पिताः वितृष्णाः भगवति सात्वतपुंगवे विभूम्नि स्वसुखं उपगते क्वचित् विहर्तुं प्रकृतिं उपेयुषि यत् भव प्रवाहः ॥३२॥

इति	अब (मैं)	क्वचित्	(जो) कभी
वितृष्णाः	कामनाहीन	विहर्तुं	विहार (लीला) करनेके लिए
उपकल्पिताः	बनायी गयी		
मतिः	(अपनी) बुद्धिको	प्रकृतिं	प्रकृतिको
सात्वतपुंगवे	यदुवंशशिरोमणि	उपेयुषि	स्वीकार करते हैं
विभूम्नि	सर्वव्यापक	यत्	जिससे
स्वसुखं	अपने आनन्दमें	भव	संसारका
उपगते	स्थित	प्रवाहः	प्रवाह चलता है ॥३२॥
भगवति	भगवानमें (लगाताहूँ)		

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं
रविकरगौरवराम्बरं दधाने ।
वपुरलककुलावृताननाब्जं
विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥३३॥

त्रिभुवन कमनं तमालवर्णं रविकर गौर वर अम्बरं दधाने वपुः अलक्ककुल आवृतः आननाम्बजं विजय सखे रतिः अस्तु मे अनवद्या ॥३३॥

त्रिभुवन	त्रिलोकीमें	रविकर	सूर्यकी किरणोंके समान
कमनं	सुन्दर,		
तमालवर्णं	तमाल वृक्षके समान वर्णवाला	गौर	उज्ज्वल,
		वर	श्रेष्ठ
वपुः	शरीर,	अम्बरं	पीताम्बर

वधाने	पहिने हुए,	सखे	सखामें
अलककुल	अलकोंके समूहसे	मे	मेरी
आवृतः	घिरे	अनवद्या	निष्पाप (निष्काम)
आननाब्जं	कमल मुखवाले,	रतिः	प्रीति
विजय	अर्जुनके	अस्तु	हो ॥३३॥

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्-
कचलुलितश्रमवार्यलङ्कृतास्ये ।
मम निशितशरैर्विभिद्यमान-
त्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥३४॥

युधि तुरगरजः विधूम्र विष्वक् कचः लुलितः श्रमवारि अलंकृतः आस्ये मम निशित शरैः विभिद्यमानः त्वचि विलसत् कवचे अस्तु कृष्णः आत्मा ॥ ३४ ॥

युधिः	युद्धमें	मम	मेरे
तुरगरजः	घोड़ोंके खुरोंसे उड़ी धूलिसे	निशित शरैः	तीक्ष्ण वाणोंके लगनेसे
विष्वक्	चारों ओरसे	विभिद्यमानः	छिदते हुए
विधूम्र	धूसर हुए	त्वचि	त्वचावाले,
कचः	बालोंसे	कवचे	कवचसे
लुलितः	घिरा हुआ (और)	विलसत्	शोभायमान
श्रमवारि	पसीनेसे	कृष्णः	श्रीकृष्णमें
अलंकृतः	सुशोभित	आत्मा	(मेरा) चित्त
आस्ये	मुखवाले,	अस्तु	लगा रहे ॥३४॥

सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये
निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य ।
स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा
हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ॥३५॥

सपदि सखि वचः निशम्य मध्ये निज परयोः बलयोः रथं निवेश्य स्थितवति पर सैनिक आयु अक्ष्णाः हृतवति पार्थ सखे रतिः मम अस्तु ॥३५॥

सखि	सखा (अर्जुन) के	स्थितवति	ठहरे हुए
वचः	वचनको	पर	शत्रुके
निशम्य	सुनकर	सैनिक	सैनिकोंकी
सपदि	झटपट	आयुः	आयुको
निज	अपनी (और)	अक्ष्णाः	अपने नेत्रोंसे
परयोः	शत्रुओंकी	हृतवति	हरण करते हुए
बलयोः	सेनाके	पार्थसखे	अर्जुनके सखामें
मध्ये	बीचमें	मम	मेरी
रथं	रथको	रतिः	प्रीति
निवेश्य	प्रवेश कराके (एवं वहाँ)	अस्तु	हो ॥३५॥

व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य
स्वजनवधाद्विमुखस्य दोष बुद्ध्या ।
कुमतिमहरदात्मविद्यया यः
श्चरणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु ॥३६॥

व्यवहित पृतना मुखं नीरीक्ष्य स्वजन वधात् विमुखस्य दोषबुध्या कुमतिं अहरत् आत्मविद्यया यः चरणरतिः परमस्य तस्य मे अस्तु ॥३६॥

पृतना	सेनाके	कुमतिं	दुर्बुद्धिको
मुखं	अगले भागमें	आत्मविद्यया	अध्यात्म ज्ञानकी शिक्षा द्वारा
व्यवहित	व्यवस्थित खड़े	यः	जिन्होंने
स्वजन	सम्बन्धियोंको	अहरत्	हरण कर लिया,
निरीक्ष्य	देखकर	तस्य	उन
दोषबुध्या	इसमें दोष है ऐसी समझसे	परमस्य	परमपुरुषके
वधात्	उनको मारनेसे	चरणरतिः	चरणोंमें प्रीति
विमुखस्य	विमुख हुए (अर्जुन) की	मे	मेरी
		अस्तु	हो ॥३६॥

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञा-
मृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चदद्गु-
र्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ॥३७॥

स्व निगमं अपहाय मत् प्रतिज्ञां ऋतं अधिकर्तुं अवप्लुतः रथस्थः धृत रथचरणः अभ्यात् चलत् गुः हरि इव हन्तुं इभं गतः उत्तरीयः ॥ ३७ ॥

स्व	अपनी	इभं	हाथीको
निगमं	प्रतिज्ञाको	हन्तुं	मारनेके लिए
अपहाय	छोड़कर	हरि	सिंहके
मत्	मेरी	इव	समान
प्रतिज्ञां	प्रतिज्ञाको	अभ्यात्	मेरी ओर दौड़े, (जिससे)
ऋतं	सच्ची		
अधिकर्तुं	कर देनेके लिए	गुः	पृथ्वी
रथस्थः	रथपरसे	चलत्	काँपने लगी (और)
अवप्लुतः	नीचे कूदकर,	उत्तरीयः	ऊपरी पटुका
रथचरणः	रथ चक्र	गतः	गिर गया था ॥३७॥
धृत	लिए हुए		

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः
क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे ।
प्रसभमभिससार मद्वधार्थं
स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः ॥३८॥

शित विशिख हतः विशीर्ण दंशः क्षतज परिप्लुतः आततायिनः मे प्रसभं अभिससार मत् वधार्थं स भवतु मे भगवान् गतिः मुकुन्दः ॥३८॥

शित	तीक्ष्ण	विशीर्ण	कट गया था,
विशिख	बाणोंसे	क्षतज	(वे) घावोंसे
हतः	मारे जानेके कारण	परिप्लुतः	भरे हुए
दंशः	(जिनका) कवच	मे	मुझ

आततायिनः	आततायीकी ओर	भगवान्	भगवान
मत्	मेरे	मुकुन्दः	मुकुन्द
वधार्थं	वधके लिए	मे	मेरी
प्रसभं	वेगपूर्वक	गतिः	गति
अभिससार	दौड़ते चले,	भवतु	होवें ॥३८॥
स	वे		

विजयरथकुटुम्ब आततोत्रे
धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये ।
भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षो-
र्यमिह निरीक्ष्य हता गताः सरूपम् ॥३९॥

विजय रथ कुटुम्ब आत्त तोत्रे धृत हय रश्मिनि तत् श्रिये ईक्षणीये भगवति रतिः अस्तु मे मुमूर्षोः यं इह निरीक्ष्य हताः गताः सरूपम् ॥३९॥

विजय	अर्जुनके	यं	जिसे
रथ	रथके	श्रिये	शोभाको
कुटुम्ब	परिकर (सारथी) बने,	निरीक्ष्य	देखकर
		हताः	मारे गये लोग
तोत्रे	चाबुक	सरूपं	सारूप्य मोक्षको
आत्त	पकड़े,	गताः	प्राप्त हुए
हयरश्मिनि	घोड़ोंकी लगाम	भगवति	(उन) भगवानमें
धृत	लिए हुए,	मे	मुझ
इह	यहाँ युद्ध भूमिमें	मुमूर्षोः	मरनेवालेकी
तत्	उस	रति	प्रीति
ईक्षणीये	देखने ही योग्य	अस्तु	हो ॥३९॥

ललितगतिविलासवल्गुहास-
प्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः ।
कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः
प्रकृतिमगन् किल यस्य गोपवध्वः ॥४०॥

ललित गति विलास वल्गु हास प्रणय निरीक्षण कल्पितः उरु मानाः कृतं अनुकृत वत्य उन्मदान्धाः प्रकृति अगन् किल यस्य गोपवध्वः ॥ ४० ॥

ललित	सुन्दर	कृतं	श्रीकृष्ण लीलाओंका
गति	चाल,	अनुकृतवत्य	अनुकरणकारिणी
विलास	विलास,	उन्मदान्धाः	प्रेमोन्मत्ता
वल्गु	मनोहर	गोपवध्वः	गोप वधुगण
हास	हँसी,	किल	अहो
प्रणय	युक्त	यस्य	जिन श्रीकृष्णके
निरीक्षण	दृष्टिसे,	प्रकृतिं	स्वभावको
उरु	बहुत	अगन्	प्राप्त हो (तन्मय हो)
मानाः	सम्मान		गयीं ॥४०॥
कल्पितः	प्राप्ता,		

मुनिगणनृपवर्यसंकुलेऽन्तः-

सदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम् ।

अर्हणमुपपेद ईक्षणोयो

मम दृशिगोचर एष आविरात्मा ॥४१॥

मुनिगण नृपवर्य संकुले अन्तः सदसि युधिष्ठिर राजसूयः एषां अर्हणं उपपेद ईक्षणीयः मम दृशिगोचरः एष आविः आत्मा ॥ ४१ ॥

युधिष्ठिर	राजा युधिष्ठिरके	एषां	इन (श्रीकृष्ण) का
राजसूयः	राजसूय यज्ञमें	अर्हणं	(प्रथम) पूजन
मुनिगण	मुनियों (तथा)	उपपेद	सम्पन्न हुआ
नृपवर्य	श्रेष्ठ राजाओंसे	एष	यह वही
संकुले	भरी हुई	आत्मा	परमात्मा
सदसि	सभाके	मम	मेरो
अन्तः	भीतर	दृशिगोचरः	आँखोंके सामने
ईक्षणीयः	दर्शनीय	आविः	प्रगट हैं ॥४१॥

तमिममहमजं शरीरभाजां
हृदि हृदि धिष्ठितमात्मकल्पितानाम् ।
प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं
समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ॥४२॥

तं इमं अहं अजं शरीरभाजां हृदि हृदि धिष्ठितं आत्म कल्पितानां प्रतिदृशं इव न एकधा अर्कं एकं सम अधिगतः अस्मि विधूतः भेद मोहः ॥ ४ ॥

एकं	एक ही	तं	उन
अर्कं	सूर्यके	इमं	(सम्मुख खड़े) इन
प्रतिदृशं	प्रत्येककी दृष्टिमें (अधिदेवता रूपसे)	अजं	अजन्माको
		अहं	मैं
न एकधा	पृथक-पृथक लगने	भेद	भेदका
इव	के समान	मोहः	भ्रम
आत्म	अपने द्वारा ही	विधूतः	छोड़कर
कल्पितानां	कल्पित किये गये	सम	भली प्रकार
शरीरभाजां	सब शरीरधारियोंमें	अधिगतः	प्राप्त होगया
हृदि हृदि	प्रत्येक के हृदयमें		हूँ ॥४२॥
धिष्ठितं	(अन्तर्यामी रूपसे) अधिष्ठित (विराजमान)		

सूत उवाच-

कृष्ण एवं भगवति मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः ।
आत्मन्यात्मानमावेश्य सोऽन्तःश्वास उपारमत् ॥४३॥

कृष्णं एवं भगवति मनः वाक् दृष्टि वृत्तिभिः आत्मनि आत्मानं आवेश्य स अन्तः श्वास उपारमत् ॥ ४३ ॥

एवं	इस प्रकार	वाक्	वाणी
मनः	मन	दृष्टि	दृष्टि (और)

वृत्तिभिः	वृत्तियोंसे	स	वे (भीष्मजी)
भगवति	भगवान	अन्तःश्वास	प्राण भीतर ही रहे
कृष्णं	श्रीकृष्णमें		(कहीं गये नहीं)
आत्मनि	अपने आपसे	उपारमत्	उपराम होगये
आत्मानं	चित्तको		(निर्वाण प्राप्त
आवेश्य	आविष्ट करके		हुए ॥४३॥

सम्पद्यमानमाज्ञाय भीष्मं ब्रह्मणि निष्कले ।
सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीं वयांसीव दिनात्यये ॥४४॥

सम्पद्यमानं आज्ञाय भीष्मं ब्रह्मणि निष्कले सर्वे बभूवुः ते तूष्णीं वयांसि इव दिन अत्यये ॥ ४४ ॥

भीष्मं	भीष्मको	अत्यये	बीत जानेपर
निष्कले	निष्कल	वयांसि इव	पक्षियोंके समान
ब्रह्मणि	ब्रह्ममें	ते	वे
संपद्यमानं	भली प्रकार लीन हुए	सर्वे	सब लोग
आज्ञाय	जानकर,	तूष्णीं	मौन
दिन	दिनके	बभुवुः	होगये ॥४४॥

तत्र दुन्दुभयो नेदुर्देवमानववादिताः ।
शशंसुः साधवो राज्ञां खात्पेतुः पुष्पवृष्टयः ॥४५॥

तत्र दुन्दुभयः नेदुः देव मानव वादिताः शशंसुः साधवः राज्ञां खात् पेतुः पुष्प वृष्टयः ॥ ४५ ॥

तत्र	वहाँ	राज्ञा	राजा
देव	देवताओं (और)	शशंसुः	(उनकी) प्रशंसा
मानव	मनुष्यों द्वारा		करने लगे ।
वादिताः	बजाये	खात्	आकाशसे
दुन्दभयः	नगाड़े	पुष्प	फूलोंकी
नेदुः	बजने लगे ।	वृष्टयः	वर्षा
साधवः	साधु स्वभाव	पेतुः	होने लगी ॥४५॥

तस्य निर्हरणादीनि सम्परेतस्य भार्गव ।
युधिष्ठिरः कारयित्वा मुहूर्तं दुःखितोऽभवत् ॥४६॥

तस्य निर्हरण आदीनि सम्परेतस्य भार्गव युधिष्ठिरः कारयित्वा मुहूर्तं दुःखितः अभवत् ॥ ४६ ॥

भार्गव	शौनकजी !	कारयित्वा	करवाकर
तस्य	उन भीष्मजीके	युधिष्ठिरः	युधिष्ठिर
सम्परेतस्य	मृत शरीरकी	मुहूर्तं	एक मुहूर्तके लिए
निर्हरण	दाह	दुःखितः	दुःखी
आदीनि	आदि अन्त्येष्टि क्रियाएँ	अभवत्	होगये ॥४६॥

तुष्टुवुर्मुनयो हृष्टाः कृष्णं तद्गुह्यनामभिः ।
ततस्ते कृष्णहृदयाः स्वाश्रमान् प्रययुः पुनः ॥४७॥

तुष्टुवुः मुनयः हृष्टाः कृष्णं तत् गुह्य नामभिः ततः ते कृष्णहृदयाः स्व आश्रमान् प्रययुः पुनः ॥ ४७ ॥

हृष्टाः	हर्षित होकर	ततः	तदन्तर
मुनयः	मुनियोंने	ते	वे (मुनिगण)
कृष्णं	श्रीकृष्णकी	पुनः	फिर
तत्	उनके	कृष्णहृदयाः	कृष्णमय हृदय सहित
गुह्य	गुप्त		
नामभिः	नामोंके द्वारा	स्व	अपने
तुष्टुवुः	स्तुति करके उनको प्रसन्न किया ।	आश्रमान्	आश्रमोंको
		प्रययुः	चले गये ॥४७॥

ततो युधिष्ठिरो गत्वा सहकृष्णो गजाह्वयम् ।
पितरं सान्त्वयामास गान्धारीं च तपस्विनीम् ॥४८॥

ततः युधिष्ठिरः गत्वा सहकृष्णः गजाह्वयं पितरं सान्त्वयामास गान्धारीं च तपस्विनीम् ॥ ४८ ॥

ततः	तदनन्तर	युधिष्ठिरः	राजा युधिष्ठिरने
सहकृष्णः	श्रीकृष्णके साथ	गजाह्वयं	हस्तिनापुर

गत्वा	जाकर	तपस्विनीं	तपस्विनी
पितरं	ताऊ धृतराष्ट्र	गान्धारीं	गान्धारीको
च	और	सान्त्वयामास	सान्त्वना दी ॥४८॥

पित्रा चानुमतो राजा वासुदेवानुमोदितः ।
चकार राज्यं धर्मेण पितृपैतामहं विभुः ॥४९॥

पित्रा च अनुमतः राजा वासुदेव अनुमोदितः चकार राज्यं धर्मेण पितृ पैतामहं विभुः ॥ ४९ ॥

च	और	विभुः	समर्थ
पित्रा	धृतराष्ट्रकी	राजा	राजा युधिष्ठिरने
अनुमतः	अनुमतिसे	पितृ पैतामहं	पिता-पितामहका
वासुदेव	श्रीकृष्णके द्वारा	राज्यं	राज्य
अनुमोदितः	अनुमोदन किये जानेपर	धर्मेण	धर्मपूर्वक
		चकार	किया ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे नवमोऽध्यायः

अथ दशमोऽध्यायः

शौनक उवाच-

हत्वा स्वरिक्थस्पृध आततायिनो
युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ।
सहानुजैः प्रत्यवरुद्धभोजनः
कथं प्रवृत्तः किमकारषीत्ततः ॥१॥

हत्वा स्व रिक्थ स्पृधः आततायिनः युधिष्ठिरः धर्मभृतां वरिष्ठः सह अनुजै प्रत्यवरुद्धः भोजनः कथं प्रवृत्तः कि अकारषीत् ततः ॥ १ ॥

स्व	अपने	वरिष्ठः	श्रेष्ठ
रिक्थ	पैतृक स्वत्वकी	युधिष्ठिरः	युधिष्ठिरजीने
स्पृधः	स्पृहा करनेवाले	अनुजैः सह	भाइयोंके साथ
आततायिनः	आततायियोंको	कथं	कैसे
हत्वा	मारकर	प्रवृत्तः	(शासनमें) प्रवृत्त हुए (तथा)
भोजनः	भोगोंसे	ततः	तब (शासक होकर)
प्रत्यवरुद्धः	प्रत्यवरोध (संयम) करनेवाले	कि	क्या
धर्मभृतां	धर्मात्माओंमें	अकारषीत्	किया ॥१॥

सूत उवाच-

वंशं कुरोर्वंशदवाग्निनिर्हृतं
संरोहयित्वा भवभावनो हरिः ।
निवेशयित्वा निजराज्य ईश्वरो
युधिष्ठिरं प्रीतमना बभूव ह ॥२॥

वंशं कुरोर्वंश दवाग्नि निर्हृतं संरोहयित्वा भवभावनः हरिः निवेशयित्वा निजराज्य ईश्वरः युधिष्ठिरं प्रीतमनाः बभूव ह ॥ २ ॥

कुरोर्वंश	कुरुवंशकी (कलह रूपी)	ईश्वरः	ईश्वर
दवाग्नि	दावाग्निमें	हरिः	श्रीकृष्ण
निर्हृतं	भस्मप्राय	युधिष्ठिरं	युधिष्ठिरको
वंशं	वंशको	निजराज्य	अपने राज्यपर
संरोहयित्वा	पुनः आरोपित करके	निवेशयित्वा	स्थापित करके
भवभावनः	संसारका पालन करनेवाले	ह	पूर्ण
		प्रीतमनाः	प्रसन्न
		बभूव	हुए ॥२॥

निशम्य भीष्मोक्तमथाच्युतोक्तं
प्रवृत्तविज्ञानविधूतविभ्रमः ।
शशास गामिन्द्र इवाजिताश्रयः
परिध्युपान्तामनुजानुवर्तिनः ॥३॥

निशम्य भीष्मोक्तं अथ अच्युतोक्तं प्रवृत्तः विज्ञानः विधूतः विभ्रमः शशास गां इन्द्र इव अजित आश्रयः परिधि उपान्तां अनुजाः अनुवर्तिनः ॥३॥

भीष्मोक्तं	भीष्मके कहे हुए	अनुवर्तिनः	आज्ञापालक थे ही
अथ	और	परिधि	समुद्रतक
अच्युतोक्तं	श्रीकृष्णके कहे हुए वचनोंको	उपान्तां	सीमावाली
निशम्य	सुनकर	गां	पृथ्वीका
विज्ञानः	ज्ञान	अजित	भगवानके
प्रवृत्तः	होगया	आश्रयः	आश्रयमें रहते
विभ्रमः	भ्रम	इन्द्र	इन्द्र
विधूतः	सर्वथा मिट गया	इव	की भाँति
अनुजाः	सब छोटे भाई	शशास	शासन करने लगे ॥३॥

कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही ।
सिषिचुः स्म व्रजान् गावः पयसोधस्वतीर्मुदा ॥४॥

कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकाम दुधाः मही सिषिचुः स्म व्रजान् गावः पयसा ओधस्वतीः मुदा ॥ ४ ॥

पर्जन्यः	मेघ	ओधस्वतीः	बड़े-बड़े थनोंवाली
कामं	आवश्यकतानुसार पर्याप्त	गावः	गायें
		मुदा	प्रसन्नतापूर्वक
ववर्ष	वर्षा करते थे	व्रजान्	गोशालाओंको
महीं	पृथ्वी	पयसा	दूधसे
सर्वकाम	सब अभीष्ट वस्तुयें	सिषिचुः स्म	सींचती रहती थीं
दुधाः	देनेवाली होगयीं		

नद्यः समुद्रा गिरयः सवनस्पतिवीरुधः ।
फलन्त्योषधयः सर्वाः काममन्वृतु तस्य वै ॥५॥

नद्यः समुद्राः गिरयः स वनस्पतिः वीरुधः फलन्ति ओषधयः सर्वाः कामं अनुऋतु तस्य वै ॥ ५ ॥

तस्य	(युधिष्ठिरके राजा होनेपर)	वीरुधः	वृक्ष
		ओषधयः	अन्नादि*
वै	निश्चित रूपसे	सर्वाः	सब
नद्यः	नदियाँ	अनुऋतु	ऋतुओंके अनुसार
समुद्राः	समुद्र	कामं	पर्याप्त
गिरयः	पर्वत	फलन्ति	फलती थीं ॥५॥
स वनस्पतिः	वनस्पतियोंके साथ		

नाधयो व्याधयः क्लेशा दैवभूतात्महेतवः ।
अजातशत्रावभवन् जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित् ॥६॥

न आधयः व्याधयः क्लेशाः दैव भूत आत्महेतवः अजातशत्राः अभवन् जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित् ॥ ६ ॥

अजातशत्राः	अजातशत्रु युधिष्ठिरके	जन्तूनां	प्राणियोंको
		कर्हिचित्	कभी भी
राज्ञि	राजा होनेपर	आधयः	चिन्तायें

---

* 'ओषधयः फलपाकान्ताः' एक बार फलकर जो सूख जाती हैं उन्हें ओषधि कहते हैं। सब अन्न ओषधि हैं।

व्याधयः	रोग	हेतवः	कारणसे होनेवाले
दैव	देवताओं	क्लेशाः	क्लेश
भूत	प्राणियों तथा	न	नहीं
आत्म	मनके	अभवन्	हुए ॥६॥

उषित्वा हास्तिनपुरे मासान् कतिपयान् हरिः ।
सुहृदां च विशोकाय स्वसुश्च प्रियकाम्यया ॥७॥

उषित्वा हास्तिनपुरे मासान् कतिपयान् हरिः सुहृदां च विशोकाय स्वसुः च प्रिय काम्यया ॥ ७ ॥

हरिः	श्रीकृष्ण	प्रियकाम्यया	प्रसन्न करनेकी इच्छासे
च	भी	हास्तिनपुरे	हस्तिनापुरमें
सुहृदां	प्रिय सम्बन्धियोंको	कतिपयान	कुछ
विशोकाय	शोक रहित करनेके लिए	मासान्	महीने
च	और	उषित्वा	रहकर ॥७॥
स्वसुः	बहिन सुभद्राको		

आमन्त्र्य चाभ्यनुज्ञातः परिष्वज्याभिवाद्य तम् ।
आरुरोह रथं कैश्चित्परिष्वक्तोऽभिवादितः ॥८॥

आमन्त्र्य च अभ्यनुज्ञातः परिष्वज्य अभिवाद्य तं आरुरोह रथं कैश्चित् परिष्वक्तः अभिवादितः ॥ ८ ॥

तं	उन (राजा युधिष्ठिर) से	अभिवाद्य	अभिवादन करके
आमन्त्र्य	आज्ञा माँगकर	कैश्चित्	कुछ लोगों द्वारा
अभ्यनुज्ञातः	प्रसन्नतापूर्वक अनुमति लेकर	परिष्वक्तः	आलिंगित एवं
परिष्वज्य	अंकमाल देकर	अभिवादितः	अभिवादित होकर
		रथं	रथपर
		आरुरोह	आरोहण किया ॥८॥

सुभद्रा द्रौपदी कुन्ती विराटतनया तथा ।
गान्धारी धृतराष्ट्रश्च युयुत्सुर्गौतमो यमौ ॥९॥

सुभद्राः द्रौपदीः कुन्ती विराटतनयाः तथा गान्धारी धृतराष्ट्र च युयुत्सुः गौतमः यमौ ॥ ९ ॥

सुभद्राः	सुभद्रा
द्रौपदीः	द्रौपदी
कुन्तीः	कुन्ती
तथा	तथा
विराटतनयाः	उत्तरा
गान्धारी	गान्धारी
धृतराष्ट्रः	धृतराष्ट्र
च	और
युयुत्सुः	युयुत्सु
गौतमः	कृपाचार्य
यमौ	नकुल-सहदेव ॥९॥

बृकोदरश्च धौम्यश्च स्त्रियो मत्स्यसुतादयः ।
न सेहिरे विमुह्यन्तो विरहं शार्ङ्गधन्वनः ॥१०॥

वृकोदरः च धौम्यः च स्त्रियः मत्स्यसुताः आदयः न सेहिरे विमुह्यन्तः विरहं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १० ॥

च	एवं
वृकोदरः	भीमसेन
च	और
धौम्यः	धौम्य
मत्स्यसुताः	सत्यवती
आदयः	आदि
स्त्रियः	स्त्रियां
शार्ङ्गधन्वनः	श्रीकृष्णके
विरहं	वियोगको
न	नहीं
सेहिरे	सह सकीं
विमुह्यन्तः	मूर्छित होगयीं ॥१०॥

सत्सङ्गान्मुक्तदुःसङ्गो हातुं नोत्सहते बुधः ।
कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ॥११॥

सत्सङ्गात् मुक्तः दुःसङ्गः हातुं न उत्सहते बुधः कीर्त्यमानं यशः यस्य सकृत् आकर्ण्य रोचनम् ॥ ११ ॥

सत्सङ्गात्	सत्संगसे
दुःसंगः	कुसंग
मुक्तः	जिसका छूट गया है
बुधः	वह बुद्धिमान
यस्य	जिनके
रोचनं	रुचिकर
कीर्त्यमानं	वर्णन होते
यशः	सुयशको
सकृत्	एक बार भी
आकर्ण्य	सुनकर
हातुं	उसे छोड़नेका
उत्सहते	उत्साह
न	नहीं करता ॥११॥

तस्मिन्न्यस्तधियः पार्थाः सहेरन् विरहं कथम् ।
दर्शनस्पर्शसंलापशयनासनभोजनैः ॥१२॥

तस्मिन् न्यस्त धियः पार्थाः सहेरन् विरहं कथं दर्शनः स्पर्शः संलाप शयनः आसनः भोजनैः ॥ १२ ॥

दर्शनः	दर्शन	न्यस्त	लगी हुई
स्पर्शः	स्पर्श	धियः	बुद्धिवाले
संलापः	बातचीत	पार्थाः	पाण्डव
शयनः	एक साथ सोने	विरहं	उनके वियोगको
आसनः	साथ बैठने	कथं	कैसे
भोजनैः	साथ भोजनके द्वारा	सहेरन्	सहन कर
तस्मिन्	उन श्रीकृष्णमें		पाते ॥१२॥

सर्वे तेऽनिमिषैरक्षैस्तमनुद्रुतचेतसः ।
वीक्षन्तः स्नेहसम्बद्धा विचेलुस्तत्र तत्र ह ॥१३॥

सर्वे ते अनिमिषैः अक्षैः तं अनुद्रुत चेतसः वीक्षन्तः स्नेह सम्बद्धाः विचेलुः तत्र तत्र ह ॥ १३ ॥

ते	वे	वीक्षन्तः	देखते हुए
सर्वे	सब	स्नेह	प्रेमसे
अनुद्रुत	द्रवित	सम्बद्धाः	बँधे हुए
चेतसः	चित्तवाले	ह	ही
अनिमिषैः	बिना पलक झपकाये	तत्र तत्र	जहाँ थे वहाँसे
अक्षैः	एकटक आँखोंसे	विचेलुः	(रथकी ओर)
तं	उन (श्रीकृष्ण) को		दौड़ने लगे ॥१३॥

न्यरुन्धन्नुद्गलद्बाष्पमौत्कण्ठ्याद्देवकीसुते ।
निर्यात्यगारान्नोऽभद्रमिति स्याद्बान्धवस्त्रियः ॥१४॥

न्यरुन्धन् उद्गलत् वाष्पं औत्कण्ठ्यात् देवकीसुते निर्याति अगारात् नो अभद्रं इति स्यात् वान्धवः स्त्रियः ॥ १४ ॥

देवकीसुते	श्रीकृष्णके	निर्याति	निकलते समय
अगारात्	घरसे	वान्धवः	सम्बन्धियोंकी

स्त्रियः	स्त्रियोंने
अभद्रं	अशुभ
नो	न
स्यात्	होवे
इति	यह समझकर
औत्कण्ठ्यात्	उत्कण्ठाके मारे
उद्गलत्	निकलनेको आये
वाष्पं	आसुओंको
न्यरुन्धन्	बलात् रोका ॥१४॥

मृदङ्गशङ्खभेर्यश्च वीणापणवगोमुखाः ।
धुन्धुर्यानकघण्टाद्या नेदुर्दुन्दुभयस्तथा ॥१५॥

मृदङ्गः शङ्खः भेर्यः च वीणाः पणवः गोमुखाः धुन्धुर्यः आनकः घण्टाः आद्याः नेदुः दुन्दुभयः तथा ॥ १५ ॥

मृदङ्गः	मृदङ्ग
शंखः	शंख
भेर्यः	भेरियाँ (बड़ा नगाड़ा)
च	और
वीणाः	वीणा
पणवः	ढोलक
गोमुखाः	नरसिंगे
धुन्धुर्यः	छोटी नगाड़ियाँ
आनकः	नगाड़े
घण्टाः	घण्टा
आद्याः	आदि (झांझ)
तथा	तथा
दुन्दुभयः	दुन्दुभियाँ
नेदुः	बजने लगीं ॥१५॥

प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्यो दिदृक्षया ।
ववृषुः कुसुमैः कृष्णं प्रेमव्रीडास्मितेक्षणाः ॥१६॥

प्रासाद शिखर आरूढाः कुरुनार्याः दिदृक्षया ववृषुः कुसुमैः कृष्णं प्रेमव्रीडा स्मित ईक्षणाः ॥ १६ ॥

दिदृक्षया	दर्शन करनेकी इच्छासे
कुरुनार्याः	कुरुवंशकी स्त्रियाँ
प्रासाद	भवनोंके
शिखर	शिखरोंपर
आरूढाः	चढ़ी हुई
कृष्णं	श्रीकृष्णको
प्रेमव्रीडा	प्रेमपूर्ण लज्जासे
स्मित	मुस्कराहटके साथ
ईक्षणाः	देखती हुई
कुसुमैः	पुष्पोंकी
ववृषुः	वर्षा करती थीं ॥१६॥

सितातपत्रं जग्राह मुक्तादामविभूषितम् ।
रत्नदण्डं गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ॥१७॥

सित आतपत्रं जग्राह मुक्तादाम विभूषितं रत्नदण्डं गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ॥ १७ ॥

प्रियतमस्य	अपने प्रियतम श्रीकृष्णके	मुक्तादाम	मोतियोंकी झालरोंसे
ह	निश्चित (अत्यन्त)	विभूषितं	भूषित
प्रियः	प्रिय	सित	श्वेत
गुडाकेशः	अर्जुनने	आतपत्रं	छत्र
रत्नदण्डं	रत्न जड़े दण्डवाला	जग्राह	पकड़ा ॥१७॥

उद्धवः सात्यकिश्चैव व्यजने परमाद्भुते ।
विकीर्यमाणः कुसुमै रेजे मधुपतिः पथि ॥१८॥

उद्धवः सात्यकिः च एव व्यजने परम अद्भुते विकीर्यमाणः कुसुमैः रेजे मधुपतिः पथि ॥ १८ ॥

उद्धवः	उद्धव	पथि	मार्गमें
च	और	कुसुमैः	पुष्पोंकी
सात्यकिः	सात्यकि	विकीर्यमाणः	वर्षा हो रही थी
एव	ने ही	मधुपतिः	श्रीकृष्ण
परम	अत्यन्त	रेजे	अत्यन्त शोभित हुए ॥१८॥
अद्भुते	अद्भुत		
व्यजने	पंखे (लिए)		

अश्रूयन्ताशिषः सत्यास्तत्र तत्र द्विजेरिताः ।
नानुरूपानुरूपाश्च निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥१९॥

अश्रूयन्तः आशिषः सत्याः तत्र तत्र द्विजईरिताः न अनुरूपा अनुरूपाः च निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १९ ॥

तत्र तत्र	स्थान स्थानपर	ईरिताः	दिये गये
द्विज	ब्राह्मणों द्वारा	सत्याः	सच्चे

आशिषः	आशीर्वाद	न	नहीं थे
अश्रूयन्तः	सुनाई पड़ रहे थे	गुणात्मनः	गुणात्माके
निर्गुणस्य	(उन) निर्गुणके	अनुरूपाः	अनुरूप थे ॥१६॥
अनुरूपा	अनुरूप		

अन्योन्यमासीत्संजल्प उत्तमश्लोकचेतसाम् ।
कौरवेन्द्रपुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनोहरः ॥२०॥

अन्योन्यं आसीत् संजल्पः उत्तमश्लोक चेतसां कौरवेन्द्र पुरस्त्रीणां सर्व श्रुति मनोहरः ॥ २० ॥

कौरवेन्द्र	कुरुकुलोत्तम (युधिष्ठिर) के	स्त्रीणां	स्त्रियोंमें
		अन्योन्यं	परस्पर
पुरः	नगर (हस्तिनापुर) की	सर्व	सबके
		श्रुति	कानोंको
उत्तमश्लोक	पवित्र कीर्ति श्रीकृष्णमें	मनोहरः	प्रिय लगेवाली
		संजल्पं	चर्चा
चेतसां	लगे चित्तवाली	आसीत्	हो रही थी ॥२०॥

*स्त्रियाऊचुः**

स वै किलायं पुरुषः पुरातनो
य एक आसीदविशेष आत्मनि ।
अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे
निमीलितात्मन्निशि सुप्तशक्तिषु ॥२१॥

स वै किल अयं पुरुषः पुरातनः य एक आसीत अविशेष आत्मनि अग्रे गुणेभ्यः जगत् आत्मनि ईश्वरे निमीलिताः आत्मनि निशि सुप्त शक्तिषु ॥ २१ ॥

निशि	ब्राह्मीरात्रि (प्रलयकाल) में	आत्मनि	अपनेमें ही
		ईश्वरे	सर्व समर्थमें

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सुप्त	सोई	अग्रे	पूर्व
शक्तिषु	सब शक्तियाँ होनेपर	अविशेष	निर्विशेष
निमीलताः	पलकें बन्द करके	आत्मनि	आत्मस्वरूप
य	जो	पुरातनः	सनातन
एक	अकेले	पुरुषः	पुरुष
आत्मनि	अपनेमें	आसीत्	थे
जगत	विश्वको (लीन करके)	स	वही
		वै किल	निश्चय ही
गुणेभ्यः	गुणोंसे	अयं	यही हैं ॥२१॥

स एव भूयो निजवीर्यचोदितां
स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम् ।
अनामरूपात्मनि रूपनामनी
विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत् ॥२२॥

स एव भूयः निजवीर्य चोदितां स्वजीव मायां प्रकृतिं सिसृक्षतीं अनामरूप आत्मनि रूपनामनि विधित्सुमानः अनुससार शास्त्रकृत् ॥२२॥

स	उन्होंने	चोदितां	प्रेरिता
एव	ही	स्व	अपनी
भूयः	फिरसे	जीवमायां	जीवरूप माया और
अनामरूप	नामरूप रहित	सिसृक्षतीं	सृष्टि करनेमें प्रवृत्त
आत्मनि	अपने स्वरूपमें	प्रकृतिं	प्रकृतिका
रूपनामनि	रूप और नामका	अनुससार	अनुसरण किया (तथा)
विधित्सुमानः	विधान करनेकी इच्छासे	शास्त्रकृत्	शास्त्रोंका निर्माण किया ॥२२॥
निजवीर्य	अपने पराक्रमसे		

स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो
जितेन्द्रिया निर्जितमातरिश्वनः ।
पश्यन्ति भक्त्युत्कलितामलात्मना
नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति ॥२३॥

स वा अयं यत् पदं अत्र सूरयः जितइन्द्रिया निर्जित मातरिश्वनः पश्यन्ति भक्ति उत्कलित अमलात्मना ननु एष सत्त्वं परिमार्ष्टुं अर्हति ॥२३॥

वा स अयं	निश्चय ये वही हैं	यत् पदं	जिनके स्वरूपका
अत्र सूरयः	यहाँ ज्ञानी लोग	पश्यन्ति	दर्शन करते हैं
जितइन्द्रिय	इन्द्रियोंको जीतकर	ननु एष	निश्चय यही
मातरिश्वनः	प्राणवायुको	सत्त्वं	अन्तःकरणको
निर्जित	वशमें करके	परिमार्ष्टुं	परिमार्जित
भक्ति उत्कलित	भक्तिसे खिले	अर्हति	कर सकते हैं ॥२३॥
अमल आत्मना	निर्मल हृदयसे		

स वा अयं सख्यनुगीतसत्कथो
वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः ।
य एक ईशो जगदात्मलीलया
सृजत्यवत्यत्ति न तत्र सज्जते ॥२४॥

स वा अयं सखि अनुगीतः सत्कथः वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः य एकः ईशः जगत् आत्मलीलया सृजति अवति अत्ति न तत्र सज्जते ॥२४॥

वेदेषु	वेदोंमें	य	जो
गुह्येषु	गोपनीय भागोंमें	एकः	अकेले ही
गुह्यवादिषु	गोपनीय बतलाने वालों द्वारा	आत्मलीलया	अपनी लीलासे
		जगत्	संसारकी
अनुगीतः	बार-बार गायी गयी (जिनकी)	सृजति	सृष्टि करते हैं
		अवति	पालन करते हैं
सत्कथः	पवित्र कथा है	अत्ति	लीन कर लेते हैं
सखिः	सखि	तत्र	इस (सृष्टि आदिमें)
स वा	निश्चय वे	सज्जते	आसक्त होते
अयं	यही हैं	न	नहीं ॥२४॥

यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा
जीवन्ति तत्रैष हि सत्वतः किल ।
धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो
भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे ॥२५॥

यदा हि अधर्मेण तमोधियाः नृपाः जीवन्ति तत्र एष हि सत्त्वतः किल धत्ते भगं सत्यं ऋतं दयां यशः भवाय रूपाणि दधत् युगे युगे ॥ २५ ॥

हि	क्योंकि
यदा	जब
तमोधियाः	तामसी बुद्धिवाले
नृपाः	राजा लोग
अधर्मेण	अधर्मपूर्वक
जीवन्ति	जीवन चलाते हैं
तत्र	तब
किल	निश्चय
एष	यही
सत्त्वतः	सत्त्व गुणका आश्रय लेकर
भवाय	(जगत्के) कल्याणके लिए
युगे युगे	प्रत्येक युगमें
हि	निश्चित
रूपाणि	रूपों (अवतार) को
दधत्	धारण करके
भगं	ऐश्वर्यको
सत्यं	सत्यको
ऋतं	ऋतको
दयां	दयाको (और)
यशः	यशको
धत्ते	धारण करते (बचाते) हैं ॥२५॥

अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुल-
महो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम् ।
यदेष पुंसामृषभः श्रियः पतिः
स्वजन्मना चङ्क्रमणेन चाञ्चति ॥२६॥

अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुलं अहो अलं पुण्यतमं मधोः वनं यत् एष पुंसां ऋषभः श्रियः पतिः स्वजन्मना चङ्क्रमेण च अञ्चति ॥ २६ ॥

अहो	अहो
यदोःकुलं	यदुकुल
श्लाघ्यतमं	परमप्रशंसनीय है
अहो	अहो
मधोर्वनं	मथुरा
पुण्यतमं	पवित्रतम है
यत्	क्योंकि
एष	ये
पुंसां ऋषभः	पुरुष शिरोमणि
श्रियः पतिः	श्रीपति
स्वजन्मना	अपने अवतारसे
च	और
चङ्क्रमेणेन	घूम फिरकर
अञ्चति	(इन्हें) शोभित करते हैं ॥२६॥

अहो बत स्वर्यशसस्तिरस्करी
कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः ।
पश्यन्ति नित्यं यदनुग्रहेषितं
स्मितावलोकं स्वपतिं स्म यत्प्रजाः ॥२७॥

अहो बत स्वः यशसः तिरस्करीः कुशस्थलीः पुण्य यशस्करीः भुवः पश्यन्ति नित्यं यत् अनुग्रह ईषितं स्मित अवलोकं स्वपतिं स्म यत् प्रजाः॥२७॥

अहो	अहो	यत्	जिसकी
वत	निश्चय	प्रजाः	प्रजा
स्वः	स्वर्गके	नित्यं	नित्य
यशसः	सुयशका	अनुग्रह	अनुग्रहपूर्वक
तिरस्करीः	तिरस्कार करनेवाली (और)	ईषितं	चेष्टा करते
		स्मित	मन्द मुस्करान भरी
भुवः	पृथ्वीके	अवलोकं	दृष्टिसे देखते
पुण्य	पवित्र	स्वपन्ति	अपने (इन)
यशस्करीः	यश देनेवाली		स्वामीको
कुशस्थलीः	द्वारिका है	पश्यन्ति	देखती है ॥२७॥
यत्	क्योंकि		

नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वरः
समर्चितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः ।
पिबन्ति यः सख्यधरामृतं मुहु-
व्रंजस्त्रियः सम्मुमुहुर्यदाशयाः ॥२८॥

नूनं व्रत स्नान हुता दिनेश्वरः समर्चितः हि यस्य गृहीत पाणिभिः पिबन्ति यः सखि अधरामृतं मुहुः व्रजस्त्रियः सम्मुमुहुः यत् आशयाः ॥ २८॥

सखि	सखि !	दिनेश्वरः	सूर्य भगवानका (अथवा अपने जीवनके इन स्वामीका)
नूनं	निश्चय ही		
व्रत	व्रत		
स्नान	(तीर्थ) स्नान		
हुत	यज्ञोंके द्वारा		

सम्पूजितः	भली प्रकार पूजन किया होगा (उन्होंने)	**यत्**	जिसकी
		आशयाः	चाहसे
		सम्मुमुहुः	सम्मोहित होती रहीं
यस्य	जिनका	**याः**	वे
गृहीत पाणिभिः	(इन्होंने) पाणिग्रहण किया	**मुहुः**	बार-बार (उस)
		अधरामृतं	अधरामृतको
हि	क्योंकि	**पिबन्ति**	पीती हैं ॥२८॥
व्रजस्त्रियः	गोपियां		

या वीर्यशुल्केन हृताः स्वयंवरे
प्रमथ्य चैद्यप्रमुखान् हि शुष्मिणः ।
प्रद्युम्नसाम्बाम्बसुतादयोऽपरा
याश्चाहृता भौमवधे सहस्रशः ॥२९॥

या वीर्यशुल्केन हृताः स्वयंवरे प्रमथ्य चैद्य प्रमुखान् हि शुष्मिणः प्रद्युम्नः साम्बः आम्बः सुतआदयः अपराः याः च आहृताः भौमवधे सहस्रशः ॥ २९ ॥

या	जो	**प्रद्युम्नः**	प्रद्युम्न
वीर्यशुल्केन	पराक्रमका मूल्य देकर	**साम्बः**	साम्ब
		आम्बः	आम्ब
चैद्य प्रमुखान्	शिशुपाल जिनमें मुख्य था उन	**आदयः**	आदि हैं
		च	और
शुष्मिणः	मतवाले राजाओंको	**याः**	जो
प्रमथ्य	मथ (पराजित) करके	**अपराः**	दूसरी
		सहस्रशः	हजारों
स्वयंवरे	स्वयंवरमें	**भौमवधे**	नरकासुरको मारनेपर
हृताः	हरण कर लाये		
हि	जिनके	**आहृताः**	ले आये ॥२९॥
सुतः	पुत्र		

एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं
निरस्तशौचं बत साधु कुर्वते ।
यासां गृहात्पुष्करलोचनः पति-
र्नजात्वपैत्याहृतिभिर्हृदि स्पृशन् ॥३०॥

एताः परं स्त्रीत्वं अपास्त पेशलं निरस्त शौचं बत साधु कुर्वते यासां गृहात् पुष्करलोचनः पतिः न जातु अपैति आहृतिभिः हृदिस्पृशन् ॥३०॥

पेशलं	स्वतन्त्रता	गृहात्	घरोंसे
अपास्त	रहित	पुष्कर लोचनः	(ये) कमललोचन
शौचं	पवित्रता	पतिः	पति
निरस्तं	रहित	जातु	कभी
स्त्रीत्वं	स्त्री जीवनको	न	नहीं
बत	निश्चय	अपैति	जाते
साधु	उत्तम	आहृतिभिः	उपहारों द्वारा
कुर्वते	कर देनेवाली	हृदि	हृदयको
एताः	ये सब	स्पृशन्	स्पर्श करते रहते
परं	श्रेष्ठतम हैं		हैं ॥३०॥
यासां	जिनके		

*सूत उवाच**-

एवंविधा गदन्तीनां स गिरः पुरयोषिताम् ।
निरीक्षणेनाभिनन्दन् सस्मितेन ययौ हरिः ॥३१॥

एवं विधा गदन्तीनां स गिरः पुरयोषितां निरीक्षणेन अभिनन्दन् सस्मितेन ययौ हरि ॥ ३१ ॥

एवं	इस	गदन्तीनां	कही हुई
विधा	प्रकार	स	उस
पुरयोषितां	नगरकी स्त्रियोंकी	गिरः	वाणीका

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सस्मितेन	मुस्कराहट युक्त	हरिः	श्रीकृष्ण
निरीक्षणेन	दृष्टिपातसे	ययौ	गये ॥३१॥
अभिनन्दन	अभिनन्दन करते		

अजातशत्रुः पृतनां गोपीथाय मधुद्विषः ।
परेभ्यः शङ्कितः स्नेहात्प्रायुङ्क्त चतुरङ्गिणीम् ॥३२॥

अजातशत्रुः पृतनां गोपीथाय मधुद्विषः परेभ्यः शङ्कितः स्नेहात् प्रायुङ्क्त चतुरङ्गिणीम् ॥ ३ ॥

अजातशत्रुः	युधिष्ठिरने	चतुरङ्गिणीं	(चार अंग–पैदल, घुड़सवार, हाथी और रथवाली) चतुरंगिणी
स्नेहात्	स्नेहवश		
परेभ्यः	शत्रुओंकी ओरसे		
शङ्कितः	शङ्कित होकर		
मधुद्विषः	मधुसूदनकी	पृतनां	सेना
गोपीथाय	सुरक्षाके लिए	प्रायुङ्क्त	नियुक्त किया ॥३२॥

अथ दूरागतान् शौरिः कौरवान् विरहातुरान् ।
संनिवर्त्य दृढं स्निग्धान् प्रायात्स्वनगरीं प्रियैः ॥३३॥

अथ दूर आगतान् शौरिः कौरवान् विरह आतुरान् संनिवर्त्य दृढं स्निग्धान् प्रायात् स्वनगरीं प्रियैः ॥ ३३ ॥

अथ	तदनन्तर	शौरिः	श्रीकृष्णने
दृढं	दृढ	संनिवर्त्य	लौटाकर
स्निग्धान्	स्नेह रखनेवाले	प्रियैः	(उद्धव, सात्यकि आदि) प्रियजनोंके साथ
विरह	वियोगसे		
आतुरान्	व्याकुल		
दूर	दूरतक	स्वनगरीं	अपने नगर (द्वारिका) को
आगतान्	आये		
कौरवान्	कुरुवंशी लोगोंको	प्रायात्	चले ॥३३॥

कुरुजाङ्गलपाञ्चालान् शूरसेनान् सयामुनान् ।
ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान् सारस्वतानथ ॥३४॥

कुरु जाङ्गल पञ्चालान् शूरसेनान् सयामुनान् ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान् सारस्वतान् अथ ॥ ३४ ॥

मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान् ।
आनर्तान् भार्गवोपागाच्छ्रान्तवाहो मनाग्विभुः ॥३५॥

मरु धन्वं अतिक्रम्य सौवीर आभीरयोः परान् आनर्तात् भार्गव उपागच्छत् श्रान्तः वाहः मनाक् विभुः ॥ ३५ ॥

मरुधन्वं	मरुधन्व	विभुः	समर्थ श्रीकृष्ण
सौवीर	सौवीर	आनर्तान्	आनर्त प्रदेशके
आभीरयोः	आभीर आदि	उपागच्छत्	समीप पहुँच गये
परान्	दूसरे प्रदेशोंको	वाहः	वाहन (घोड़े)
अतिक्रम्य	पार करके	मनाक्	थोड़े
भार्गव	शौनकजी !	श्रान्तः	थक गये थे ॥३५॥

तत्र तत्र ह तत्रत्यैर्हरिः प्रत्युद्यतार्हणः ।
सायं भेजे दिशं पश्चाद्गविष्ठो गां गतस्तदा ॥३६॥

तत्र तत्र ह तत्रत्यैः हरिः प्रति उद्यत अर्हणः सायं भेजे दिशं पश्चात् गविष्ठः गां गतः तदा ॥ ३६ ॥

तत्र तत्र	स्थान स्थानपर	गां	पृथ्वीपर
ह	बार बार	गतः	उतरकर
तत्रत्यैः	वहाँ रहनेवालों द्वारा	तदा	तब
हरिः	श्रीकृष्णके	पश्चात्	पश्चिम
प्रति	प्रति	दिशं	दिशाकी ओर (मुख करके)
अर्हणः	पूजा (उपहार)		
उद्यतः	उपस्थित किया गया	गविष्ठः	सूर्याराधन (सन्ध्या) किया ॥३६॥
सायं	सन्ध्याकाल		
भेजे	होनेपर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे दशमोऽध्यायः

अथ एकादशोऽध्यायः

सूत उवाच-

आनर्तान् स उपव्रज्य स्वृद्धाञ्जनपदान् स्वकान् ।
दध्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन्निव ॥१॥

आनर्तान् स उपव्रज्य स्वृद्धान् जनपदान् स्वकान् दध्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन् इव ॥ १ ॥

स	उन श्रीकृष्णने	विषादं	(वियोग्य जन्य) विषादको
स्वृद्धान्	समृद्ध		
स्वकान्	अपनी (प्रजाकी)	शमयन्	शान्त करते हुए
जनपदान्	बस्तियोंवाले	इव	से
आनत न्	आनर्तमें	दरवरं	(अपना) श्रेष्ठ शंख
उपव्रज्य	पहुँचकर	दध्मौ	बजाया ॥१॥
तेषां	उन (प्रजाजनों) के		

स उच्चकाशे धवलोदरो दरो-
ऽप्युरुक्रमस्याधरशोणशोणिमा ।
दाध्मायमानः करकञ्जसम्पुटे
यथाब्जखण्डे कलहंस उत्स्वनः ॥२॥

स उच्चकाशे धवलोदर दरः अपि उरुक्रमस्य अधरशोण शोणिमा दाध्मायमानः करकञ्ज सम्पुटे यथा अब्जखण्डे कलहंस उत्स्वनः ॥२॥

स	वह	अधरशोण	लाल लाल ओष्ठोंकी
धवलोदर	श्वेत पेटवाला	शोणिमा	लालीसे
दरः	शंख	करकञ्ज	हस्तकमलके
अपि	भी	सम्पुटे	सम्पुटमें
उरु क्रमस्य	अनन्त पराक्रम श्रीकृष्णके	दाध्मायमानः	बजाया जाता
		उच्चकाशे	अत्यन्त शोभित हुआ

यथा	जैसे	कलहंस	राजहंस
अब्जखण्डे	कमलके ऊपर (बैठा)	उत्स्वनः	कूज रहा हो ॥२॥

तमुपश्रुत्य निनदं जगद्भयभयावहम् ।
प्रत्ययुः प्रजाः सर्वा भर्तृदर्शनलालसाः ॥३॥

तं उपश्रुत्य निनदं जगत् भय भयावहं प्रति उद्ययुः प्रजाः सर्वाः भर्तृ दर्शन लालसाः ॥ ३ ॥

तं	उस	प्रजाः	प्रजा
जगत	जगतके	भर्तृ	स्वामीके
भय	भयको	दर्शन	दर्शनकी
भयावहं	भयभीत करनेवाले	लालसाः	लालसासे
निनदं	शंखनादको	प्रति	उनकी ओर
उपश्रुत्य	सुनकर	उद्ययुः	आने लगी ॥३॥
सर्वाः	सब		

तत्रोपनीतबलयो रवेर्दीपमिवादृताः ।
आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा ॥४॥

तत्र उपनीतः बलयोः रवेः दीपं इव आदृताः आत्माराम पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा ॥ ४ ॥

तत्र	वहाँ	रवेः	सूर्यके लिए
नित्यदा	सर्वदा	दीपं	दीपदान
निजलाभेन	अपने स्वरूपकी उपलब्धिसे	इव	के समान
		बलयोः	उपहार
पूर्णकामं	पूर्णकाम	उपनीतः	लाकर
आत्मारामं	आत्माराम श्रीकृष्णके लिए	आदृताः	आदर किया ॥४॥

प्रीत्युत्फुल्लमुखाः प्रोचुर्हर्षगद्गदया गिरा ।
पितरं सर्वसुहृदमवितारमिवार्भकाः ॥५॥

प्रीति उत्फुल्ल मुखाः प्रोचुः हर्ष गद्गदया गिरा पितरं सर्व सुहृदं अवितारं इव अर्भकाः ॥ ५ ॥

प्रीति	प्रीतिसे	सर्व सुहृदं	सबके सुहृद
उत्फुल्ल	प्रफुल्ल	अवितारं	रक्षक श्रीकृष्णसे
मुखाः	मुखवाले (वे प्रजाजन)	अर्भकाः	बालक जैसे
		पितरं	पितासे
हर्ष	हर्षसे	इव	उस समान
गद्गदया	गद्गद	प्रोचुः	बोले ॥५॥
गिरा	वाणीसे		

*पौराः ऊचुः—**

नताः स्म ते नाथ सदाङ्घ्रिपङ्कजं
विरिञ्चवैरिञ्च्यसुरेन्द्रवन्दितम् ।
परायणं क्षेममिहेच्छतां परं
न यत्र कालः प्रभवेत् परः प्रभुः ॥६॥

नताः स्म ते नाथ सदा अङ्घ्रिपंकजं विरञ्चि वैरिञ्चि सुरेन्द्रवन्दितं परायणं क्षेमं इह इच्छतां परं न यत्र कालः प्रभवेत् परं प्रभुः ॥ ६ ॥

नाथ	प्रभो !	वन्दितं	(वे) वन्दित हैं।
ते	आपके	इह	इस संसारमें
अंघ्रिपङ्कजं	चरणकमलोंको	परं	परम
सदा	सदा	क्षेमं	कल्याण
नताः स्म	हम नमस्कार करते हैं।	इच्छतां	चाहनेवालोंके लिए
		परायणं	आश्रय हैं।
विरञ्चि	ब्रह्माजी	परं	परम
वैरिञ्च	शंकर	प्रभुः	प्रभु
सुरेन्द्र	इन्द्रसे	कालः	काल

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

यत्र	जहाँ (आपके चरणोंके समीप)	न	समर्थ नहीं होता ॥६॥
प्रभवेत	प्रभाव डालनेमें		

भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन
त्वमेव माताथ सुहृत्पतिः पिता ।
त्वं सद्गुरुर्नः परमं च दैवतं
यस्यानुवृत्त्या कृतिनो बभूविम ॥७॥

भवाय नः त्वं भव विश्वभावन त्वं एव माता अथ सुहृत् पतिः पिताः त्वं सद्गुरुः नः परमं च दैवतं यस्य अनुवृत्त्याः कृतिनः बभूव इमः ॥ ७ ॥

विश्वभावन	विश्व रक्षक !	त्वं	आप
नः	हमारे	नः	हमारे
भवाय	अभ्युदयके लिए	सद्गुरुः	सद्गुरु
त्वं	आप	च	तथा
भव	होवें	परमं	परं
त्वं	आप	दैवतं	आराध्यदेव हैं
एव	ही	यस्य	जिनकी
माता	(हमारे) माता	अनुवृत्त्याः	आज्ञापालनसे
अथ	और	इमः	हम सब
सुहृत्	हितैषी	कृतिनः	कृतार्थ
पतिः	स्वामी	बभूव	होते हैं ॥७॥
पिताः	पिता हैं		

अहो सनाथा भवता स्म यद्वयं
त्रैविष्टपानामपि दूरदर्शनम् ।
प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणाननं
पश्येम रूपं तव सर्वसौभगम् ॥८॥

अहो सनाथाः भवताः स्म यत् वयं त्रैविष्टपानां अपि दूरदर्शनं प्रेमस्मित स्निग्ध निरीक्षण आननं पश्येम रूपं तव सर्व सौभगम् ॥ ८ ॥

अहो	अहो	तव	आपके
भवताः	आपके द्वारा	प्रेमस्मित	प्रेम भरी मुस्कान
सनाथाः	(हम) सनाथ		(एवं)
स्म	हैं	स्निग्धनिरीक्षणं	स्नेह सहित
यत्	क्योंकि		अवलोकन युक्त
त्रैविष्टपानां	देवताओंके लिए	आननं	मुखको (तथा)
अपि	भी	सर्व	समस्त
दूरदर्शनं	आपका दर्शन	सौभगं	सौभाग्यमय
	दुर्लभ है	रूपं	रूपको
वयं	हम सब	पश्येम	देखते हैं ॥८॥

यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान्
कुरून् मधून् वाथ सुहृद्दिदृक्षया ।
तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद्
रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत ॥९॥

यर्हि अम्बुजाक्ष अपससार भो भवान् कुरून् मधून् वा अथ सुहृद् दिदृक्षया तत्र अब्द कोटि प्रतिमः क्षणः भवेत् रविं विनाः अक्ष्णोः इव नः तव अच्युत ॥ ९ ॥

भो	हे	तत्र	वहां
अम्बुजाक्ष	कमललोचन	अपससार	चले जाते हो
यर्हि	जब	अथ	तब
भवान्	आप	अच्युत	अच्युत !
कुरून्	कुरुवंशियों	तव	तुम्हारे
वा	अथवा	विना	विना
मधून्	मधुवंशियो (मथुराके लोगों) को*	नः	हमारे
		क्षणः	प्रत्येक क्षण
सुहृद्	सम्बन्धियोंको	कोटि	करोड़ों
दिदृक्षया	देखनेकी इच्छासे	अब्द	वर्षोंके

* इससे सिद्ध है कि श्रीकृष्ण द्वारिकासे मथुरा भी आते थे

समं	समान	विनाः	विना
भवेत्	हो जाते हैं	अक्ष्णोः	आँखोंके
रवि	सूर्यके	इव	समान ॥९॥

*सूत उवाच**-

इति चोदीरिता वाचः प्रजानां भक्तवत्सलः ।
शृण्वानोऽनुग्रहं दृष्ट्या वितन्वन् प्राविशत्पुरीम् ॥१०॥

इति च उदीरताः वाचः प्रजानां भक्तवत्सलः शृण्वानः अनुग्रहं दृष्ट्या वितन्वन् प्राविशत् पुरीम् ॥ १० ॥

इति च	इस प्रकारकी	दृष्ट्या	दृष्टिसे
उदीरताः	कही गयी	अनुग्रहं	अनुग्रह
प्रजानां	प्रजाकी	वितन्वन्	वितरित करते
वाचः	बात	पुरीं	(द्वारिका) पुरीमें
शृण्वानः	सुनते हुए	प्राविशत्	प्रविष्ट हुए ॥१०॥
भक्तवत्सलः	भक्त वत्सल		

मधुभोजदशार्हार्हकुकुरान्धकवृष्णिभिः ।
आत्मतुल्यबलैर्गुप्तां नागैर्भोगवतीमिव ॥११॥

मधु भोज दशार्ह अर्ह कुकुर अन्धक वृष्णिभिः आत्मतुल्यैः बलैः गुप्तां नागैः भौगवतीं इव ॥ ११ ॥

नागैः	नागोंसे (रक्षित)	कुकुर	कुकुरवंशी
भोगवतीं	भोगवतीपुरी	अन्धक	अन्धकवंशी (और)
इव	की भाँति	वृष्णिभिः	वृष्णिवंशी
अर्ह	आदरणीय	आत्मतुल्यैः	अपने समान
मधु	मधुवंशी	बलैः	बलवानोंसे
भोज	भोजवंशी	गुप्तां	रक्षित थी ॥११॥
दशार्ह	दशार्हवंशी		

* यह उवाच अन्य किसी प्रतिमें नहीं है ।

सर्वर्तुसर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः ।
उद्यानोपवनारामैर्वृतपद्माकरश्रियम् ॥१२॥

सर्व ऋतु सर्व विभव पुण्य वृक्ष लता आश्रमैः उद्यान उपवनः आरामैः वृत पद्माकर श्रियम् ॥ १२ ॥

सर्व	सब	उद्यान	फलोंके बगीचे
ऋतु	ऋतुओंमें	उपवन	पुष्पोंके बड़े वृक्षोंके बगीचों
सर्व	सब	आरामैः	फुलवारीसे
विभव	वैभवों (से युक्त)	वृत	घिरी
पुण्य	पवित्र	पद्माकर	कमलयुक्त (सरोवरों) से
वृक्ष	वृक्षों	श्रियं	सुशोभित ॥१२॥
लता	लताओंवाले		
आश्रमैः	आश्रमों		

गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम् ।
चित्रध्वजपताकाग्रैरन्तः प्रतिहतातपाम् ॥१३॥

गोपुर द्वार मार्गेषु कृत कौतुक तोरणां चित्रध्वज पताका अग्रैः प्रतिहत आतपम् ॥ १३ ॥

मार्गेषु	पथोंमें	चित्रध्वज	चित्रित ध्वजा (डंडे)
गोपुरद्वार	गोपुर बने द्वारोंपर	अग्रैः	(जिनके) ऊपर
कौतुक	शोभाके लिए	पताका	झण्डे लगनेसे
कृत	लगाये गये	अन्तः	पुरीके भीतर
तोरणां	बन्दनवारवाली (द्वारिका)	आतपां	धूप
		प्रतिहत	रुक गयी थी ॥१३॥

सम्मार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम् ।
सिक्तां गन्धजलैरुप्तां फलपुष्पाक्षताङ्कुरैः ॥१४॥

सम्मार्जित महामार्ग रथ्या आपण चत्वरां सिक्तां गन्धजलैः उप्तां पुष्प अक्षत अङ्कुरैः ॥ १४ ॥

महामार्ग	राजपथ	सिक्तां	(पथा) सींचे गये थे
रथ्या	गलियाँ	फल	फल
आपण	बाजार	पुष्प	पुष्प
चत्वरां	चबूतरे	अक्षत	अक्षत
सम्मार्जित	स्वच्छ कर दिये गये थे।	अङ्कुरैः	दूर्वाङ्कुर
गन्धजलैः	सुगन्धित जलसे	उप्तां	बिखरे थे ॥१४॥

द्वारि द्वारि गृहाणां च दध्यक्षतफलेक्षुभिः ।
अलंकृतां पूर्णकुम्भैर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥१५॥

द्वारि द्वारि गृहांणा च दधि अक्षत फल इक्षुभिः अलंकृतां पूर्णकुम्भैः बलिभिः धूप दीपकैः ॥ १५ ॥

च	और	दधि	दही
गृहाणां	घरोंके	अक्षत	अक्षत
द्वारि द्वारि	प्रत्येक द्वार	फल	फल
पूर्णकुम्भैः	भरे हुए कलशोंसे (जो)	ईक्षुभिः	गन्ने आदि
		बलिभिः	उपहारोंसे पूजित थे
धूप	धूप	अलंकृतां	सुशोभित थे ॥१६॥
दीपकैः	दीपकोंसे		

निशम्य प्रेष्ठमायान्तं वसुदेवो महामनाः ।
अक्रूरश्चोग्रसेनश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः ॥१६॥

निशम्य प्रेष्ठं आयान्तं वसुदेवः महामनाः अक्रूरः च उग्रसेनः च रामः च अद्भुत विक्रमः ॥ १६ ॥

प्रेष्ठं	अपने प्रिय (श्रीकृष्ण) को	अक्रूरः	अक्रूरजी
		च	तथा
आयान्तं	आते हुए	उग्रसेनः	राजा उग्रसेन
निशम्य	सुनकर	च	एवं
महामनाः	महामना	अद्भुत विक्रमः	अद्भुत पराक्रमी
वसुदेवः	वसुदेवजी	रामः	श्रीबलरामजी॥१६॥

प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः ।
प्रहर्षवेगोच्छ्शितशयनासनभोजनाः ॥१७॥

प्रद्युम्नः चारुदेष्णः च साम्बः जाम्बवती सुतः प्रहर्षवेग उच्छ्शित शयन आसन भोजनाः ॥ १७ ॥

प्रद्युम्नः	प्रद्युम्न	शयन	शय्या
चारुदेष्णः	चारुदेष्ण	आसन	आसन
च	और	भोजनाः	भोजन
जाम्बवतीसुतः	जाम्बवतीके पुत्र	उच्छ्शित	त्यागकर
साम्बः	साम्ब		झटपट ॥१७॥
प्रहर्षवेगः	अत्यन्त हर्षके वेगसे		

वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य ब्राह्मणैः ससुमङ्गलैः ।
शङ्खतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषेण चादृताः ।
प्रत्युज्जग्मू रथैर्हृष्टाः प्रणयागतसाध्वसाः ॥१८॥

वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य ब्राह्मणैः ससुमङ्गलैः शङ्खतूर्य निनादेन ब्रह्मघोषेण च आदृताः प्रत्यजग्मुः रथैः हृष्टाः प्रणय आगत साध्वसाः ॥ १८ ॥

वारणेन्द्रं	गजराजको	प्रणय	प्रेमके कारण
पुरस्कृत्य	आगे करके	साध्वसाः	हड़बड़ी
ससुमंगलैः	मंगल द्रव्योंके साथ	आगत	में आये
ब्राह्मणैः	ब्राह्मणों (सहित)	रथैः	रथोंपर बैठकर
आदृताः	आदरपूर्वक	हृष्टाः	हर्षमें भरे
शङ्ख	शंख	प्रत्यजग्मुः	(अगवानी करने)
तूय	तुरही		भगवानको ओर
निनादेन	बजाते हुए		चले ॥१८॥
च	और		
ब्रह्मघोषेण	वेदमन्त्रोंका पाठ करते हुए		

वारमुख्याश्च शतशो यानैस्तद्दर्शनोत्सुकाः ।
लसत्कुण्डलनिर्भातकपोलवदनश्रियः ॥१९॥

वारमुख्याः च शतशः यानैः तत् दर्शनोत्सुकाः लसत् कुण्डल निर्भात कपोल वदन श्रियः ॥ १९ ॥

च	और
कुण्डल	कुण्डलोंसे
लसत्	सुशोभित
कपोल	कपोल
वदन	मुखकी
श्रियः	शोभा
निर्भातः	से शोभित
तत्	उन (श्रीकृष्ण) के
दर्शनोत्सुकाः	दर्शनोंको उत्सुका
शतशः	सैकड़ों
वारमुख्याः	वाराङ्गनायें
यानैः	वाहनोंपर बैठकर (चलीं) ॥१९॥

नटनर्तकगन्धर्वाः सूतमागधवन्दिनः ।
गायन्ति चोत्तमश्लोकचरितान्यद्भुतानि च ॥२०॥

नट नर्तक गन्धर्वाः सूत मागधवन्दिनः गायन्ति च उत्तमश्लोक चरितानि अद्भुतानि च ॥ २० ॥

नट	नट
नर्तक	नर्तक
गन्धर्वाः	गन्धर्व (गायक)
सूत	सूत (चरित वर्णन करनेवाले)
मागध	मागध (वंशावली गायक)
च	और
वन्दिनः	वन्दी (यशोगायक)
उत्तमश्लोक	पवित्र कीर्ति (भगवान) के
अद्भुतानि	अद्भुत
चरितानि	चरितोंको
च	भी
गायन्ति	गारहे थे ॥२०॥

भगवांस्तत्र बन्धूनां पौराणामनुवर्तिनाम् ।
यथाविध्युपसंगम्य सर्वेषां मानमादधे ॥२१॥

भगवान् तत्र बन्धूनां पौराणां अनुवर्तिनां यथाविधि उपसंगम्य सर्वेषां मानं आदधे ॥ २१ ॥

तत्र	वहां
भगवान्	भगवानने
बन्धूनां	सम्बन्धिसे
पौराणां	नगरवासियोंसे

अनुवर्तिनां	सेवकोंसे	सर्वेषां	सबका
यथा विधि	विधि (सामाजिक रीति) के अनुसार	मानं	सम्मान
		आदधे	किया ॥२१॥
उपसंगम्य	मिलकर		

प्रह्वाभिवादनाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः ।
आश्वास्य चाश्वपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः ॥२२॥

प्रह्व अभिवादन आश्लेष करस्पर्श स्मितेक्षणैः आश्वास्य च आश्वपाकेभ्यः वरैः च अभिमतैः विभुः ॥ २२ ॥

प्रह्व	मस्तक झुकाकर प्रणाम (किसीको तथा)	आश्वास्य	आश्वासन देकर
		च	और
		आश्वपाकेभ्यः	चाण्डालादि पर्यन्तको
अभिवादन	बोलकर प्रणाम (या)	अभिमतैः	अभीष्ट
		वरैः	मांग पूरी करके
आश्लेष	आलिंगन (करके अथवा)	च	च
		विभुः	समर्थ (भगवानने सबको सत्कृत किया) ॥२२॥
करस्पर्श	हाथ मिलाकर (या)		
स्मितेक्षणैः	मुस्कराकर देखकर,		

स्वयं च गुरुभिर्विप्रैः सदारैः स्थविरैरपि ।
आशीर्भिर्युज्यमानोऽन्यैर्वन्दिभिश्चाविशत्पुरम् ॥२३॥

स्वयं च गुरुभिः विप्रैः सदारैः स्थविरैः अपि आशीर्भिः युज्यमानः अन्यैः वन्दिभिः च आविशत् पुरम् ॥ २३ ॥

स्वयं	स्वयं	युज्यमानः	प्राप्त करते हुए
च	भी	च	और
सदारैः	पत्नियों सहित	अन्यैः	दूसरों (अपनेसे छोटों) से
विप्रैः	ब्राह्मणों द्वारा		
स्थविरैः	वृद्धोंसे	वन्दिभिः	वन्दित होते
अपि	भी	पुरं	नगरमें
आशीर्भिः	आशीर्वाद	आविशत्	प्रविष्ट हुए ॥२३॥

राजमार्गं गते कृष्णे द्वारकायाः कुलस्त्रियः ।
हर्म्याण्यारुरुहुर्विप्र तदीक्षणमहोत्सवाः ॥२४॥

राजमार्गं गते कृष्णे द्वारकायाः कुलस्त्रियः हर्म्याणि आरुरुहुः विप्र तत् ईक्षण महोत्सवाः ॥ २४ ॥

विप्र	शौनकजी !	तत्	उनके
कृष्णे	श्रीकृष्णके	ईक्षण	दर्शनकी
राजमार्गं	राजपथपर	महोत्सवाः	भारी उत्सुकतासे
गते	पहुँचनेपर	हर्म्याणि	अटारियोंपर
द्वारकायाः	द्वारिकाकी	आरुरुहुः	चढ़ गयीं ॥२४॥
कुलस्त्रियः	कुलीन स्त्रियां		

नित्यं निरीक्षमाणानां यदपि द्वारकौकसाम् ।
न वितृप्यन्ति हि दृशः श्रियोधामाङ्गमच्युतम् ॥२५॥

नित्यं निरीक्षमाणानां यदपि द्वारका ओकसां न एव तृप्यन्ति हि दृशः श्रियो धाम अंग अच्युतम् ॥ २५ ॥

द्वारका	द्वारिका	न	नहीं
ओकसां	निवासियों द्वारा	एव	ही है
नित्यं	सदा	हि	क्योंकि
निरीक्षमाणानां	देखे जानेवाले	अच्युतं	श्रीकृष्णका
यदपि	यद्यपि (भगवान हैं फिर भी)	अंग	श्रीअंग
		श्रियोधाम	शोभाका धाम है ॥२५॥
दृशः	दृष्टि		
तृप्यन्ति	तृप्ति होती		

श्रियो निवासो यस्योरः पानपात्रं मुखं दृशाम् ।
बाहवो लोकपालानां सारङ्गाणां पदाम्बुजम् ॥२६॥

श्रियः निवासः यस्य उरः पानपात्रं मुखं दृशां बाहवः लोकपालानां सारंगाणां पदाम्बुजम् ॥ २६ ॥

यस्य	जिनका	श्रियः	लक्ष्मीका
उरः	वक्षस्थल	निवासः	निवास है,

मुखं	मुख	लोकपालानां	लोकपालोंकी (और)
दृशां	नेत्रोंका	पदाम्बुजं	चरणकमल
पानपात्रं	पीनेका पात्र है,	सारंगाणां	भक्तोंके (आश्रय)
बाहवः	भुजायें		हैं ॥२६॥

सितातपत्रव्यजनैरुपस्कृतः
प्रसूनवर्षैरभिवर्षितः पथि ।
पिशङ्गवासा वनमालया बभौ
घनो यथार्कोडुपचापवैद्युतैः ॥२७॥

सित आतपत्र व्यजनैः उपस्कृतः प्रसूनवर्षैः अभिवर्षितः पथि पिशङ्गवासा वनमालया बभौ घनः यथा अर्क उडुचाप वैद्युतैः ॥ २७ ॥

सित	श्वेत	वनमालया	वनमालाधारी श्रीकृष्ण
आतपत्र	छत्र (तथा)		
व्यजनः	पंखोंसे	बभौ	(ऐसे) शोभित हुए
उपस्कृतः	सुशोभित	यथा	जैसे
प्रसूनवर्षैः	पुष्पवर्षा	घनः	मेघ (एक साथ)
अभि	चारों ओरसे	अर्क	सूर्य
वर्षितः	होती	उडु	चन्द्रमा
पथि	मार्गमें	चाप	इन्द्रधनुष (एवं)
पिशङ्गवासा	पीताम्बर पहिने	वैद्युतैः	विद्युतसे ॥२७॥

प्रविष्टस्तु गृहं पित्रोः परिष्वक्तः स्वमातृभिः ।
ववन्दे शिरसा सप्त देवकीप्रमुखा मुदा ॥२८॥

प्रविष्टः तु गृहं पित्रोः परिष्वक्तः स्व मातृभिः ववन्दे शिरसा सप्त देवकी प्रमुखा मुदा ॥ २८ ॥

तु	तब	स्व	अपनी
पित्रोः	पिताके	मातृभिः	माताओं द्वारा
गृहं	भवनमें	परिष्वक्तः	आलिंगित होकर
प्रविष्टः	प्रवेश किया		

देवकी प्रमुखा	जिनमें देवकी मुख्य है उन	मुदा	हर्षित होकर
		शिरसा	मस्तकसे (पृथ्वीपर सिर रखकर)
सप्त	सातों (माताओं) को	ववन्दे	प्रणाम किया ॥२८॥

ताः पुत्रमङ्कमारोप्य स्नेहस्नुतपयोधराः ।
हर्षविह्वलितात्मानः सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः ॥२९॥

ताः पुत्रं अङ्कं आरोप्य स्नेह स्नुत पयोधराः हर्ष विह्वलित आत्मानः सिषुचुः नेत्रजः जलैः ॥ २९ ॥

ताः	उन (माताओं) ने	पुत्रं	पुत्र (श्रीकृष्ण) को
स्नेह	स्नेहके कारण	अङ्कं	गोदमें
स्तुत	टपकते	आरोप्य	लेकर
पयोधराः	पयोधरवाली	नेत्रजैः	नेत्रोंके
हर्ष	हर्षसे	जलैः	(हर्ष) अश्रुसे
विह्वलित	विह्वल	सिषुचुः	सींच दिया ॥२९॥
आत्मानः	चित्त		

अथाविशत् स्वभवनं सर्वकाममनुत्तमम् ।
प्रासादा यत्र पत्नीनां सहस्राणि च षोडश ॥३०॥

अथ आविशत् स्वभवनं सर्व कामं अनुत्तमं प्रासादा यत्र पत्नीनां सहस्राणि च षोडश ॥ ३० ॥

अथ	तदनन्तर	यत्र	जिसमें
सर्व	सब	पत्नीनां	पत्नियोंके
कामं	भोगोंसे सम्पन्न	षोडशसहस्राणि	सोलह हजार
अनुत्तमं	अत्यन्त श्रेष्ठ	प्रासादा	महल
स्वभवनं	अपने भवनमें	च	थे ॥३०॥
आविशत्	प्रविष्ट हुए		

पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहानुपागतं
विलोक्य संजातमनोमहोत्सवाः ।
उत्तस्थुरारात् सहसाऽऽसनाशयात्
साकं व्रतैर्व्रीडितलोचनाननाः ॥३१॥

पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहान् उपागतं विलोक्य संजात मनः महोत्सवाः उत्तस्थुः आरात् सहसा आसन् आशयात् साकं व्रतैः व्रीडित लोचन आननाः ॥ ३१ ॥

पत्न्यः	पत्नियोंने	आसन	आसन छोड़कर
प्रोष्य	प्रवाससे लौटे	आशयात्	चित्तसे
पतिं	पतिको	व्रतैः	व्रतोंको (जो पतिके प्रवासमें जानेसे कर रही थीं)
गृहान्	अपने घरोंमें		
आरात्	निकट		
उपागतं	पहुँचा	साकं	साथ (छोड़कर)
विलोक्य	देखकर	व्रीडित	लज्जा भरे
मनः	मनमें	लोचन	नेत्र
महोत्सवाः	अत्यन्त उल्लास	आननाः	मुखवाली
संजात	उत्पन्न हुआ	उत्तस्थुः	उठ खड़ी
सहसा	सहसा		हुईं ॥३१॥

तमात्मजैर्दृष्टिभिरन्तरात्मना
दुरन्तभावाः परिरेभिरे पतिम् ।
निरुद्धमप्यास्रवदम्बु नेत्रयो-
विलज्जतीनां भृगुवर्य वैक्लवात् ॥३२॥

तं आत्मजैः दृष्टिभिः अन्तरात्मना दुरन्तभावाः परिरेभिरे पतिं निरुद्धं अपि आस्रवत् अम्बुः नेत्रयोः विलज्जतीनां भृगुवर्य वैक्लवात् ॥३२॥

भृगुवर्य	भृगुश्रेष्ठ शौनकजी !	विलज्जतीनां	बहुत लज्जित होती थीं, पर
तं	उन		
पतिं	अपने पति (श्रीकृष्ण) का	वैक्लवात्	व्याकुलताके कारण
		निरुद्धं	रोकनेपर
आत्मजैः	पुत्रोंके माध्यमसे	अपि	भी
दृष्टिभिः	नेत्रोंसे	नेत्रयोः	नेत्रोंसे
अन्तरात्मना	हृदयसे	अम्बुः	आंसू
परिरेभिरे	आलिंगत किया	आस्रवत्	निकलने लगे ॥३२॥
दुरन्तभावाः	असीम प्रेमसे		

यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगत-
स्तथापि तस्याङ्घ्रियुगं नवं नवम् ।
पदे पदे का विरमेत तत्पदा-
च्चलापि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचित् ॥३३॥

यदपि असौ पार्श्वगतः रहोगतः तथापि तस्य अंघ्रि युगं नवं नवं पदे पदे का विरमेत तत् पदात् चला अपि यत् श्रीः न जहाति कर्हिचित् ॥ ३३ ॥

यदपि	यद्यपि	श्रीः	लक्ष्मी
असौ	ये (श्रीकृष्ण)	यत्	जिनको
रहोऽजुषः	एकान्तमें	कर्हिचित्	कभी भी
पार्श्वगतः	बगलमें ही रहते थे	न	नहीं
तथापि	फिर भी	जहाति	छोड़ती
अस्य	इनके	तत्	उनके
अंघ्रि	चरण	पदात्	चरणोंका
युगं	द्वय	पदा पदा	नित्य प्राप्त
नवं नवं	नित्य नवीन लगते हैं	का	कौन
चला	चञ्चला	विरमेत्	पृथक होना चाहेगी ॥३३॥
अपि	होनेपर भी		

एवं नृपाणां क्षितिभारजन्मना-
मक्षौहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् ।
विधाय वैरं श्वसनो यथानलं
मिथो वधेनोपरतो निरायुधः ॥३४॥

एवं नृपाणां क्षितिभार जन्मनां अक्षौहिणीभिः परिवृत्त तेजसां विधाय वैरं श्वसनः यथा अनलं मिथः वधेन उपरतः निरायुधः ॥ ३४ ॥

एवं	इस प्रकार	अक्षौहिणीभिः	अक्षौहिणी (सेनाओं) से
क्षितिभार	पृथ्वीके भार रूप	परिवृत्त	घिरे होनेसे
जन्मनां	उत्पन्न		

तेजसां	तेजस्वी बने	अनलं	अग्निको बढ़ा
नृपाणां	राजाओंमें		देता है
मिथः	परस्पर	निरायुधः	(स्वयं) निरायुध
वैरं	शत्रुता		रहते
विधाय	उत्पन्न करके,	वधेन	(अनेक) वधसे
यथा	जैसे	उपरतः	उपराम
श्वसनः	फूंक मारना		होगये ॥३४॥

स एष नरलोकेऽस्मिन्नवतीर्णः स्वमायया ।
रेमे स्त्रीरत्नकूटस्थो भगवान् प्राकृतो यथा ॥३५॥

स एष नरलोके अस्मिन् अवतीर्णः स्व मायया रेमे स्त्रीरत्न कूटस्थः भगवान् प्राकृतः यथा ॥ ३५ ॥

स	वही	मायया	मायासे
कूटस्थः	कूटस्थ	अवतीर्णः	अवतरित हुए हैं ।
भगवान्	भगवान	यथा	जैसे
एष	ये	प्राकृतः	साधारण पुरुष हों
अस्मिन्	इस	स्त्रीरत्न	उत्तम स्त्रियोंके साथ
नरलोके	मनुष्य लोकमें	रेमे	विहार करते
स्व	अपनी		रहे ॥३५॥

उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहास-
व्रीडावलोकनिहतो मदनोऽपि यासाम् ।
सम्मुह्य चापमजहात्प्रददोत्तमास्ता
यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैर्न शेकुः ॥३६॥

उद्दाम भाव पिशुन अमल वल्गुहासः क्रीडा अवलोक निहतः मदनः अपि यासां संमुह्य चापं अजहात् प्रमदोत्तमाः ताः यस्य इन्द्रियं विमथितुं कुहकैः न शेकुः ॥ ३६ ॥

उद्दाम	प्रबलतम	अमल	निर्मल
भाव	प्रेमसे	वल्गु	मधुर
पिशुन	भरी	यासां	जिनकी

हास	हँसी (और)
व्रीडा	लज्जापूर्वक
अवलोक	देखनेसे
निहतः	आहत
मदनः	कामदेवने
अपि	भी
सम्मुह्य	मूर्छित होकर
चापं	(अपना) धनुष
अजहात्	फेंक दिया
ताः	वे
प्रमदोत्तमाः	श्रेष्ठ नारियाँ
कुहकैः	अपने विलास प्रयत्नोंसे
यस्य	जिनकी
इन्द्रियं	इन्द्रियोंको
विमथितुं	मथित (असंयत) करनेमें
न	नहीं
शेकुः	समर्थ हुईं ॥३६॥

तमयं मन्यते लोको ह्यसङ्गमपि सङ्गिनम् ।
आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः ॥३७॥

तं अयं मन्यते लोकः हि असङ्गं अपि संगिनं आत्मः उपमन्येनं मनुंजं व्यापृण्वानं यतः अवुधः ॥ ३७ ॥

तं	उन (भगवान श्रीकृष्ण) को
असंगं	असंग होने
अपि	पर भी
अयं	यह
लोकः	(संसारके) लोग
आत्मः	अपने
उपमन्येन	समान
व्यापृण्वानं	सर्वत्र व्यापक नियम बनाकर
संगिनं	आसक्त
मनुजं	(सामान्य) मनुष्य
मन्यते	मानते हैं
हि	क्योंकि
अवुधाः	अज्ञानी
यतः	जो हैं ॥३७॥

एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः ।
न युज्यते सदाऽऽत्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥३८॥

एतत् ईशनं ईशस्य प्रकृतिस्थः अपि तद् गुणैः न युज्यते सदा आत्मस्थैः यथा बुद्धिः तत् आश्रयाः ॥ ३८ ॥

एतत्	यही
ईशस्य	ईश्वरकी
ईशनं	ईश्वरता है
प्रकृतिस्थः	प्रकृतिमें रहकर

पि	भी	आत्मस्थैः	अपने स्वरूपमें ही
ष्	उसके		स्थित रहते हैं।
णैः	गुणोंसे	यथा	जैसे
ज्यते	संसक्त होते	तत्	उनके
त	नहीं	आश्रया	आश्रयमें रहनेवाली
सदा	नित्य	बुद्धिः	बुद्धि ॥३८॥

तं मेनिरेऽबला मूढाः स्त्रैणं चानुव्रतं रहः।
अप्रमाणविदो भर्तुरीश्वरं मतयो यथा ॥३९॥

तं मेनिरे अबला मूढाः स्त्रैणं च अनुव्रतं रहः अप्रमाण विदः भर्तुः ईश्वरं मतयः यथा ॥ ३९ ॥

यथा	जैसे	अबला	उनकी रानियोंने
मतयः	बुद्धियाँ	तं	उनको
ईश्वरं	ईश्वरको (नहीं जान	रहः	एकान्तमें
	पातीं वैसे)	अनुव्रतं	अपना अनुयायी
भर्तुः	अपने स्वामीके	च	और
प्रमाण	प्रमाण (प्रभाव) को	स्त्रैणं	स्त्रीजित
अविदः	न जाननेवाली	मेनिरे	मान लिया ॥३९॥
मूढाः	अज्ञानी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः

अथ द्वादशोऽध्यायः

शौनक उवाच–

अश्वत्थाम्नोपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णोरुतेजसा ।
उत्तराया हतो गर्भ ईशेनाजीवितः पुनः ॥१॥

अश्वत्थाम्ना उपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णाः उरु तेजसा उत्तरायाः हतः गर्भः ईशेन आजीवितः पुनः ॥ १ ॥

अश्वत्थाम्ना	अश्वत्थामाके द्वारा	हतः	मार दिया गया था
उपसृष्टेन	प्रयोग किए गये	पुनः	फिर
उरु तेजसा	अत्यन्त तेजस्वी	ईशेन	श्रीकृष्ण द्वारा
ब्रह्मशीर्ष्णाः	ब्रह्मशिरास्त्र द्वारा	आजीवितः	जिला दिया गया ॥१॥
उत्तरायाः	उत्तराका		
गर्भः	गर्भस्थ शिशु		

तस्य जन्म महाबुद्धेः कर्माणि च महात्मनः ।
निधनं च यथैवासीत्स प्रेत्य गतवान् यथा ॥२॥

तस्य जन्म महाबुद्धेः कर्माणि च महात्मनः निधनं च यथा एव आसीत् स प्रेत्य गतवान् यथा ॥ २ ॥

महाबुद्धेः	महान् बुद्धिमान सूतजी !	यथा	जैसे
		एव	भी
तस्य	उस	निधनं	मृत्यु हुई
महात्मनः	महात्माका	यथा	जैसे
जन्म	जन्म	प्रेत्य	मरकर
च	और	गतवान्	जिस गतिको गये ॥२॥
कर्माणि	कर्म		
च	एवं		

तदिदं श्रोतुमिच्छामो गदितुं यदि मन्यसे ।
ब्रूहि नः श्रद्दधानानां यस्य ज्ञानमदाच्छुकः ॥३॥

तत् इदं श्रोतुं इच्छामः गदितुं यदि मन्यसे ब्रूहि नः श्रद्दधानानां यस्य ज्ञानं अदात् शुकः ॥ ३ ॥

यस्य	जिनको	इच्छामः	हम सबको इच्छा है
शुकः	शुकदेवजीने	यदि	यदि
ज्ञानं	ज्ञान	गदितुं	कहने योग्य
अदात्	प्रदान किया	मन्यसे	आप मानते हों तो
तत्	वह	नः	हम
इदं	यह	श्रद्दधानां	श्रद्धालुओंको
श्रोतुं	सुननेकी	ब्रूहि	बतलाइये ॥३॥

सूत उवाच–

अपीपलद्धर्मराजः पितृवद् रञ्जयन् प्रजाः ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यः कृष्णपादाब्जसेवया ॥४॥

अपीपलत् धर्मराजः पितृवत् रञ्जयन् प्रजाः निस्पृहः सर्व कामेभ्यः कृष्ण पादाब्ज सेवया ॥ ४ ॥

कृष्ण	श्रीकृष्णके	धर्मराजः	युधिष्ठिर
पादाब्ज	चरणकमलोंकी	पितृवत्	पिताके समान
सेवया	सेवा (के प्रभाव) से	प्रजाः	प्रजाको
सर्व	सब	रञ्जयन्	प्रसन्न करते हुए
कामेभ्यः	कामनाओं (भोगों)से	अपीपलत्	उसका पालन करते
निस्पृहः	निस्पृह		थे ॥४॥

सम्पदः क्रतवो लोका महिषी भ्रातरो मही ।
जम्बूद्वीपाधिपत्यं च यशश्च त्रिदिवं गतम् ॥५॥

सम्पदः क्रतवः लोकाः महिषीः भ्रातरः मही जम्बूद्वीप आधिपत्यं च यशः च त्रिदिवं गतम् ॥५॥

सम्पदः	सम्पत्ति	जम्बूद्वीप	जम्बूद्वीपका
क्रतवः	यज्ञ	आधिपत्यं	स्वामित्व
लोकाः	उत्तम लोकोंको पानेका अधिकार	च	और
		त्रिदिवं	स्वर्गतक
महिषीः	पत्नी	गतं	पहुँचा
भ्रातरः	भाई	यशः	सुयश
मही	पृथ्वी	च	भी ॥५॥

किं ते कामाः सुरस्पार्हा मुकुन्दमनसो द्विजाः ।
अधिजह्रुर्मुदं राज्ञः क्षुधितस्य यथेतरे ॥६॥

किं ते कामाः सुरस्पार्हाः मुकुन्द मनसः द्विजाः अधिजह्रुः मुदं राज्ञः क्षुधितस्य यथा इतरे ॥ ६ ॥

द्विजाः	ब्राह्मणो ! (शौनकादि)	क्षुधितस्य	भूखके लिए
		यथा	जैसे
सुरस्पार्हाः	देवता भी जिनकी स्पृहा करते थे	इतरे	(भोजनके अतिरिक्त) दूसरे पदार्थ
ते	वे	किं	क्या
कामाः	भोग	मुदं	प्रसन्नता
मुकुन्द मनसः	मुकुन्दमें लगे मनवाले	अधिजह्रुः	दे सकते थे ? ॥६॥
राज्ञः	राजा युधिष्ठिरको		

मातुर्गर्भगतो वीरः स तदा भृगुनन्दन ।
ददर्श पुरुषं कञ्चिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा ॥७॥

मातुः गर्भगतः वीरः स तदा भृगुनन्दन ददर्श पुरुषं कंचित् दह्यमानः अस्त्र तेजसा ॥ ७ ॥

भृगुनन्दन	शौनकजी !	अस्त्रतेजसा	ब्रह्मास्त्रके तेजसे
मातुः	माताके	दह्यमानः	जलते हुए
गर्भ गतः	गर्भमें पहुँचा	कंचित्	किसी
स	उस	पुरुषं	पुरुषको
वीरः	वीर परीक्षितने	ददर्श	देखा ॥७॥

अङ्गुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमौलिनम् ।
अपीच्यदर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतम् ॥८॥

अंगुष्ठमात्रं अमलं स्फुरत् पुरट मौलिनं अपीच्य दर्शनं श्यामं तडित् वास समं अच्युतम् ॥ ८ ॥

अंगुष्ठमात्रं	केवल अंगूठेके बराबर	श्यामं	श्याम वर्ण
अमलं	निर्मल	तडित	बिजलीके
स्फुरत्	चमकते	समं	समान
पुरट	सोनेका	वास	वस्त्रधारी
मौलिनं	मुकुटवाला	अच्युतं	निर्विकार (अभय) ॥८॥
अपीच्य दर्शनं	अत्यन्त सुन्दर		

श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुं तप्तकाञ्चनकुण्डलम् ।
क्षतजाक्षं गदापाणिमात्मनः सर्वतोदिशम् ।
परिभ्रमन्तमुल्काभां भ्रामयन्तं गदां मुहुः ॥९॥

श्रीमत् दीर्घ चतुर्बाहुं तप्त काञ्चन कुंडलं क्षतजाक्षं गदा पाणिं आत्मनः सर्वतः दिशं परिभ्रमन्तं उल्काभां भ्रामयन्त गदां मुहुः ॥ ९ ॥

श्रीमत्	शोभाशाली	आत्मनः	अपने
दीर्घ	लम्बी	सर्वतः दिशं	सब दिशाओंमें
चतुबाहुं	चार भुजाओंवाला	उल्काभां	उल्काके समान प्रज्वलित
तप्त	तपाये हुए	परिभ्रमन्तं	घूमता हुआ
काञ्चन	स्वर्णके	मुहुः	बार-बार
कुंडलं	कुण्डल पहिने	गदां	गदाको
क्षतजाक्षं	घावके समान लाल नेत्रवाला	भ्रामयन्तं	घुमाता हुआ ॥९॥
गदापाणिं	हाथमें गदा लिए		

अस्त्रतेजः स्वगदया नीहारमिव गोपतिः ।
विधमन्तं संनिकर्षे पर्यैक्षत क इत्यसौ ॥१०॥

अस्त्र तेजः स्वगदया नीहारं इव गोपतिः विधमन्तं सन्निकर्षे परिऐक्षत् कः इति असौ । ।१० ॥

अस्त्र तेजः	ब्रह्मास्त्रके तेजको	सन्निकर्षे	अत्तन्त समीप
स्वगदया	अपनी गदासे	परि	चारों ओर
नीहारं	कुहरे	ऐक्षत	देखा
गोपतिः	सूर्यके	असौ	यह
इव	समान	कः	कौन
विधमन्तं	कष्ट करते हुए	इति	है ? ।।१०।।

विधूय तदमेयात्मा भगवान्धर्मगुब् विभुः ।
मिषतो दशमासस्य तत्रैवान्तर्दधे हरिः ।।११।।

विधूय तत् अमेय आत्मा भगवान धर्म गुव् विभुः मिषतः दशमासस्य तत्र एव अन्तर्दधे हरिः ॥ ११ ॥

तत्	वे	दशमासस्य	दस महीनेके (गर्भस्थ शिशुके)
अमेय	अप्रमेय	मिषतः	देखते देखते
आत्मा	स्वरूप	हरिः	(वे) श्रीहरि
धर्म	धर्म	तत्र	वहाँ
गुव्	रक्षक	एव	ही
भगवान्	भगवान	अन्तर्दधे	अन्तर्धान होगये ।।११।।
विभुः	सर्वव्यापक		
विधूय	(ब्रह्मास्त्रके तेजको) नष्ट करके		

ततः सर्वगुणोदर्के सानुकूलग्रहोदये ।
जज्ञे वंशधरः पाण्डोर्भूयः पाण्डुरिवौजसा ।।१२।।

व्रतः सर्वगुणः उदर्के सानुकूलः ग्रह उदये जज्ञे वंशधरः पाण्डोः भूयः पाण्डुः इव ओजसा ।। १२ ॥

ततः	तदनन्तर	सानुकूलः	सानुकूल
सर्वगुण	सर्वगुण युक्त	ग्रह	ग्रहोंके
उदर्के	कालमें	उदये	उदय होनेपर

भूयः	फिर	पाण्डोः	पाण्डुका
ओजसा	ओजसे	वंशधरः	वंश चलानेवाला
पाण्डुः	पाण्डुके	जज्ञे	उत्पन्न हुआ ॥१२॥
इव	समान		

तस्य प्रीतमना राजा विप्रैर्धौम्यकृपादिभिः ।
जातकं कारयामास वाचयित्वा च मङ्गलम् ॥१३॥

तस्य प्रीतमनाः राजाः विप्रैः धौम्य कृप आदिभिः जातकं कारयामास वाचयित्वा च मङ्गलम् ॥ १३ ॥

राजाः	राजा युधिष्ठिरने	मङ्गलं	स्वस्ति
प्रीतमना	प्रसन्न चित्त होकर	वाचयित्वा	पाठ कराके
विप्रैः	ब्राह्मण	तस्य	उस (परिक्षित) का
धौम्य	धौम्य	जातकं	जातकर्म संस्कार
कृप	कृपाचार्य	च	भी
आदिभिः	आदिकों द्वारा	कारयामास	करवाया ॥१३॥

हिरण्यं गां महीं ग्रामान् हस्त्यश्वान्नृपतिर्वरान् ।
प्रादात्स्वन्नं च विप्रेभ्यः प्रजातीर्थे सतीर्थवित् ॥१४॥

हिरण्यं गां महीं ग्रामान् हस्ति अश्वान् नृपतिः वरान् प्रादात् सुअन्नं च विप्रेभ्यः प्रजातीर्थे स तीर्थवित् ॥ १४ ॥

स	उन	महीं	भूमि
तीर्थवित्	तीर्थका मर्म जाननेवाले	ग्रामान्	गाँव
		हस्ति	हाथी
नृपतिः	राजाने	वरान्	श्रेष्ठ
प्रजातीर्थे	सन्तति जन्म रूप तीर्थ कालमें	अश्वान्	घोड़े
		च	और
विप्रेभ्यः	ब्राह्मणोंको	सुअन्नं	उत्तम भोजन
हिरण्यं	सोना	प्रादात्	प्रदान किया ॥१४॥
गां	गौयें		

तमूचुर्ब्राह्मणास्तुष्टा राजानं प्रश्रयान्वितम् ।
एष ह्यस्मिन् प्रजातन्तौ पुरूणां पौरवर्षभ ॥१५॥

तं ऊचुः ब्राह्मणाः तुष्टा राजानं प्रश्रय अन्वितं एष हि अस्मिन् प्रजा तन्तौ पुरूणां पौरव ऋषभ ॥ १५ ॥

तं	उन	ऋषभ	शिरोमणि !
प्रश्रय	विनय	एष	यह
अन्वितं	युक्त	हि	क्योंकि
राजानं	राजासे	अस्मिन्	इस
तुष्टा	सन्तुष्ट	पुरूणां	पुरुवंशकी
ब्राह्मणाः	ब्राह्मण	प्रजातन्तु	सन्तति
ऊचुः	बोले		परम्पराको ॥१५॥
पौरव	पुरुवंश		

दैवेनाप्रतिघातेन शुक्ले संस्थामुपेयुषि ।
रातो वोऽनुग्रहार्थाय विष्णुना प्रभविष्णुना ॥१६॥

दैवेन अप्रतिघातेन शुक्ले संस्थां उपेयुषि रातः वः अनुग्रहार्थं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १६ ॥

अप्रतिघातेन	दुर्निवार	अनुग्रहार्थाय	अनुग्रह करनेके लिए
दैवेन	कालके द्वारा	प्रभविष्णुना	सर्व समर्थ
शुक्ले	(इस) पवित्र वंशको	विष्णुना	श्रीकृष्णने
संस्थां	समाप्तप्राय	रातः	(इस शिशुकी)
उपेयुषि	कर देनेपर		रक्षाकी ॥१६॥
वः	आप लोगोंपर		

तस्मान्नाम्ना विष्णुरात इति लोके बृहच्छ्रवाः ।
भविष्यति न संदेहो महाभागवतो महान् ॥१७॥

तस्मात् नाम्ना विष्णुः रातः इति लोके वृहत् श्रवाः भविष्यति न संदेह महाभागवतः महान् ॥ १७ ॥

तस्मात्	इसलिए	भविष्यति	होगा
लोके	संसारमें	सन्देहः	(इसमें) सन्देह
विष्णुरातः	विष्णुरात	न	नहीं
इति	इस	महान्	महान्
नाम्ना	नामसे	महाभागवतः	महाभागवत
वृहत्	बड़े		(होगा) ॥१७॥
श्रवाः	सुयशवाला		

युधिष्ठिर उवाच-

अप्येष वंश्यान् राजर्षीन् पुण्यश्लोकान् महात्मनः ।
अनुवर्तिता स्विद्यशसा साधुवादेन सत्तमाः ॥१८॥

अपि एष वंश्यान् राजर्षीन् पुण्यश्लोकान् महात्मनः अनुवर्तितः स्वित् यशसाः साधुवादेन सत्तमाः ॥ १८ ॥

सत्तमाः	महापुरुषो !	महात्मनः	महात्मा
अपि	क्या	राजर्षीन्	राजर्षियोंके
एष	यह शिशु	वंश्यान्	वंशोंका
यशसाः	अपने सुयशसे	अनुवर्तिताः	अनुकरण करनेवाला
साधुवादेन	अच्छाइयोंसे	स्वित्	होगा ? ॥१८॥
पुण्यश्लोकान्	पवित्र कीर्ति		

ब्राह्मणा ऊचुः

पार्थ प्रजाविता साक्षादिक्ष्वाकुरिव मानवः ।
ब्रह्मण्यः सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यथा ॥१९॥

पार्थ प्रजा अविताः साक्षात् इक्ष्वाकुः इव मानवः ब्रह्मण्यः सत्यसंधः च रामः दाशरथिः यथा ॥ १९ ॥

पार्थ	युधिष्ठिर !	इक्ष्वाकुः	इक्ष्वाकु
साक्षात्	साक्षात्	इव	के समान
मानवः	मनुपुत्र	प्रजा	प्रजाका

अविता	रक्षक होगा ।	रामः	राम थे
च	और	ब्रह्मण्यः	ब्राह्मण भक्त (तथा)
यथा	जैसे	सत्यसंधः	सत्यपरायण
दाशरथिः	दशरथ नन्दन		होगा ॥१९॥

एष दाता शरण्यश्च यथा ह्यौशीनरः शिबिः ।
यशो वितनिता स्वानां दौष्यन्तिरिव यज्वनाम् ॥२०॥

एष दाता शरण्यः च यथा हि औशीनरः शिविः यशः वितन्विता स्वानां दौष्यन्तिः इव यज्वनाम् ॥ २० ॥

एष	यह	यज्वनां	यज्ञकर्ताओंमें
हि	निश्चय	दौष्यन्तिः	दुष्यन्त पुत्र भरतके
यथा	जैसे	इव	समान
औशीनरः	उशीनर देशके नरेश	स्वानां	अपने स्वजनोंका
शिविः	शिवि थे	यशः	सुयश
दाता	दानी	वितन्विता	फैलानेवाला
च	और		होगा ॥२०॥
शरण्यः	शरण देनेवाला		
	होगा ।		

धन्विनानग्रणीरेष तुल्यश्चार्जुनयोर्द्वयोः ।
हुताश इव दुर्धर्षः समुद्र इव दुस्तरः ॥२१॥

धन्विनां अग्रणीः एष तुल्यः च अर्जुनयोः द्वयोः हुताश इव दुर्धर्षः समुद्र इव दुस्तरः ॥ १ ॥

एष	यह	तुल्यः	समान
धन्विनां	धनुर्धारियोंमें	अग्रणीः	अग्रणी होगा ।
द्वयोः	दोनों*	च	और
अर्जुनयोः	अर्जुनोंके	हुताश	अग्निके

* सहस्रार्जुन और परीक्षितके पितामह अर्जुन ।

इव	समान	इव	समान
दुर्धर्ष	दुर्धर्ष	दुःस्तरः	दुस्तर होगा ॥२१॥
समुद्र	समुद्रके		

मृगेन्द्र इव विक्रान्तो निषेव्यो हिमवानिव ।
तितिक्षुर्वसुधेवासौ सहिष्णुः पितराविव ॥२२॥

मृगेन्द्र इव विक्रान्तः निषेव्यः हिमवान् इव तितीक्षुः वसुधा इव असौ सहिष्णुः पितराः इव ॥ २२ ॥

असौ	यह	वसुधा	पृथ्वीके
मृगेन्द्र	सिंहके	इव	समान
इव	समान	तितीक्षुः	तितीक्षु,
विक्रान्तः	पराक्रमी,	पितराः	माता-पिताके
हिमवान्	हिमालयके	इव	समान
इव	समान	सहिष्णुः	सहनशील
निषेव्यः	सेवन करने योग्य,		होगा ॥२२॥

पितामहसमः साम्ये प्रसादे गिरिशोपमः ।
आश्रयः सर्वभूतानां यथा देवो रमाश्रयः ॥२३॥

पितामह समः साम्ये प्रसादे गिरिश उपमः आश्रयः सर्वभूतानां यथा देवः रमाश्रयः ॥ २३ ॥

साम्ये	समतामें	रमाश्रयः	भगवान विष्णु
पितामह	ब्रह्माजीके	देवः	देव
समः	समान,	यथा	जैसे
प्रसादे	कृपा करनेमें	सर्वभूतानां	सब प्राणियोंका
गिरिश	शंकरजीके	आश्रयः	आश्रय होगा ॥२३॥
उपमः	समान,		

सर्वसद्गुणमाहात्म्ये एष कृष्णमनुव्रतः ।
रन्तिदेव इवोदारो ययातिरिव धार्मिकः ॥२४॥

सर्व सद्गुण माहात्म्ये एष कृष्णं अनुव्रतः रन्तिदेव इव उदारः ययाति इव धार्मिकः ॥ २४ ॥

एष	यह	उदारः	उदार
सर्वं	सब	रन्तिदेव	रन्तिदेवके
सद्गुण	सद्गुणोंके	इव	समान,
माहात्म्ये	माहात्म्यधारणमें	धार्मिकः	धर्मात्मा
कृष्णं	श्रीकृष्णका	ययाति	ययातिके
अनुव्रतः	अनुयायी होगा,	इव	समान होगा ॥२४॥

धृत्या बलिसमः कृष्णे प्रह्लाद इव सद्ग्रहः ।
आहर्तैषोऽश्वमेधानां वृद्धानां पर्युपासकः ॥२५॥

धृत्याः बलि समः कृष्णे प्रह्लाद इव सद्ग्रहः आहर्ता एष अश्वमेधानां वृद्धानां पर्युपासकः ॥ २५ ॥

एष	यह	प्रह्लाद	प्रह्लादके
धृत्या	धैर्यमें	इव	समान होगा ।
बलि	बलिके	अश्वमेधानां	अश्वमेध यज्ञोंका
समः	समान,	आहर्ता	करनेवाला,
कृष्णे	श्रीकृष्णके प्रति	वृद्धानां	बड़ोंका
सत् आग्रहः	दृढ़ निष्ठामें	पर्युपासकः	सेवक होगा ॥२५॥

राजर्षीणां जनयिता शास्ता चोत्पथगामिनाम् ।
निग्रहीता कलेरेष भुवो धर्मस्य कारणात् ॥२६॥

राजर्षिणां जनयिता शास्ता च उत्पथ गामिनां निगृहीता कलेः एष भुवः धर्मस्य कारणात् ॥ २६ ॥

राजर्षीणां	राजर्षियोंको	एष	यह
जनयिता	जन्म देनेवाला	भुवः	पृथ्वी (एवं)
च	और	धर्मस्य	धर्मके
उत्पथ	कुमार्गसे	कारणात्	कारणसे
गामिनां	चलनेवालोंका	कलेः	कलियुगका
शास्ता	शासन करनेवाला होगा ।	निगृहीता	नियन्त्रीण करनेवाला होगा ॥२६॥

तक्षकादात्मनो मृत्युं द्विजपुत्रोपसर्जितात् ।
प्रपत्स्यत उपश्रुत्य मुक्तसङ्गः पदं हरेः ॥२७॥

तक्षकात् आत्मनः मृत्युं द्विजपुत्रः उपसर्जितात् प्रपत्स्यत् उपश्रुत्य मुक्तसंगः पदं हरेः ॥ २७ ॥

द्विजपुत्र	ब्राह्मणकुमार द्वारा	उपश्रुत्य	सुनकर
उपसर्जितात्	(शाप देकर) उत्पन्नकी गयी	मुक्तसंगः	आसक्ति त्यागकर
		हरेः	श्रीहरिके
तक्षकात्	तक्षक द्वारा	पदं	चरणोंकी
आत्मनः	अपनी	प्रपत्स्यत्	शरण लेगा ॥२ ॥
मृत्युं	मृत्यु होना		

जिज्ञासितात्मयाथात्म्यो मुनेर्व्यासिसुतादसौ ।
हित्वेदं नृप गङ्गायां यास्यत्यद्धाकुतोभयम् ॥२८॥

जिज्ञासितं आत्म याथात्मः मुनेः व्यासुतात् असौ हित्वा इदं नृप गंगायां यास्यति अद्धा अकुतः भयम् ॥ २८ ॥

नृप	राजन् !	इदं	इस देहको
असौ	यह	गंगायां	गंगा किनारे
मुनेः	मुनि	हित्वा	त्यागकर
व्यासुतात्	शुकदेवजीसे	अद्धा	प्रत्यक्ष
आत्म	आत्माकी	अकुतः भयं	परमनिर्भय पदको
याथात्म्यः	यथार्थताकी	यास्यति	जायगा ॥२८॥
जिज्ञासितं	जिज्ञासा करके		

*सूत उवाच**–

इति राज्ञ उपादिश्य विप्रा जातककोविदाः ।
लब्धापचितयः सर्वे प्रतिजग्मुः स्वकान् गृहान् ॥२९॥

इति राज्ञः उपादिश्य विप्रा जातक कोविदाः लब्धा अपचितयः सर्वे प्रतिजग्मुः स्वकान् गृहान् ॥ २९ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इति	इस प्रकार	अपचितयः	दक्षिणा
राज्ञः	राजा युधिष्ठिरको	लब्धा	प्राप्त करके
उपादिश्य	बतलाकर	सर्वे	सब
जातक	ज्योतिष शास्त्रके	स्वकान	अपने
कोविदा	विद्वान्	गृहान्	घरोंको
विप्राः	ब्राह्मण	प्रतिजग्मुः	लौट गये ॥२९॥

स एष लोके विख्यातः परीक्षिदिति यत्प्रभुः ।
गर्भे दृष्टमनुध्यायन् परीक्षेत नरेष्विह ॥३०॥

स एष लोके विख्यातः परीक्षित् इति यत् प्रभुः गर्भे दृष्टं अनुध्यायन् परीक्षेत् नरेषु इह ॥ ३० ॥

स	वही	गर्भे	गर्भमें
एष	यह (बालक)	दृष्टं	देखे हुए (भगवान) को
लोके	संसारमें	अनुध्यायन्	बार बार ध्यान करते हुए
परीक्षित	परीक्षित	इह	यहाँ संसारमें
इति	इस नामसे	नरेषु	मनुष्योंमें
विख्यातः	प्रसिद्ध हुआ	परीक्षेत्	ढूंढ़ता रहता है ॥३
यत्	क्योंकि		
प्रभुः	इस समर्थने		

स राजपुत्रो ववृधे आशु शुक्ल इवोडुपः ।
आपूर्यमाणः पितृभिः काष्ठाभिरिव सोऽन्वहम् ॥३१॥

स राजपुत्रः ववृधे आशु शुक्ल इव उडुपः आपूर्यमाणः पितृभिः काष्ठाभिः इव सः अन्वहम् ॥ ३१ ॥

शुक्ल	शुक्ल पक्षमें	पितृभिः	पितमहों द्वारा
काष्ठाभिः इव	कलाओंसे युक्तकी भाँति	आपूर्यमाणः	लालित-पालित होता
उडुपः	चन्द्रमाके	सः	वह
इव	समान	आशु	जल्दी
स	वह	अन्वहं	प्रतिदिन
राजपुत्रः	राजकुमार	ववृधे	बढ़ने लगा ॥३१॥

यक्ष्यमाणोऽश्वमेधेन ज्ञातिद्रोहजिहासया ।
राजालब्धधनो दध्यावन्यत्र करदण्डयोः ॥३२॥

यक्ष्यमाणः अश्वमेधेन ज्ञातिद्रोह जिहासया राजा अलब्ध धनः दध्या अन्यत्र कर दण्डयोः ॥ ३२ ॥

ज्ञातिद्रोह्	जाति सम्बन्धियोंके द्रोह (वध) का	दण्डयोः	अर्थ दण्डसे
		अन्यत्र	पृथक
जिहासया	प्रायश्चित करनेके लिए	धनः	धन
		अलब्ध	न मिलनेसे
अश्वमेधेन	अश्वमेध यज्ञ	राजः	राजा युधिष्ठिर
यक्षमाणः	करनेकी इच्छा करनेपर	दध्या	चिन्ता करने लगे ॥३२॥
कर	कर (तथा)		

तदभिप्रेतमालक्ष्य भ्रातरोऽच्युतचोदिताः ।
धनं प्रहीणमाजह्रुरुदीच्यां दिशि भूरिशः ॥३३॥

तत् अभिप्रेतं आलक्ष्य भ्रातरः अच्युत चोदिताः धनं प्रहीणं आजह्रुः उदीच्यां दिशि भूरिशिः ॥ ३३ ॥

तत्	उनके	उदीच्यां	उत्तर
अभिप्रेतं	अभीष्टको	दिशि	दिशामें
आलक्ष्य	जानकर	प्रहीणं	छोड़ा हुआ
अच्युत	श्रीकृष्ण द्वारा	भूरिशः	बहुत अधिक
चोदिताः	प्रेरित	धनं	धनको
भ्रातरः	उनके भाई	आजह्रुः	ले आये ॥३३॥

तेन सम्भृतसम्भारो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
वाजिमेधैस्त्रिभिर्भीतो यज्ञैः समयजद्धरिम् ॥३४॥

तेन सम्भृत सम्भारः धर्मपुत्रः युधिष्ठिरः वाजिमेधैः त्रिभिः भीतः यज्ञैः समयजत् हरिम् ॥ ३४ ॥

तेन	उस धनसे	सम्भृत	प्रस्तुत करके
सम्भारः	सब सामग्री	धर्मपुत्रः	धर्मके पुत्र

युधिष्ठिरः	युधिष्ठिरने	वाजिमेधैः यज्ञैः	अश्वमेध यज्ञोंसे
भीतः	(युद्धमें हुई हिंसासे) डरकर	हरिं	श्रीहरिकी
		समयजत्	भली प्रकार
त्रिभिः	तीन		पूजाकी ॥३४॥

आहूतो भगवान् राज्ञा याजयित्वा द्विजैर्नृपम् ।
उवास कतिचिन्मासान् सुहृदां प्रियकाम्यया ॥३५॥

आहूतः भगवान् राज्ञा याजयित्वा द्विजैः नृपं उवास कतिचि
मासान् सुहृदां प्रिय काम्यया ॥ ३५ ॥

राज्ञा	राजा युधिष्ठिर द्वारा	सुहृदां	सुहृदोंको
आहूतः	बुलाये जानेपर	प्रियकाम्यया	प्रसन्न करनेके लि
भगवान्	श्रीकृष्ण	कतिचिन्	कुछ
द्विजैः	ब्राह्मणों द्वारा	मासान्	महीने
नृपं	राजासे	उवास	वहाँ रहे ॥३५॥
याजयित्वा	यज्ञ कराके		

ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातः कृष्णया सह बन्धुभिः ।
ययौ द्वारवतीं ब्रह्मन् सार्जुनो यदुभिर्वृतः ॥३६॥

ततः राज्ञा अभ्यनुज्ञातः कृष्णया सह बन्धुभिः ययौ द्वारवतीं ब्रह्म
सार्जुनः यदुभिः वृतैः ॥ ३६ ॥

ब्रह्मन्	शौनकजी !	सार्जुनः	अर्जुनके साथ
ततः	तदनन्तर	यदुभिः	यदुवंशियोंसे
राज्ञा	राजा युधिष्ठिरसे,	वृतैः	घिरे हुए (भगवन् श्रीकृष्ण
कृष्णया	द्रौपदीके		
सह	सहित	द्वारवतीं	द्वारिका
बन्धुभिः	बन्धु-बान्धवोंसे	ययौ	गये ॥३६॥
अभ्यनुज्ञातः	अनुमति लेकर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

सूत उवाच-

विदुरस्तीर्थयात्रायां मैत्रेयादात्मनो गतिम् ।
ज्ञात्वागाद्धास्तिनपुरं तयावाप्तविविक्तिसः ॥१॥

विदुरः तीर्थयात्रायां मैत्रेयात् आत्मनः गतिं ज्ञात्वा अगात् हास्तिनपुरं तया वाप्त विविक्तिसः ॥ १ ॥

विदुरः	विदुरजी
तीर्थयात्रायां	तीर्थयात्रामें
मैत्रेयात्	मैत्रेयजीसे
आत्मनः	आत्माका
गतिं	स्वरूप
ज्ञात्वा	जानकर,
तया	उससे
विविक्तिसः	जिज्ञासाकी
वाप्त	शान्ति होजाने पर
हास्तिनपुरं	हस्तिनापुर
अगात्	आये ॥१॥

यावतः कृतवान् प्रश्नान् क्षत्ता कौषारवाग्रतः ।
जातैकभक्तिर्गोविन्दे तेभ्यश्चोपरराम ह ॥२॥

यावतः कृतवान् प्रश्नान् क्षत्ता कौषारव अग्रतः जातः एक भक्तिः विन्दे तेभ्यः च उपरराम ह ॥ २ ॥

क्षत्ता	विदुरने
यावतः	जितने
प्रश्नान्	प्रश्न
कौषारव	मैत्रेयके
अग्रतः	सामने
कृतवान्	किये थे
गोविन्दे	गोविन्दमें
एक	अनन्य
भक्तिः	भक्ति
जातः	उत्पन्न हो जानेपर
ह	निश्चित रूपसे
तेभ्यः	उन (प्रश्नोंके उत्तर) के प्रति
च	भी
उपरराम	उपराम होगये ॥२॥

तं बन्धुमागतं दृष्ट्वा धर्मपुत्रः सहानुजः ।
धृतराष्ट्रो युयुत्सुश्च सूतः शारद्वतः पृथा ॥३॥

तं बन्धुं आगतं दृष्ट्वा धर्मपुत्रः सह अनुजः धृतराष्ट्रः युयुत्सुः च सूतः शारद्वतः पृथा ॥ ३ ॥

तं	उन	धर्मपुत्रः	युधिष्ठिर,
बन्धुं	अपने बन्धु (चचा) को	धृतराष्ट्रः	धृतराष्ट्र
		च	और
आगतं	आया	युयुत्सुः	युयुत्सु,
दृष्ट्वा	देखकर	सूतः	संजय,
अनुजः	भाइयोंके	शारद्वतः	कृपाचार्य,
सह	सहित	पृथा	कुन्ती ॥३॥

गान्धारी द्रौपदी ब्रह्मन् सुभद्रा चोत्तरा कृपी ।
अन्याश्च जामयः पाण्डोर्ज्ञातयः ससुताः स्त्रियः ॥४॥

गान्धारी द्रौपदी ब्रह्मन् सुभद्रा च उत्तरा कृपी अन्याः च जामयः पाण्डोः ज्ञातयः ससुताः स्त्रियः ॥ ४ ॥

ब्रह्मन्	शौनकजी !	च	एवं
गान्धारी	गान्धारी,	अन्याः	दूसरे
द्रौपदी	द्रौपदी,	पाण्डोः	पाण्डुके
सुभद्रा	सुभद्रा,	जामयः	परिवारके
च	और	ज्ञातयः	जातिवाले
उत्तरा	उत्तरा,	ससुताः	पुत्रोंके साथ
कृपी	कृपी,	स्त्रियः	स्त्रियोंके साथ ॥४॥

प्रत्युज्जग्मुः प्रहर्षेण प्राणं तन्व इवागतम् ।
अभिसंगम्य विधिवत् परिष्वङ्गाभिवादनैः ॥५॥

प्रतिजग्मुः प्रहर्षेण प्राणं तन्व इव आगतं अभिसंगम्य विधिवत् परिष्वंग अभिवादनैः ॥ ५ ॥

प्रहर्षेण	अत्यन्त हर्षसे	विधिवत्	विधिके अनुसार
तन्वः	शरीरमें	परिष्वंग	आलिंगन
प्राणं	प्राण	अभिवादनैः	अभिवादन आदिसे
आगतं	आगये	अभिसंगम्य	भली प्रकार
इव	के समान		मिलकर ॥५॥
प्रतिजग्मुः	(अगवानी करने) उनकी ओर गये,		

मुमुचुः प्रेमबाष्पौघं विरहौत्कण्ठ्यकातराः ।
राजा तमर्हयाञ्चक्रे कृतासनपरिग्रहम् ॥६॥

मुमुचुः प्रेम वाष्प ओघं विरह उत्कण्ठ्य कातराः राजा तं अर्हयां चक्रे कृत आसन परिग्रहम् ॥ ६ ॥

विरह	वियोग जन्म.	आसन	आसन
उत्कण्ठ्य	उत्कण्ठासे	परिग्रहं	स्वीकार
कातराः	आकुल	कृत	करके (बैठ जानेपर)
प्रेम	प्रेमके	राजा	युधिष्ठिरने
बाष्प	आंसुओंके	तं	उनकी
ओघं	प्रवाह	अर्हयां	पूजा
मुमुचुः	बहाने लगे ।	चक्रे	की ॥६॥

तं भुक्तवन्तं विश्रान्तमासीनं सुखमासने ।
प्रश्रयावनतो राजा प्राह तेषां च शृण्वताम् ॥७॥

तं भुक्तवन्तं विश्रान्तं आसीनं सुखं आसने प्रश्रय अवनतः राजा प्राह तेषां च शृण्वताम् ॥ ७ ॥

तं	उन विदुरजीके	तेषां	उन सबके
भुक्तवन्तं	भोजन करके,	च	भी
विश्रान्तं	विश्राम करके,	शृण्वतां	सुनते हुए
आसनं	आसनपर	प्रश्रय	विनयसे
सुखं	सुखपूर्वक	अवनतः	विनम्र होकर
आसने	बैठ जानेपर	प्राह	पूछा ॥७॥
राजा	युधिष्ठिरने		

युधिष्ठिर उवाच–

अपि स्मरथ नो युष्मत्पक्षच्छायासमेधितान् ।
विपद्गणाद्विषाग्न्यादेर्मोचिता यत्समातृकाः ॥८॥

अपि स्मरथ नः युष्मत् पक्षच्छाया समेधितान् विपद् गणात् विष अग्न्यादेः मोचिता यत् समातृकाः ॥ ८ ॥

नः	हम सब	विपद् गणात्	विपत्तियोंसे
युष्मत्	आपकी	यत्	क्योंकि
पक्षच्छाया	(पक्षी शावकोंकी भाँति) पंखोंकी छायासे	मोचिता	(आप द्वारा) छुड़ाये गये हैं
समेधितान्	पाले-पोषे गये हैं,	अपि	(अतः) क्या
समातृकाः	माताके साथ	स्मरथ	(कभी आप हमारा स्मरण करते थे ? ॥१८॥
विष	विष		
अग्न्यादेः	अग्नि आदि		

कया वृत्त्या वर्तितं वश्चरद्भिः क्षितिमण्डलम् ।
तीर्थानि क्षेत्रमुख्यानि सेवितानीह भूतले ॥९॥

कया वृत्त्या वर्तितं वः चरद्भिः क्षितिमण्डलं तीर्थानि क्षेत्रमुख्यानि सेवितानि इह भूतले ॥ ९ ॥

वः	आपने	इह	इस
क्षितिमण्डलं	पृथ्वीपर	भूतले	पृथ्वीपर
चरद्भिः	विचरण करते हुए	तीर्थानि	तीर्थोंमें
कया	किस	क्षेत्रमुख्यानि	मुख्य मुख्य स्थानों (किनका)
वृत्त्या	वृत्तिसे		
वर्तितं	वर्ताव (जीवन निर्वाह) किया ?	सेवितानि	सेवन किया ॥९॥

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो ।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता ॥१०॥

भवत् विधा भागवताः तीर्थीभूता स्वयं विभो तीर्थीं कुर्वन्ति तीर्थानि स्व अन्तस्थेन गदाभृताः ॥ १० ॥

विभो	प्रभो !	स्व	अपने
भवत्	आपके	अन्तस्थेन	हृदयमें
विधा	समान	गदाभृताः	भगवान गदाधरके होनेसे
भागवताः	भगवद् भक्त		
स्वयं	स्वयं ही	तीर्थानि	तीर्थोंको
तीर्थीभूताः	तीर्थ स्वरूप होकर	तीर्थीं कुर्वन्ति	तीर्थ बनातेहैं ॥१०॥

अपि नः सुहृदस्तात बान्धवाः कृष्णदेवताः ।
दृष्टाः श्रुता वा यदवः स्वपुर्या सुखमासते ॥११॥

अपि नः सुहृदः तात बान्धवाः कृष्णदेवताः दृष्टाः श्रुता वा यदवः स्व पुर्यां सुखं आसते ॥ ११ ॥

तात	चाचाजी !	दृष्टाः	(आपको) दीखे
नः	हमारे	वा	अथवा
सुहृदः	सुहृद	श्रुता	उनका समाचार (आपने) सुना ?
बान्धवाः	सम्बन्धी		
कृष्णदेवताः	श्रीकृष्ण ही जिनके देवता हैं वे	स्व	(वे) अपनी
		पुर्यां	पुरीमें
यदवः	यदुवंशी	सुखं	सुखपूर्वक
अपि	क्या	आसते	हैं ? ॥११॥

*सूत उवाच**–

इत्युक्तो धर्मराजेन सर्वं तत् समवर्णयत् ।
यथानुभूतं क्रमशो विना यदुकुलक्षयम् ॥१२॥

इति उक्तः धर्मराजेन सर्वं तत् समवर्णयत् यथा अनुभूतं क्रमशः विना यदुकुल क्षयम् ॥ १२ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इति	इस प्रकार	सर्वं	सब
धर्मराजेन	युधिष्ठिर द्वारा	यदुकुल	यदुकुलके
उक्तः	कहे (पूछे) जानेपर	क्षयं	संहारको
यथा	जैसा	विना	छोड़कर
अनुभूतं	अनुभव किया था	समवर्णयत्	भली प्रकार वर्णन
क्रमशः	क्रमशः		किया ॥१२॥
तत्	वह		

नन्वप्रियं दुर्विषहं नृणां स्वयमुपस्थितम् ।
नावेदयत् सकरुणो दुःखितान् द्रष्टुमक्षमः ॥१३॥

ननु अप्रियं दुर्विषहं नृणां स्वयं उपस्थितं न आवेदयत् स करुणः दुःखितान् द्रष्टुं अक्षमः ॥ १३ ॥

ननु	सम्भवतः	दुःखितान्	दुःखियोंको
नृणां	मनुष्योंके लिए	द्रष्टुं	देखनेमें
अप्रियं	अप्रिय,	अक्षमः	असमर्थ
दुर्विषहं	असह्य,	स करुणः	उन करुण हृदय
स्वयं	स्वयं		(विदुरजी) ने
उपस्थितं	प्रकट होनेवाली	न	नहीं
	(घटनाको)	आवेदयेत्	बतलाया ॥१३॥

कञ्चित्कालमथावात्सीत्सत्कृतो देववत्सुखम् ।
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य श्रेयस्कृत्सर्वेषां प्रीतिमावहन् ॥१४॥

कंचित् कालं अथ अवात्सीत् सत्कृतः देववत् सुखं भ्रातुः ज्येष्ठस्य श्रेयः कृत् सर्वेषां प्रीतिं आवहन् ॥ १४ ॥

अथ	फिर (विदुरजी)	सर्वेषां	सबकी
देववत्	देवताओंके समान	प्रीतिं	प्रसन्नता
सत्कृतः	सत्कार पाते हुए	आवहन्	सम्पन्न करते हुए
ज्येष्ठस्य	बड़े	कञ्चित्	कुछ
भ्रातुः	भाई (धृतराष्ट्र) का	कालं	समयतक
श्रेयः	कल्याण	सुखं	सुखपूर्वक (वहाँ)
कृत	करनेके लिए,	अवात्सीत	बसे रहे ॥१४॥

अबिभ्रदर्यमा दण्डं यथावदघकारिषु ।
यावद्दधार शूद्रत्वं शापाद्वर्षशतं यमः ॥१५॥

अविभ्रत् अर्यमा दण्डं यथावत् अघकारिषु यावत् दधार शूद्रत्वं शापात् वर्षशतं यमः ॥ १५ ॥

वर्षशतं	सौ वर्ष	अघकारिषु	पापियोंके लिए
यावत्	पर्यन्त	यथावत्	ठीक ठीक
शापात्	शापके कारण	दण्डं	दण्ड-विधान
यमः	यमराज	अर्यमा	अर्यमा
शूद्रत्वं	शूद्रत्व (विदुर रूप)	अविभ्रत्	करते रहे ॥१५॥
दधार	धारण किये रहे, (तब तक)		

युधिष्ठिरो लब्धराज्यो दृष्ट्वा पौत्रं कुलंधरम् ।
भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्मुमुदे परया श्रिया ॥१६॥

युधिष्ठिरः लब्ध राज्यः दृष्ट्वा पौत्रं कुलंधरं भ्रातृभिः लोकपालाभैः मुमुदे परया श्रिया ॥ १६ ॥

युधिष्ठिरः	युधिष्ठिर	लोकपालाभैः	लोकपालोंके समान तेजस्वी
राज्यः	राज्य		
लब्ध	पाकर,	भ्रातृभिः	भाइयोंके साथ
कुलन्धरं	कुल चलानेवाला	परया	परम
पौत्रं	पौत्र	श्रिया	सम्पत्तिसे
दृष्ट्वा	देखकर,	मुमुदे	आनन्दित हुए ॥१६॥

एवं गृहेषु सक्तानां प्रमत्तानां तदीहया ।
अत्यक्रामदविज्ञातः कालः परमदुस्तरः ॥१७॥

एवं गृहेषु सक्तानां प्रमत्तानां तत् ईहया अत्यक्रामत् अविज्ञातः कालः परम दुस्तरः ॥ १७ ॥

एवं	इस प्रकार	सक्तानां	आसक्त
गृहेषु	घरमें	तत्	उसी (गृह सुख) की

ईहया	इच्छासे	परमदुस्तरः	अत्यन्त दुस्तर
प्रमत्तानां	असावधान (पाण्डवों) का	कालः	समय (जीवन)
		अत्यक्रामत्	बीत गया ॥१७॥
अविज्ञातः	अनजानमें ही		

विदुरस्तदभिप्रेत्य धृतराष्ट्रमभाषत ।
राजन्निर्गम्यतां शीघ्रं पश्येदं भयमागतम् ॥१८॥

विदुरः तत् अभिप्रेत्य धृतराष्ट्रं अभाषत राजन् निर्गम्यता शीघ्रं पश्य इदं भयं आगतम् ॥ १८ ॥

तत्	उस (काल) को	शीघ्रं	शीघ्र
अभिप्रेत्य	पहचानकर	निर्गम्यतां	निकल चलिये,
विदुरः	विदुरजीने	इदं	इस
धृतराष्ट्रं	धृतराष्ट्रको	आगतं	आते हुए
अभाषत	कहा—	भयं	भयको
राजन्	राजन् !	पश्य	देखिये ॥१८॥

प्रतिक्रिया न यस्येह कुतश्चित्कर्हिचित्प्रभो ।
स एव भगवान् कालः सर्वेषां नः समागतः ॥१९॥

प्रतिक्रिया न यस्य इह कुतश्चित् कर्हिचित् प्रभो स एव भगवान् कालः सर्वेषां न समागतः ॥ १९ ॥

प्रभो	स्वामी !	स एव	वही
इह	इस संसारमें	भगवान्	भगवान
यस्य	जिसकी	कालः	काल
प्रतिक्रियाः	प्रतिकार	नः	हम
कुतश्चित्	कहीं भी	सर्वेषां	सबके लिए
कर्हिचित्	कभी भी	समागतः	आगये हैं ॥१९॥
न	नहीं है,		

येन चैवाभिपन्नोऽयं प्राणैः प्रियतमैरपि ।
जनः सद्यो वियुज्येत किमुतान्यैर्धनादिभिः ॥२०॥

येन च एव अभिपन्नः अयं प्राणैः प्रियतमैः अपि जनः सद्यः वियुज्येत किं उत अन्यैः धनादिभिः ॥ २० ॥

येन	जिन (काल) के	सद्यः	तत्काल
अभिपन्नः	वशीभूत होकर	च	ही
अयं	यह	वियुज्येत एव	वियुक्त हो जाता ही है,
जनः	मनुष्य	अन्यैः	दूसरे
प्रियतमैः	प्रियतम	धनादिभिः	धन-पदार्थोंकी
प्राणैः	प्राणोंसे	किंउत	चर्चा ही क्या ॥२०॥
अपि	भी		

पितृभ्रातृसुहृत्पुत्रा हतास्ते विगतं वयः ।
आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहमुपाससे ॥२१॥

पितृ भ्रातृ सुहृत् पुत्रा हताः ते विगतं वयः आत्मा च जरया ग्रस्तं परगेहं उपाससे ॥ २१ ॥

ते	आपके	च	और
पितृ	पिता (चाचा भीष्म)	आत्मा	शरीर
भ्रातृ	भाई	जरया	बुढ़ापेसे
सुहृत्	सम्बन्धी	ग्रस्तं	ग्रस्त है
पुत्रा	पुत्र	पर	शत्रुओंके
हताः	मारे गये	गेहं	घरमें
वयः	आयु	उपाससे	रह रहे हो ॥२१॥
विगतं	बीत चुकी		

अहो महीयसी जन्तोर्जीविताशा यया भवान् ।
भीमापवर्जितं पिण्डमादत्ते गृहपालवत् ॥२२॥

अहो महीयसी जन्तोः जीवित आशा यया भवाम् भीम अपवर्जितं पिण्डं आदत्ते गृहपाल वत् ॥ २२ ॥

अहो	अहो	जीवित	जीवित रहनेकी
जन्तोः	प्राणीकी	आशा	आशा

महीयसी	बलवान है	**पिण्डं**	टुकड़ा
यया	(क्योंकि) उसीके कारण	**गृहपाल वत्**	कुत्ते के समान
भवान्	आप	**आदत्ते**	स्वीकार करते हैं ॥२२॥
भीम	भीमसेनके द्वारा		
अपवर्जितं	फेंका गया		

अग्निर्निसृष्टो दत्तश्च गरो दाराश्च दूषिताः ।
हृतं क्षेत्रं धनं येषां तद्दत्तैरसुभिः कियत् ॥२३॥

अग्निः निसृष्टः दत्तः च गरः दाराः च दूषिताः हृतं क्षेत्रं धनं येषां तत् दत्तैः असुभिः कियत् ॥ २३ ॥

येषां	जिनके लिए	**दूषिताः**	अपमानित किया
अग्नि	अग्निमें	**क्षेत्रं**	(जिनकी) भूमि
निसृष्टः	जलानेका प्रयत्न किया	**धनं**	धन
		हृतं	छीन लिया
च	और	**तत्**	उनके
गरः	विष	**दत्तैः**	दिये हुए
दत्तः	दिया	**असुभिः**	प्राण (जीवन) में
च	एवं	**कियत्**	कितना (गौरव है) ॥२३॥
दाराः	(जिनकी) पत्नीको		

तस्यापि तव देहोऽयं कृपणस्य जिजीविषोः ।
परैत्यनिच्छतो जीर्णो जरया वाससी इव ॥२४॥

तस्य अपि तव देहः अयं कृपणस्य जिजीविषोः परैति अनिच्छतः जीर्णः जरया वाससी इव ॥ २४ ॥

तस्य	ऐसे	**तव**	आपका
अपि	होनेपर भी	**अयं**	यह
जिजीविषोः	जीवित रहनेकी इच्छावाले	**देहः**	शरीर
		वाससीः	वस्त्रके
कृपणस्य	कृपण	**इव**	समान

जरया	बुढ़ापेसे	अनिच्छतः	(आपको) न
जीर्णः	गल गया है		चाहनेपर भी
		परैति	मरेगा ही ॥२४॥

गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबन्धनः ।
अविज्ञातगतिर्जह्यात् स वै धीर उदाहृतः ॥२५॥

गत स्वार्थं इमं देहं विरक्तः मुक्त बन्धनः अविज्ञात गतिः जह्यात् स वै धीर उदाहृतः ॥ २५ ॥

स्वार्थं	स्वार्थ	अविज्ञात	जिसका पता न हो
गत	जब बीत गया हो	गतिः	ऐसी दशामें
	तब	जह्यात्	त्याग दे
विरक्तः	विरक्त होकर	वै	निश्चय
बन्धनः	मोहादिके बन्धन	स	वह
मुक्त	त्यागकर	धीर	धैर्यशाली
इमं	इस	उदाहृतः	कहा गया है ॥२५॥
देहं	शरीरको		

यः स्वकात्परतो वेह जातनिर्वेद आत्मवान् ।
हृदि कृत्वा हरिं गेहात्प्रव्रजेत्स नरोत्तमः ॥२६॥

यः स्वकात् परतः वा इह जात निर्वेद आत्मवान् हृदि कृत्वा हरिं गेहात् प्रव्रजेत् स नरोत्तमः ॥ २६ ॥

यः	जो	हरिं	श्रीहरिको
स्वकात्	स्वयंकी (समझसे)	हृदि	हृदयमें
वा	अथवा	कृत्वा	धारण करके
परतः	दूसरेके द्वारा	गेहात्	घरसे
	(समझानेसे)	प्रव्रजेत्	प्रव्रजन करले
इह	इस संसारसे		(घर छोड़कर
निर्वेद	वैराग्य		चल दे)
जात	उत्पन्न होकर	स	वह
आत्मवान्	धैर्यशाली	नरोत्तमः	श्रेष्ठ पुरुष है ॥२६॥

अथोदीचीं दिशं यातु स्वैरज्ञातगतिर्भवान् ।
इतोऽर्वाक्प्रायशः कालः पुंसां गुणविकर्षणः ॥२७॥

अथ उदीचीं दिशं यातु स्वैः अज्ञात गतिः भवान् इतः अर्वाक् प्रायशः कालः पुंसां गुण विकर्षणः ॥ २७ ॥

इतः	अबसे	अथ	अतएव
अर्वाक्	पीछे	स्वैः	अपने सम्बन्धियोंसे
प्रायशः	प्रायः	अज्ञात	अज्ञात
कालः	(ऐसा) काल (आनेवाला है, जो)	गतिः	गति (होकर)
		भवान्	आप
पुंसां	पुरुषोंके	उदीचीं	उत्तर
गुण	सद्गुणोंको	दिशं	दिशामें
विकर्षणः	हरण कर लेगा	यातु	चले जाइये ॥२७॥

*सूत उवाच**-

एवं राजा विदुरेणानुजेन
प्रज्ञाचक्षुर्बोधित आजमीढः ।
छित्त्वा स्वेषु स्नेहपाशान्द्रढिम्नो
निश्चक्राम भ्रातृसंदर्शिताध्वा ॥२८॥

एवं राजा विदुरेण अनुजेन प्रज्ञाचक्षुः बोधित आजमीढः छित्त्वा स्वेषु स्नेहपाशान् द्रढिम्नः निश्चक्राम भ्रातृ सन्दर्शित अध्वा ॥ २८ ॥

एवं	इस प्रकार	प्रज्ञाचक्षुः	बुद्धिरूप नेत्र पाक
अनुजेन	छोटे भाई	स्वेषु	अपनोंमें
विदुरेण	विदुर द्वारा	द्रढिम्नः	सुदृढ़
बोधित	समझाये जानेपर	स्नेहपाशान्	स्नेहके बन्धन
राजा	राजा	छित्त्वा	काटकर
आजमीढः	धृतराष्ट्र		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भ्रात्	भाई द्वारा	अध्वा	मार्गसे
सन्दर्शित	दिखलाये गये	निश्चक्राम	निकल गये ॥२८॥

पतिं प्रयान्तं सुबलस्य पुत्री
पतिव्रता चानुजगाम साध्वी ।
हिमालयं न्यस्तदण्डप्रहर्षं
मनस्विनामिव सत्सम्प्रहारः ॥२९॥

पतिं प्रयान्तं सुबलस्य पुत्री पतिव्रता च अनुजगाम साध्वी हिमालयं न्यस्त दण्ड प्रहर्षं मनस्विनां इव सत् सम्प्रहारः ॥ २९ ॥

मनस्विनां	मनस्वियों (वीर पुरुषों) पर	हिमालयं	हिमालयको
		प्रयान्तं	जाते
सत्	न्यायोचित	पतिं	पतिके पीछे
सम्प्रहारः	भरपूर आघातके	साध्वी	पवित्र
इव	समान	पतिव्रता	पतिव्रता
दण्ड	दण्ड देना	सुबलस्य	सुबलकी
न्यस्त	छोड़े हुए (संन्यासियों) को	पुत्री	पुत्री (गान्धारी)
		च	भी
प्रहर्षं	उत्तम प्रसन्नता देनेवाले	अनुजगाम	गयी ॥२९॥

अजातशत्रुः कृतमैत्रो हुताग्नि-
र्विप्रान् नत्वा तिलगोभूमिरुक्मैः ।
गृहं प्रविष्टो गुरुवन्दनाय
न चापश्यत्पितरौ सौबलीं च ॥३०॥

अजातशत्रुः कृत मैत्रः हुताग्निः विप्रान् नत्वा तिल गो भूमि रुक्मैः गृहं प्रविष्टः गुरु वन्दनाय न च अपश्यत् पितरौ सौबलीं च ॥ ३० ॥

अजातशत्रुः	युधिष्ठिर	कृत	करके
मैत्र	सूर्य सम्बन्धी कर्म (सन्ध्यादि)	हुताग्निः	अग्निहोत्र सम्पन्न करके

तिल	तिल	प्रविष्टः	प्रविष्ट हुए
गो	गौ	च	किन्तु
भूमि	पृथ्वी	पितरौ	धृतराष्ट्र एवं विदुरको
रुक्मैः	स्वर्ण दानपूर्वक	च	और
विप्रान्	ब्राह्मणोंको	सौबलीं	गान्धारीको
नत्वा	नमस्कार करके	न	नहीं
गुरु	गुरुजनोंकी	अपश्यत	देखा ॥३०॥
वन्दनाय	वन्दनाके लिए		
गृहं	भवनमें		

तत्र सञ्जयमासीनं पप्रच्छोद्विग्नमानसः ।
तत्र संजयं आसीनं पप्रच्छ उद्विग्न मानसः ।

तत्र	वहाँ	उद्विग्न	उद्विग्न
आसीनं	बैठे हुए	मानसः	चित्त
संजयं	संजयसे	पप्रच्छ	पूछा

युधिष्ठिर उवाच*–

गावल्गणे क्व नस्तातो वृद्धो हीनश्च नेत्रयोः ॥३१॥
गावल्गणे क्व नः तातः वृद्धः हीनः च नेत्रयोः ॥ ३१ ॥

गावल्गणे	संजय !	हीनः	रहित
वृद्धः	वृद्ध	नः	हमारे
च	और	तातः	ताऊजी
नेत्रयोः	नेत्रोंसे	क्व	कहाँ है ? ॥३१॥

अम्बा च हतपुत्राऽऽर्ता पितृव्यःक्व गतः सुहृत् ।
अपि मय्यकृतप्रज्ञे हतबन्धुः स भार्यया ।
आशंसमानः शमलं गङ्गायां दुःखितोऽपतत् ॥३२॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अम्बा च हतपुत्र आर्ता पितृव्यः क्व गतः सुहृत् अपि मयि अकृत प्रज्ञे हत बन्धुः स भार्यया आशंसमानः शमलं गङ्गायां दुःखितः अपतत् ॥३ ॥

च	और	अपि	कहीं
हतपुत्र	पुत्रोंके मारे जानेसे	मयि	मुझ
आर्ता	दुःखिनी	अकृतप्रज्ञे	अज्ञानीसे (किसी)
अम्बा	अम्बा गान्धारी	शमलं	अपराधकी
सुहृत्	हितैषी	आशंसमानः	आशङ्का करके
पितृव्यः	चाचा विदुर	दुःखितः	दुःखी होकर
क्व	कहाँ	गङ्गायां	गङ्गामें (तो नहीं)
गतः	गए	अपतत्	कूद पड़े ? ॥३२॥

पितर्युपरते पाण्डौ सर्वान्नः सुहृदः शिशून् ।
अरक्षतां व्यसनतः पितृव्यौ क्व गतावितः ॥३३॥

पितरि उपरते पाण्डौ सर्वान् नः सुहृदः शिशून् अरक्षतां व्यसनतः पितृव्यौ क्व गता इत ॥ ३३ ॥

पितरि	पिता	अरक्षतां	रक्षा करनेवाले
पाण्डौ	पाण्डुके	सुहृदः	स्नेहशील
उपरते	मर जानेपर	पितृव्यौ	दोनों ताऊ-चाचा
नः	हम	इतः	यहाँसे
सर्वान्	सब	क्व	कहां
शिशून्	शिशुओंकी	गता	गये ॥३३॥
व्यसनतः	विपत्तियोंसे		

सूत उवाच–

कृपया स्नेहवैक्लव्यात्सूतो विरहकर्शितः ।
आत्मेश्वरमचक्षाणो न प्रत्याहातिपीडितः ॥३४॥

कृपया स्नेह वैक्लव्यात् सूतः विरहकर्शितः आत्म ईश्वरं अचक्षाणः न प्रत्याह पीडितः ॥ ३४ ॥

सूतः	संजय	वैक्लव्यात्	व्याकुलतासे
आत्म	अपने	विरह	वियोग
ईश्वरं	स्वामीको	कर्शितः	चिन्तित
अचक्षाणः	न देखकर	पीडितः	दुःखी
कृपया	कृपासे	न	नहीं
स्नेह	स्नेहकी	प्रत्याह	उत्तर दे सका ॥३४॥

विमृज्याश्रूणि पाणिभ्यां विष्टभ्यात्मानमात्मना ।
अजातशत्रुं प्रत्यूचे प्रभोः पादावनुस्मरन् ॥३५॥

विमृज्य अश्रूणि पाणिभ्यां विष्टभ्य आत्मानं आत्मना अजातशत्रुं प्रत्यूचे प्रभोः पादाः अनुस्मरन् ॥ ३५ ॥

अश्रूणि	आँसुओंको	प्रभोः	स्वामीके
पाणिभ्यां	हाथोंसे	पादाः	चरणोंको
विमृज्य	पोंछकर	अनुस्मरन्	बार बार स्मरण करते हुए
आत्मना	अपने आपसे		
आत्मानं	चित्तको	अजातशत्रुं	युधिष्ठिरको
विष्टभ्य	सम्हालकर	प्रत्यूचे	उत्तर दिया ॥३६॥

सञ्जय उवाच–

नाहं वेद व्यवसितं पित्रोर्वः कुलनन्दन ।
गान्धार्या वा महाबाहो मुषितोऽस्मि महात्मभिः ॥३६॥

न अहं वेद व्यवसितं पित्रोः वः कुलनन्दन गान्धार्न्या वा महाबाहो मुषितः अस्मि महात्मभिः ॥ ३७ ॥

कुलनन्दन	कुरुकुलनन्दन	अहं	मैं
महाबाहो	महाबाहो !	न	नहीं
वः	आपके	वेद	जानता
पित्रोः	ताऊ-चाचा	महात्मभिः	उन महात्माओं द्वारा
वा	अथवा	मुषितः	ठगा हुआ
गान्धार्या	गान्धारीका	अस्मि	हूँ ॥३६॥
व्यवसितं	निश्चय		

*सूत उवाच**–

अथाजगाम भगवान् नारदः सहतुम्बुरुः ।
प्रत्युत्थायाभिवाद्याह सानुजोऽभ्यर्चयन्निव ॥३७॥

अथ आजगाम भगवान् नारदः सह तुम्बुरुः प्रतिउत्थाय अभिवाद्य आह सानुजः अभ्यर्चयन् इव ॥ ३७ ॥

अथ	तदन्तर	प्रति	स्वागतमें
भगवान्	भगवान	उत्थाय	उठकर
नारदः	नारदजी	अभिवाद्य	प्रणाम करके
तुम्बुरुः	तुम्बुरूके	अभ्यर्चयन्	पूजा करते
सह	साथ	इव	से
आजगाम	आये	आह	(युधिष्ठिर)
सानुजः	भाइयोंके साथ		बोले ॥३७॥

युधिष्ठिर उवाच–

नाहं वेद गतिं पित्रोर्भगवन् क्व गतावितः ।
अम्बा वा हतपुत्राऽऽर्ता क्व गता च तपस्विनी ॥३८॥

न अहं वेद गतिं पित्रोः भगवन् क्व गताः इतः अम्बाः वा हतपुत्र आर्ता क्व गता च तपस्विनी ॥ ३८ ॥

भगवन्	भगवन्	गताः	गये ?
पित्रोः	ताऊ-चाचाकी	वा	अथवा
गतिं	अवस्था	हतपुत्र	पुत्रोंके मारे जानेसे
अहं	मैं	आर्ता	दुःखी
न	नहीं	तपस्विनी	तपस्विनी
वेद	जानता	अम्बा	गान्धारी
इतः	यहांसे	क्व	कहाँ
क्व	कहाँ	गता	गयीं ? ॥३८॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है; किन्तु इसे 'संजय उवाच' में लिया नहीं जा सकता ।

कर्णधार इवापारे भगवान् पारदर्शकः ।

कर्णधार इव अपारे भगवान् पार दर्शकः ।

अपारे	अपारमें	इव	समान
भगवान्	भगवन् आप ही	पार	पार
कर्णधार	कर्णधारके	दर्शकः	दिखलानेवाले हैं ।

*सूत उवाच**–

अथाबभाषे भगवान् नारदो मुनिसत्तमः ॥३९॥

अथ आबभाषे भगवान् नारदः मुनि सत्तमः ॥ ३९ ॥

अथ	तब	सत्तमः	श्रेष्ठ
भगवान्	भगवान्	नारदः	नारद
मुनि	मुनि	आबभाषे	बोले ॥३९॥

*नारद उवाच**–

मा कंचन शुचो राजन् यदीश्वरवशं जगत् ।
लोकाः सपाला यस्येमे वहन्ति बलिमीशितुः ।
स संयुनक्ति भूतानि स एव वियुनक्ति च ॥४०॥

मा कंचन शुचः राजन् यत् ईश्वर वशं जगत् लोकाः सपाला यस्य इमे वहन्ति बलिं ईशितुः स संयुनक्ति भूतानि स एव विनयुक्ति च ॥ ४० ॥

राजन्	राजन्	वशं	वशमें है
कंचन	किसीके लिए	लोकाः	सब लोक
शुचः	शोक	सपाला	अपने पालकोंके साथ
मा	मत करो	यस्य	जिस
यत्	क्योंकि	ईशितुः	संचालकको
जगत्	संसार	बलिं	उपहार
ईश्वर	ईश्वरके	वहन्ति	देते हैं

* यह 'उवाच' अन्य किसी प्रतिमें नहीं हैं ।

स	वही	एव	ही
भूतानि	प्राणियोंको	प्रियुनक्ति	वियुक्त
संयुनक्ति	मिलाता है,	च	भी करता है ॥४०॥
स	वह		

यथा गावो नसि प्रोतास्तन्त्यां बद्धाः स्वदामभिः ।
वाक्तन्त्यां नामभिर्बद्धा वहन्ति बलिमीशितुः ॥४१॥

यथा गावः नसि प्रोताः तन्त्यां बद्धाः स्वदामभिः वाक् तन्त्यां नामभिः बद्धाः वहन्ति बलिं ईशितुः ॥ ४१ ॥

यथा	जैसे	वाक्	वेदवाणी रूप
गावः	बैल	नामभिः	अनेक नामों
स्व	अपनी		(की मर्यादा) की
दामभिः	रस्सियोंसे	तन्त्यां	रस्सीसे
नसि	नाकमें	बद्धाः	बँधे (मनुष्य)
प्रोताः	नाथे	ईशुतुः	ईश्वरके
तन्त्यां	बड़ी रस्सीसे	बलिं	उपहार
बद्धाः	बँधे होते हैं	वहन्ति	ढोते हैं ॥४१॥

यथा क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमाविह ।
इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम् ॥४२॥

यथा क्रीडा उपस्कराणां संयोग विगमः इह इच्छया क्रीडुतः स्यातां तथा एव ईशेच्छया नृणाम् ॥ ४२ ॥

इह	संसारमें	इच्छया	ईच्छानुसार
यथा	जैसे	स्यातां	होता है
क्रीडा	खेलके	तथा	वैसे
उपस्कराणां	खिलौनोंका	एव	ही
संयोग	परस्पर मिलना	नृणां	मनुष्योंका
वा	अथवा	ईशेच्छया	ईश्वरकी
विगमः	वियोग		इच्छानुसार ॥४२॥
क्रीडुतुः	खेलनेवालेकी		

यन्मन्यसे ध्रुवं लोकमध्रुवं वा न चोभयम् ।
सर्वथा न हि शोच्यास्ते स्नेहादन्यत्र मोहजात् ॥४३॥

यत् मन्यसे ध्रुवं लोकं अध्रुवं वा न च उभयं सर्वथा न हि शोच्याः ते स्नेहात् अन्यत्र मोहजात् ॥ ४२ ॥

यत्	जो	च	ही है ।
लोकं	लोगोंको	हि	क्योंकि
ध्रुवं	नित्य	मोहजात्	अज्ञानसे उत्पन्न
मन्यसे	मानते हो	स्नेहात्	स्नेहको छोड़कर
वा	अथवा	ते	वे
अध्रुवं	अनित्य	सर्वथा	सर्वथा
उभयं	दोनों	शोच्याः	शोचनीय
न	नहीं	न	नहीं हैं ॥४३॥

तस्माज्जह्यङ्ग वैक्लव्यमज्ञानकृतमात्मनः ।
कथं त्वनाथाः कृपणा वर्तेरंस्ते च मां विना ॥४४॥

तस्मात् जहि अंग वैक्यव्यं अज्ञान कृतः आत्मनः कथ तु अनाथाः कृपणा वर्तेरन् ते मां विना ॥ ४४ ॥

तस्मात्	इसलिए	ते	वे
अंग	प्रिय युधिष्ठिर	अनाथाः	अनाथ
आत्मनः	अपने	कृपणाः	असहाय
अज्ञान	अज्ञानसे	मां	मेरे
कृतः	उत्पन्न	विना	विना
वैक्लव्यं	व्याकुलताको	कथं	कैसे
जहि	त्याग दो	वर्तेरन्	रहेंगे ॥४४॥
तु	कि		

कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः ।
कथमन्यांस्तु गोपायेत्सर्पग्रस्तो यथा परम् ॥४५॥

काल कर्म गुण आधीनः देहः अयं पाञ्चभौतिकः कथं अन्यान् गोपायेत् सर्पग्रस्तः यथा परम् ॥ ४५ ॥

काल	काल	अन्यान्	दूसरोंकी
कर्म	कर्म	तु	तो
गुण	गुण	कथं	कैसे
अधीनः	के परतन्त्र	गोपायेत्	रक्षा करेगा
अयं	यह	यथा	जैसे
पाञ्चभौतिकः	पाञ्चभौतिक	सर्पग्रस्तः	सर्पसे पकड़ा
देहः	देह	परं	दूसरेकी ॥४५॥

अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम् ।
फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम् ॥४६॥

अहस्तानि सहस्तानां अपदानि चतुष्पदां फल्गूनि तत्र महतां जीवः जीवस्य जीवनम् ॥ ४६ ॥

अहस्तानि	बिना हाथवाले	फल्गूनि	छोटे
सहस्तानां	हाथवालोंके,	महतां	बड़ोंके (इस प्रकार)
अपदानि	बिना पैरवाले (तृणादि)	जीवः	जीव ही
		जीवस्य	जीवोंके
चतुष्पदां	चौपायोंके	जीवनं	जीवन-निर्वाहके
तत्र	उसमें भी		साधन हैं ॥४६॥

तदिदं भगवान् राजन्नेक आत्माऽऽत्मनां स्वदृक् ।
अन्तरोऽनन्तरो भाति पश्य तं माययोरुधा ॥४७॥

तत् इदं भगवान् राजन् एकः आत्मा आत्मनां स्वदृक् अन्तरः अनन्तरः भाति पश्य तं मायया उरुधा ॥ ४७ ॥

तत्	अतः	अन्तरः	भीतर
राजन्	राजन् !	अनन्तर	बाहर
इदं	ये	भाति	प्रकाशित हो रहे हैं
भगवान्	भगवान	तं	उनको
एकः	अद्वितीय	मायया	अपनी मायासे
स्वदृक्	स्वयं प्रकाश	उरुधा	बहुत हुए
आत्मा	अपने आप	पश्य	देखो ॥४७॥
आत्मनां	सब देहधारियोंके		

सोऽयमद्य महाराज भगवान् भूतभावनः ।
कालरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभावाय सुरद्विषाम् ॥४८॥

सः अयं अद्य महाराज भगवान् भूतभावनः कालरूपः अवतीर्णः अस्यां अभावाय सुरद्विषाम् ॥ ४८ ॥

महाराज	महाराज	अस्यां	इस पृथ्वीपर
सः	वही	सुरद्विषां	देवद्रोहियोंके
अयं	ये	अभावाय	विनाशके लिए
भूतभावनः	प्राणियोंको जीवन देनेवाले	कालरूपः	कालरूपसे
भगवान्	भगवानने	अवतीर्णः	अवतार लिए हैं ॥४८॥
अद्य	इस समय		

निष्पादितं देवकृत्यमवशेषं प्रतीक्षते ।
तावद् यूयमवेक्षध्वं भवेद् यावदिहेश्वरः ॥४९॥

निष्पादितं देवकृत्यं अवशेषं प्रतीक्षते तावत् यूयं अवेक्षध्वं भवेद् यावत् इह ईश्वरः ॥ ४९ ॥

देवकृत्यं	देवताओंका काम (उन्होंने)	ईश्वरः	ईश्वरः
निष्पादितं	पूरा कर दिया है,	इह	इस पृथ्वीपर
अवशेषं	कुछ थोड़े बचेकी	भवेत्	रहते हैं
प्रतीक्षते	प्रतीक्षा कर रहे हैं,	तावत्	तबतक
यूयं	तुम लोग	अवेक्षध्वं	(उनकी) प्रतीक्षा करो ॥४९॥
यावत्	जबतक		

धृतराष्ट्रः सह भ्रात्रा गान्धार्या च स्वभार्यया ।
दक्षिणेन हिमवत ऋषीणामाश्रमं गतः ॥५०॥

धृतराष्ट्रः सह भ्रात्रा गान्धार्या च स्वभार्यया दक्षिणेन हिमवत ऋषीणां आश्रमं गतः ॥ ५० ॥

धृतराष्ट्रः	धृतराष्ट्र	स्वभार्यया	अपनी पत्नी
भ्रात्रा	भाई	गान्धार्या	गान्धारीके

ह	साथ	ऋषीणां	ऋषियोंके
हिमवता	हिमालयके	आश्रमं	आश्रममें
क्षिणेन	दक्षिणी भागमें	गतः	गये हैं ॥५०॥

स्रोतोभिः सप्तभिर्या वै स्वर्धुनी सप्तधा व्यधात् ।
सप्तानां प्रीतये नाना सप्तस्रोतः प्रचक्षते ॥५१॥

स्रोतोभिः सप्तभिः या वै स्वर्धुनी सप्तधा व्यधात् सप्तानां प्रीतये नाना सप्तस्रोतः प्रचक्षते ॥ ५१ ॥

या	जिस स्थानको	सप्तधा	सात भागोंमें
वै	निश्चय	व्यधात्	विभक्त कर दिया है
सप्तानां	सप्तर्षियोंको	नाना	उस अनेक विभक्त
प्रीतये	प्रसन्न करनेके लिए		स्थानको
स्वर्धुनी	सुरसरिने	सप्तस्रोतः	सप्तस्रोत
सप्तभिः	सात	प्रचक्षते	कहा जाता है ॥५१॥
स्रोतोभिः	धाराओंसे		

स्नात्वानुसवनं तस्मिन्हुत्वा चाग्नीन्यथाविधि ।
अब्भक्ष उपशान्तात्मा स आस्ते विगतैषणः ॥५२॥

स्नात्वा अनुसवनं तस्मिन् हुत्वा च अग्नीन् यथाविधि अप्भक्ष उपशान्त आत्मा स आस्ते विगत ईषणः ॥ ५२ ॥

तस्मिन्	उन गंगाजीमें	स	वे
अनुसवनं	तीनों समय	अप्	जल (मात्र)
स्नात्वा	स्नान करके	भक्षः	पीकर
च	और	ईषणः	इच्छाओंको
यथाविधि	विधिपूर्वक	विगत	त्यागकर
अग्नीन	अग्नियोंमें	आस्ते	हैं ॥५२॥
हुत्वा	हवन करके		

जितासनो जितश्वासः प्रत्याहृतषडिन्द्रियः ।
हरिभावनया ध्वस्तरजःसत्त्वतमोमलः ॥५३॥

जित आसनः जित श्वासः प्रत्याहृत षडिन्द्रियः हरिभावनया ध्वस्त रजः सत्त्व तमः मलः ॥ ५३ ॥

आसनः	आसन		लिया) है
जित	जीत लिया है	हरिभावनया	भगवानकी भावना (धारणा) से
श्वासः	श्वासपर		
जित	जय कर लिया है	रजः	रजोगुण
षडिन्द्रियः	छहो इन्द्रियों (पाँच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन) को	सत्त्व	सतोगुण
		तमः	तमोगुणके
		मलः	मल
प्रत्याहृतः	भीतर खींच लिया (प्रत्याहार कर	ध्वस्त	नष्ट होगये हैं ॥५३॥

विज्ञानात्मनि संयोज्य क्षेत्रज्ञे प्रविलाप्य तम् ।
ब्रह्मण्यात्मानमाधारे घटाम्बरमिवाम्बरे ॥५४॥

विज्ञान आत्मनि संयोज्य क्षेत्रज्ञे प्रविलाप्यतं ब्रह्मणि आत्मानं आधारे घटाम्बरं इव अम्बरे ॥ ५४ ॥

विज्ञान	बुद्धिको	अम्बरे	आकाशमें
आत्मनि	अहंकारसे	घटाम्बर	घटाकाशके
संयोज्य	संयुक्त करके	इव	समान
तं	उसे	आत्मानं	ब्रह्मके
क्षेत्रज्ञे	क्षेत्रज्ञमें	आधारे	आधरसे (ब्रह्ममा होगये ॥५४॥
प्रविलाप्य	विलीन कर दिया		

ध्वस्तमायागुणोदर्को निरुद्धकरणाशयः ।
निर्वर्तिताखिलाहार आस्ते स्थाणुरिवाचलः ।
तस्यान्तरायो मैवाभूः संन्यस्ताखिलकर्मणः ॥५५॥

ध्वस्त माया गुण उदर्कः निरुद्ध करण आशयः निर्वर्तित अखि आहार आस्ते स्थाणुः इव अचलः तस्यः अन्तरायः मैवं अभूः संन्यस्त अखि कर्मणः ॥ ५५ ॥

आशयः	अन्तःकरणका	इव	के समान
निरुद्ध	निरोध करके	अचलः	अचल
माया	मायाके	आस्ते	होगये हैं
गुण	गुणोंके	तस्य	उन
उदर्कः	विकारोंको	अखिल	सब
ध्वस्त	समाप्त कर दिया है	कर्मणः	कर्मोंको
अखिल	सब (रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द)	संन्यस्त	छोड़े हुएके लिए
		अन्तरायः	विघ्न
आहार	आहार	मंवं	मत
निर्वर्वर्तित	छोड़कर	अभूः	होओ ॥५५॥
स्थाणुः	ठूंठ		

स वा अद्यतनाद्व राजन् परतः पञ्चमेऽहनि ।
कलेवरं हास्यति स्वं तच्च भस्मीभविष्यति ॥५६॥

स वा अद्यतनात् राजन् परतः पञ्चमे अहनि कलेवरं हास्यति स्वं तत् च भस्मीभविष्यति ॥ ५६ ॥

राजन्	राजन्	स्वं	अपने
स	वह	कलेवरं	शरीरको
वा	भी	हास्यतिस्म	छोड़ देंगे
अद्यतनात्	आजसे	तत्	वह
परतः	बादके	च	भी
पंचमे	पाँचवें	भस्मीभविष्यति	भस्म हो जायगा ॥५६॥
अहनि	दिन		

दह्यमानेऽग्निभिर्देहे पत्युः पत्नी सहोटजे ।
बहिः स्थिता पतिं साध्वी तमग्निमनु वेक्ष्यति ॥५७॥

दह्यमाने अग्निभिः देहे पत्युः सह उटजे बहिः स्थिता पतिं साध्वी तमग्निं अनुवेक्ष्यति ॥ ५७ ॥

अग्निभिः	अग्निसे	सह	साथ
उटजे	झोपड़ीके	पत्युः	पतिके

देहे	शरीरके	पतिं	पतिके
दह्यमाने	जलते हुए	अनु	पीछे
वह्निः	बाहर	तमग्निं	उसी अग्निमें
स्थिता	स्थित	वेक्ष्यति	प्रवेश कर
साध्वी	पतिव्रता गान्धारी		जायगी ॥५७॥

विदुरस्तु तदाश्चर्यं निशाम्य कुरुनन्दन ।
हर्षशोकयुतस्तस्माद् गन्ता तीर्थनिषेवकः ॥५८॥

विदुरः तु तत् आश्चर्यं निशाम्य कुरुनन्दन हर्ष शोक युतः तस्माद् गन्ता तीर्थ निषेवकः ॥ ५८ ॥

कुरुनन्दन	कुरुनन्दन !	शोक	शोक (उनके
तत्	वह		वियोगसे)
आश्चर्यं	आश्चर्य	युतः	युक्त होकर
निशाम्य	देखकर	तीर्थं	तीर्थोंके
विदुरः	विदुर	निषेवकः	सेवनकी इच्छावाले
तु	तो	गन्ता	चले जानेवाले
तस्मात्	उससे		हैं ॥५८॥
हर्ष	हर्ष (बड़े भाईकी सद्गतिसे)		

*सूत उवाच**–

इत्युक्त्वाथारुहत् स्वर्गं नारदः सहतुम्बुरुः ।
युधिष्ठिरो वचस्तस्य हृदि कृत्वाजहाच्छुचः ॥५९॥

इति उक्त्वा अथ आरुहत् स्वर्गं नारदः सह तुम्बुरुः युधिष्ठिरः वचः तस्य हृदि कृत्वा जहात् शुचः ॥ ५९ ॥

---

* यह उवाच अन्य किसी प्रतिमें नहीं हैं ।

इति	ऐसा	युधिष्ठिरः	युधिष्ठिरने
उक्त्वा	कहकर	तस्य	उनके
अथ	तदनन्तर	वचः	वचनोंको
नारदः	देवर्षि नारद	हृदि	हृदयमें
तुम्बुरुः	तुम्बुरूके	कृत्वा	धारण करके
सह	साथ	शुचः	शोकको
स्वर्गं	स्वर्ग	जहात्	छोड़ दिया ॥५८॥
आरुहत्	चले गये।		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

सूत उवाच–

सम्प्रस्थिते द्वारकायां जिष्णौ बन्धुदिदृक्षया ।
ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥१॥

सम्प्रस्थिते द्वारकायां जिष्णौ बन्धु दिदृक्षया ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥ १ ॥

जिष्णौ	अर्जुनके	च	भी
बन्धु	सम्बन्धियोंको	विचेष्टितं	विशेष चेष्टा (इच्छा)
दिदृक्षया	देखनेकी इच्छासे		
च	और	ज्ञातुं	जाननेके लिए
पुण्यश्लोकस्य	पवित्र कीर्ति	द्वारकायां	द्वारिकाको
कृष्णस्य	श्रीकृष्णकी	सम्प्रस्थिते	चले जानेपर ॥१॥

व्यतीताः कतिचिन्मासास्तदा नायात्ततोऽर्जुनः ।
ददर्श घोररूपाणि निमित्तानि कुरूद्वहः ॥२॥

व्यतीताः कतचित् मासाः तदा न आयात् ततः अर्जुनः ददर्श घोररूपाणि निमित्तानि कुरूद्वहः ॥ २ ॥

तदा	जब	न	नहीं
कतचित्	कुछ	आयात्	लौटे
मासाः	महीने	कुरूद्वहः	युधिष्ठिरने
व्यतीताः	बीत गये	घोररूपाणि	घोर रूपवाले
ततः	वहाँ (द्वारिका) से	निमितानि	अपशकुनोंको
अर्जुनः	अर्जुन	ददर्श	देखा ॥२॥

कालस्य च गतिं रौद्रां विपर्यस्तर्तुधर्मिणः ।
पापीयसीं नृणां वार्तां क्रोधलोभानृतात्मनाम् ॥३॥

कालस्य च गतिं रौद्रां विपर्ययः तु ऋतु धर्मिणः पापीयसीं नृणां वार्तां क्रोध लोभ अनृत आत्मनाम् ॥ ३ ॥

च	और	तु	भी (देखा)
कालस्य	समयकी	क्रोध	क्रोध
रौद्रां	उग्र	लोभ	लोभ
गतिं	गतिको (देखा)	अनृत	झूठ
ऋतुधर्मिणां	ऋतु धर्मियों (जो पुष्प,फल, पशु आदि निश्चित समय पुष्प-फल देते या बच्चे देते हैं उन) का	आत्मनां	युक्त चित्तवाले
		नृणां	मनुष्योंकी
		पापीयसीं	पापयुक्त
		वार्तां	आजीविका (देखा) ॥३॥
विपर्ययः	अनियमित होजाना		

जिह्मप्रायं व्यवहृतं शाठ्यमिश्रं च सौहृदम् ।
पितृमातृसुहृद्भ्रातृदम्पतीनां च कल्कनम् ॥४॥

जिह्मप्रायं व्यवहृतं शाठ्यमिश्रं च सौहृदं पितृ मातृ सुहृत् भ्रातृ दम्पतीनां च कल्कनम् ॥ ४ ॥

व्यवहृतं	व्यवहार	पितृ	पिता
जिह्मप्रायं	प्रायः कपटपूर्ण (होता था)	मातृ	माता
		सुहृत	मित्र-सम्बन्धी
च	और	भ्रातृ	भाई
सौहृद	मित्रता	दम्पतीनां	पति-पत्नीमें
शाठ्यमिश्रं	शठता (स्वार्थ) से मिली हुई	कल्कनं	परस्पर कलह होता था ॥४॥
च	तथा		

निमित्तान्यत्यरिष्टानि काले त्वनुगते नृणाम् ।
लोभाद्यधर्मप्रकृतिं दृष्ट्वोवाचानुजं नृपः ॥५॥

निमित्तानि अति अरिष्टानि काले तु अनुगते नृणां लोभात् अधर्म प्रकृतिं दृष्ट्वा उवाच अनुजं नृपः ॥ ५ ॥

अति	अत्यन्त	अधर्म	अधर्म करनेका
अरिष्टानि	अमंगलजनक	प्रकृतिं	स्वभाव
निमित्तानि	अपशकुनोंको,	दृष्ट्वा	देखकर
काले	कलिकालके	अनुजं	छोटे भाई
तु	निश्चित		(भीमसेन) से
अनुगते	आ जानेसे	नृपः	राजा युधिष्ठिर
नृणां	मनुष्योंको	उवाच	बोले ॥५॥
लोभात्	लोभके कारण		

युधिष्ठिर उवाच–

सम्प्रेषितो द्वारकायां जिष्णुर्बन्धुदिदृक्षया ।
ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥६॥

सम्प्रेषितः द्वारकायां जिष्णुः बन्धु दिदृक्षया ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥ ६ ॥

जिष्णुः	अर्जुनको	च	भी
बन्धु	सम्बन्धियोंको	विचेष्टितं	विशेष प्रयत्नको
दिदृक्षया	देखनेकी इच्छासे	ज्ञातुं	जाननेकी इच्छासे
च	और	द्वारकायां	द्वारिका
पुण्यश्लोकस्य	पवित्र कीर्ति	सम्प्रेषितः	भेजा था ॥६॥
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके		

गताः सप्ताधुना मासा भीमसेन तवानुजः ।
नायाति कस्य वा हेतोर्नाहं वेदेदमञ्जसा ॥७॥

गताः सप्त अधुना मासा भीमसेन तव अनुजः न आयाति कस्य वा हेतोः न अहं वेद इदं अञ्जसा ॥ ७ ॥

अधुना	अबतक	भीमसेन	भीमसेन !
सप्त	सात	तव	तुम्हारे
मासा	महीने	अनुजः	छोटे भाई
गताः	बीत चुके	कस्य	किस

वा	प्रकारके	अहं	मैं
हेतोः	कारणसे	अञ्जसा	ठीक ठीक
न	नहीं	न	नहीं
आयाति	लौटे	वेद	जानता ॥७॥
इदं	यह		

अपि देवर्षिणाऽऽदिष्टः स कालोऽयमुपस्थितः ।
यदाऽऽत्मनोऽङ्गमाक्रीडं भगवानुत्सिसृक्षति ॥८॥

अपि देवर्षिणा आदिष्टः स कालः अयं उपस्थितः यदा आत्मनः अङ्गं आक्रीडं भगवान् उत्सिसृक्षति ॥ ८ ॥

अपि	कहीं	यदा	जब
देवर्षिणा	नारदजी द्वारा	भगवान्	श्रीकृष्ण
आदिष्टः	सूचित	आत्मनः	अपना
स	वह	आक्रीडं	लीला
कालः	समय	अङ्गं	विग्रह
अय	यह	उत्सिसृक्षति	छोड़ देंगे ? ॥८॥
उपस्थितः	आगया है		

यस्मान्नः सम्पदो राज्यं दाराः प्राणाः कुलं प्रजाः ।
आसन् सपत्नविजयो लोकाश्च यदनुग्रहात् ॥९॥

यस्मात् नः सम्पदः राज्यं दाराः प्राणाः कुलं प्रजाः आसन् सपत्न विजयः लोकाः च यत् अनुग्रहात् ॥ ९ ॥

यस्मात्	जिनके द्वारा	यत्	जिनके
नः	हमारी	अनुग्रहात्	अनुग्रहसे
सम्पदः	सम्पत्ति	सपत्न	सौतेले (चचेरे) भाइयोंपर
राज्यं	राज्य	विजयः	विजय प्राप्त हुई
दाराः	स्त्रियां	लोकाः	स्वर्गादि लोकोंका (अधिकार)
कुलं	कुल	च	भी (मिला) ॥९॥
प्रजाः	प्रजा		
आसन्	हैं		

पश्योत्पातान्नरव्याघ्र दिव्यान् भौमान् सदैहिकान् ।
दारुणान् शंसतोऽदूराद्भयं नो बुद्धिमोहनम् ॥१०॥

पश्य उत्पातान् नरव्याघ्र दिव्यान् भौमान स दैहिकान् दारुणान् शंसतः अदूरात् भयं नः बुद्धि मोहनम् ॥ १० ॥

नरव्याघ्र	पुरुषसिंह !
दिव्यान्	आकाशमें होनेवाले
भौमान्	पृथ्वीपर होनेवाले
दैहिकान्	शरीरमें होनेवाले
स	एक साथ
दारुणान्	भयानक
उत्पातान्	अपशकुनोंको
पश्य	देखो
नः	हमारी
बुद्धि	बुद्धिको
मोहनं	मोहमें डालनेवाला
अदूरात्	समीप ही
भयं	भय
शंसतः	(ये) सूचित करते हैं ॥१०॥

ऊर्वक्षिबाहवो मह्यं स्फुरन्त्यङ्ग पुनः पुनः ।
वेपथुश्चापि हृदये आरादास्यन्ति विप्रियम् ॥११॥

उरु अक्षि बाहवः मह्यं स्फुरन्ति अंग पुनः पुनः वेपथुः च अपि हृदये आरात् दास्यन्ति विप्रियम् ॥ ११ ॥

मह्यं	मेरी
उरु	जांघें
अक्षि	नेत्र
बाहवः	भुजायें
पुनः पुनः	बार बार
स्फुरन्ति	फड़कती हैं,
च	और
हृदये	हृदयमें
अपि	भी
वेपथुः	कम्पन है
अङ्ग	प्रिय (भीमसेन)
आरात्	शीघ्र ही (ये)
विप्रियं	अप्रिय
दास्यन्ति	देंगे ॥११॥

शिवैषोद्यन्तमादित्यमभि रौत्यनलानना ।
मामङ्ग सारमेयोऽयमभिरेभत्यभीरुवत् ॥१२॥

शिवा एषा उद्यन्तं आदित्यं अभिरौति अनलानना मां अङ्ग सारमेयः अयं अभिरेभति अभीरुवत् ॥ १२ ॥

अंग	प्रिय	अभिरौति	मुख करेके रोती है।
एषा	यह	अयं	यह
अनलानना	मुखसे अग्नि निकालती	सारमेयः	कुत्ता
		अभीरुवत्	निर्भयके समान
शिवा	शृगाली	मां	मेरी ओर
उद्यन्तं	उदित होते	अभिरेभति	मुख करके चिल्ला रहा है ॥१२॥
आदित्यं	सूर्यकी ओर		

शस्ताः कुर्वन्ति मां सव्यं दक्षिणं पशवोऽपरे।
वाहांश्च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदतो मम ॥१३॥

शस्ताः कुर्वन्ति मां सव्वं दक्षिणं पशवः अपरे बाहान् च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदितः मम ॥ १३ ॥

पुरुषव्याघ्र	पुरुषसिंह !	दक्षिणं	दाहिने
शस्ताः	प्रशंसित (गाय, अश्व, गजादि)	कुर्वन्ति	करते हैं।
		मम	अपने
पशवः	पशु	वाहान्	वाहनोंको
मां	मुझे	रुदतः	रोते
सव्यं	अपने बायें (और)	लक्षये	देखता हूँ ॥१३॥
अपरे	दूसरे (गधे, कुत्ते आदि)		

मृत्युदूतः कपोतोऽयमुलूकः कम्पयन् मनः।
प्रत्युलूकश्च कुह्वानैरनिद्रौ शून्यमिच्छतः ॥१४॥

मृत्युदूतः कपोतः अयं उलूकः कम्पयन् मनः प्रतिउलूकः च कुह्वानैः अनिद्रः शून्यं इच्छतः ॥ १४ ॥

अयं	यह	मृत्युदूतः	मृत्युका दूत है (यह और)
कपोतः	पण्डुक*		

* वैकुण्ठके वर्णनमें तृतीयस्कन्धमें पारावतका वर्णन है। कबूतर शुभ पक्षी है; किन्तु उसी जातिके पंडुकका बोलना अशुभ है।

उलूकः	उल्लू (अपने शब्दसे)	कुह्वानैः	बुरी तरह बोलता हुआ
मनःकम्पयन्	मनको कम्पित करते हैं।	अनिद्रः	रातको जागता
प्रतिउलूकः	उल्लूका शत्रु कौआ	शून्यं	(संसारको) सूना
च	भी	इच्छतः	कर देना चाहते हैं ॥१४॥

धूम्रा दिशः परिधयः कम्पते भूः सहाद्रिभिः ।
निर्घातश्च महांस्तात साकं च स्तनयित्नुभिः ॥१५॥

धूम्रा दिशः परिधयः कम्पते भूः सह अद्रिभिः निर्घातः च महान् तात साकं च स्तनयित्नुभिः ॥ १५ ॥

दिशः	दिशायें	तात	प्रिय भीमसेन
धूम्रा	धुंधली (होगयी हैं)	च	और
परिधयः	(सूर्य-चन्द्रपर) मण्डल बैठते हैं,	स्तनयत्नुभिः	मेघोंसे
		महान्	भारी (गड़गड़ाहट)
अद्रिभिः	पर्वतोंके	साकं	के साथ
सह	साथ	निर्घातः	बिजली
भूः	पृथ्वी	च	भी गिरती है ॥१५॥
कम्पते	काँपती है (भूकम्प होते हैं।)		

वायुर्वाति खरस्पर्शो रजसा विसृजंस्तमः ।
असृग् वर्षन्ति जलदा बीभत्समिव सर्वतः ॥१६॥

वायुः वाति खरस्पर्शः रजसा विसृजन् तमः असृक् वर्षन्ति जलदाः बीभत्सं इव सर्वतः ॥ १६ ॥

वायुः	हवा	जलदाः	बादल
खरस्पर्शः	रूक्ष स्पर्शवाली	सर्वतः	सब कहीं
रजसा	धूलिसे	बीभत्सं	घिनौने ढंग
तमः	अन्धकार	इव	जैसे
विसृजन्	फैलाती	असृक्	रक्तकी
वाति	चलती है	वर्षन्ति	वर्षा करते हैं ॥१६॥

सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं मिथो दिवि ।
ससंकुलैर्भूतगणैर्ज्वलिते इव रोदसी ॥१७॥

सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं मिथः दिवि ससंकुलैः भूतगणैः ज्वलिते इव रोदसीः ॥ १७ ॥

सूर्यं	सूर्यको	भूतगणैः	भूतोंकी*
हतप्रभं	मन्द प्रकाशवाला	ससंकुलैः	भीड़से
पश्य	देखो	रोदसी	आकाश
दिवि	आकाशमें	ज्वलिते	जलता
मिथः	परस्पर	इव	सा लगता है ॥१७॥
ग्रहमर्दं	ग्रहोंका युद्ध होता है,		

नद्यो नदाश्च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च ।
न ज्वलत्यग्निराज्येन कालोऽयं किं विधास्यति ॥१८॥

नद्यः नदाः च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च न ज्वलति अग्निः आज्येन कालः अयं किं विधास्यति ॥ १८ ॥

नद्यः	नदियाँ	अग्निः	अग्नि
नदाः	महानद	आज्येन	घी (डालने) से भी
च	भी	न	नहीं
सरांसि	सरोवर	ज्वलति	प्रज्वलित होता
च	भी एवं	अयं	यह
मनांसि	(लोगोंके) मन	कालः	काल
च	भी	किं	क्या
क्षुभिताः	क्षुब्ध हो रहे हैं ।	विधास्यति	करनेवाला है ॥१८॥

न पिबन्ति स्तनं वत्सा न दुह्यन्ति च मातरः ।
रुदन्त्यश्रुमुखा गावो न हृष्यन्त्यृषभा व्रजे ॥१९॥

न पिबन्ति स्तनं वत्सा न दुह्यन्ति च मातरः रुदन्ति अश्रुमुखा गावः न हृष्यन्ति वृषभा व्रजे ॥ १९ ॥

---

* भूतोंके मुखसे लपट निकलती रहती है, यह लोकधारणा है ।

पश्योत्पातान्नरव्याघ्र दिव्यान् भौमान् सदैहिकान् ।
दारुणान् शंसतोऽदूराद्भयं नो बुद्धिमोहनम् ॥१०॥

पश्य उत्पातान् नरव्याघ्र दिव्यान् भौमान स दैहिकान् दारुणान् शंसतः अदूरात् भयं नः बुद्धि मोहनम् ॥ १० ॥

नरव्याघ्र	पुरुषसिंह !	नः	हमारी
दिव्यान्	आकाशमें होनेवाले	बुद्धि	बुद्धिको
भौमान्	पृथ्वीपर होनेवाले	मोहनं	मोहमें डालनेवाला
दैहिकान्	शरीरमें होनेवाले	अदूरात्	समीप ही
स	एक साथ	भयं	भय
दारुणान्	भयानक	शंसतः	(ये) सूचित करते हैं ॥१०॥
उत्पातान्	अपशकुनोंको		
पश्य	देखो		

ऊर्वक्षिबाहवो मह्यं स्फुरन्त्यङ्ग पुनः पुनः ।
वेपथुश्चापि हृदये आराद्दास्यन्ति विप्रियम् ॥११॥

उरु अक्षि बाहवः मह्यं स्फुरन्ति अंग पुनः पुनः वेपथुः च अपि हृदये आरात् दास्यन्ति विप्रियम् ॥ ११ ॥

मह्यं	मेरी	हृदये	हृदयमें
उरु	जांघें	अपि	भी
अक्षि	नेत्र	वेपथुः	कम्पन है
बाहवः	भुजायें	अङ्ग	प्रिय (भीमसेन)
पुनः पुनः	बार बार	आरात्	शीघ्र ही (ये)
स्फुरन्ति	फड़कती हैं,	विप्रियं	अप्रिय
च	और	दास्यन्ति	देंगे ॥११॥

शिवैषोद्यन्तमादित्यमभि रौत्यनलानना ।
मामङ्ग सारमेयोऽयमभिरेभत्यभीरुवत् ॥१२॥

शिवा एषा उद्यन्तं आदित्यं अभिरौति अनलानना मां अङ्ग सारमेयः अयं अभिरेभति अभीरुवत् ॥ १२ ॥

अंग	प्रिय	अभिरौति	मुख करेके रोती है।
एषा	यह	अयं	यह
अनलानना	मुखसे अग्नि निकालती	सारमेयः	कुत्ता
		अभीरुवत्	निर्भयके समान
शिवा	शृगाली	मां	मेरी ओर
उद्यन्तं	उदित होते	अभिरेभति	मुख करके चिल्ला रहा है॥१२॥
आदित्यं	सूर्यकी ओर		

शस्ताः कुर्वन्ति मां सव्यं दक्षिणं पशवोऽपरे।
वाहांश्च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदतो मम॥१३॥

शस्ताः कुर्वन्ति मां सव्यं दक्षिणं पशवः अपरे बाहान् च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदितः मम॥ १३॥

पुरुषव्याघ्र	पुरुषसिंह!	दक्षिणं	दाहिने
शस्ताः	प्रशंसित (गाय, अश्व, गजादि)	कुर्वन्ति	करते हैं।
		मम	अपने
पशवः	पशु	वाहान्	वाहनोंको
मां	मुझे	रुदतः	रोते
सव्यं	अपने बांयें (और)	लक्षये	देखता हूँ॥१३॥
अपरे	दूसरे (गधे, कुत्ते आदि)		

मृत्युदूतः कपोतोऽयमुलूकः कम्पयन् मनः।
प्रत्युलूकश्च कुह्वानैरनिद्रौ शून्यमिच्छतः॥१४॥

मृत्युदूतः कपोतः अयं उलूकः कम्पयन् मनः प्रतिउलूकः च कुह्वानैः अनिद्रः शून्यं इच्छतः॥ १४॥

अयं	यह	मृत्युदूतः	मृत्युका दूत है (यह और)
कपोतः	पण्डुक*		

* वैकुण्ठके वर्णनमें तृतीयस्कन्धमें पारावतका वर्णन है। कबूतर शुभ पक्षी है; किन्तु उसी जातिके पंडुकका बोलना अशुभ है।

उलूकः	उल्लू (अपने शब्दसे)	कुह्वानैः	बुरी तरह बोलता हुआ
मनःकम्पयन्	मनको कम्पित करते हैं।	अनिद्रः	रातको जागता
प्रतिउलूकः	उल्लूका शत्रु कौआ	शून्यं	(संसारको) सूना
च	भी	इच्छतः	कर देना चाहते हैं ॥१४॥

धूम्रा दिशः परिधयः कम्पते भूः सहाद्रिभिः ।
निर्घातश्च महांस्तात साकं च स्तनयित्नुभिः ॥१५॥

धूम्रा दिशः परिधयः कम्पते भूः सह अद्रिभिः निर्घातः च महान् तात साकं च स्तनयित्नुभिः ॥ १५ ॥

दिशः	दिशायें	तात	प्रिय भीमसेन
धूम्रा	धुंधली (होगयी हैं)	च	और
परिधयः	(सूर्य-चन्द्रपर) मण्डल बैठते हैं,	स्तनयत्नुभिः	मेघोंसे
		महान्	भारी (गड़गड़ाहट)
अद्रिभिः	पर्वतोंके	साकं	के साथ
सह	साथ	निर्घातः	बिजली
भूः	पृथ्वी	च	भी गिरती है ॥१५॥
कम्पते	काँपती है (भूकम्प होते हैं।)		

वायुर्वाति खरस्पर्शो रजसा विसृजंस्तमः ।
असृग् वर्षन्ति जलदा बीभत्समिव सर्वतः ॥१६॥

वायुः वाति खरस्पर्शः रजसा विसृजन् तमः असृक् वर्षन्ति जलदाः बीभत्सं इव सर्वतः ॥ १६ ॥

वायुः	हवा	जलदाः	बादल
खरस्पर्शः	रूक्ष स्पर्शवाली	सर्वतः	सब कही
रजसा	धूलिसे	बीभत्सं	घिनौने ढंग
तमः	अन्धकार	इव	जैसे
विसृजन्	फैलाती	असृक्	रक्तकी
वाति	चलती है	वर्षन्ति	वर्षा करते हैं ॥१६॥

सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं मिथो दिवि ।
ससंकुलैर्भूतगणैर्ज्वलिते इव रोदसी ॥१७॥

सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं मिथः दिवि ससंकुलैः भूतगणैः ज्वलिते इव रोदसीः ॥ १७ ॥

सूर्यं	सूर्यको	भूतगणैः	भूतोंकी*
हतप्रभं	मन्द प्रकाशवाला	ससंकुलैः	भीड़से
पश्य	देखो	रोदसी	आकाश
दिवि	आकाशमें	ज्वलिते	जलता
मिथः	परस्पर	इव	सा लगता है ॥१७॥
ग्रहमर्दं	ग्रहोंका युद्ध होता है,		

नद्यो नदाश्च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च ।
न ज्वलत्यग्निराज्येन कालोऽयं किं विधास्यति ॥१८॥

नद्यः नदाः च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च न ज्वलति अग्निः आज्येन कालः अयं किं विधास्यति ॥ १८ ॥

नद्यः	नदियाँ	अग्निः	अग्नि
नदाः	महानद	आज्येन	घी (डालने) से भी
च	भी	न	नहीं
सरांसि	सरोवर	ज्वलति	प्रज्वलित होता
च	भी एवं	अयं	यह
मनांसि	(लोगोंके) मन	कालः	काल
च	भी	किं	क्या
क्षुभिताः	क्षुब्ध हो रहे हैं।	विधास्यति	करनेवाला है ॥१८॥

न पिबन्ति स्तनं वत्सा न दुह्यन्ति च मातरः ।
रुदन्त्यश्रुमुखा गावो न हृष्यन्त्यृषभा व्रजे ॥१९॥

न पिबन्ति स्तनं वत्सा न दुह्यन्ति च मातरः रुदन्ति अश्रुमुखा गावः न हृष्यन्ति वृषभा व्रजे ॥ १९ ॥

---

* भूतोंके मुखसे लपट निकलती रहती है, यह लोकधारणा है।

वत्सा	बछड़े	गावः	गायें
पिबन्ति	(दूध) पीते	अश्रुमुखा	मुखपर आंसू बहाती
न	नहीं हैं,	रुदन्ति	रोती हैं,
मातरः	(उनकी) मातायें	व्रजे	गोष्ठोंमें
दुह्यन्ति	दुहने देती	वृषभा	सांड़
न	नहीं हैं,	न	नहीं
च	और	हृष्यन्ति	हर्षित होते ॥१९॥

दैवतानि रुदन्तीव स्विद्यन्ति ह्युच्चलन्ति च ।
इमे जनपदा ग्रामाः पुरोद्यानाकराश्रमाः ।
भ्रष्टश्रियो निरानन्दाः किमघं दर्शयन्ति नः ॥२०॥

दैवतानि रुदन्ति इव स्विद्यन्ति हि उच्चलन्ति च इमे जनपदा ग्रामा पुर उद्यान आकर आश्रमाः भ्रष्ट श्रियः निः आनन्दाः किं अघं दर्शयन्ति नः ॥ २० ॥

दैवतानि	देवमूर्तियां	आकर	खदानें
रुदन्ति	रोती	आश्रमाः	आश्रम
इव	सी हैं,	श्रियः	शोभासे
स्विद्यन्ति	पसीजती हैं	भ्रष्ट	रहित हैं
हि	ठीक पाते हैं कि	निः	बिना
उच्चलन्ति	हिलती	आनन्दाः	आनन्दके हैं
च	भी हैं,	नः	हम लोगोंको
इमे	ये	किं	क्या
जनपदा	बस्तियां	अघं	दुःख
ग्रामाः	गाँव	दर्शयन्ति	दिखलानेवाले
पुर	नगर		हैं ॥२०॥
उद्यान	बगीचे		

मन्य एतैर्महोत्पातैर्नूनं भगवतः पदैः ।
अनन्यपुरुषश्रीभिर्हीना भूर्हतसौभगा ॥२१॥

मन्य एतैः महाउत्पातैः नूनं भगवतः पदैः अनन्य पुरुषः श्रीभि हीना भूः हत सौभगा ॥ २१ ॥

एतैः	इन	भगवतः	भगवानके
महा	भारी	पदैः	चरणोंसे
उत्पातः	उत्पातोंसे	नूनं	निश्चय
मन्य	मानता हूँ कि	हीनाः	रहित होकर
अनन्य	जो दूसरे किसी	भूः	पृथ्वी
पुरुष	पुरुषमें नहीं होते ऐसी	सौभगा	सौभाग्य
		हत	रहित होगयी
श्रीभिः	शोभासे सम्पन्न		है ॥२१॥

सूत उवाच*–

इति चिन्तयतस्तस्य दृष्टारिष्टेन चेतसा ।
राज्ञः प्रत्यागमद् ब्रह्मन् यदुपुर्याः कपिध्वजः ॥२२॥

इति चिन्तयतः तस्य दृष्टा अरिष्टेन चेतसा राज्ञः प्रति आगमत् ब्रह्मन् यदुपुर्याः कपिध्वजः ॥ २२ ॥

अरिष्टेन	अपशकुनोंको	राज्ञः	राजा युधिष्ठिरके
दृष्टा	देखकर	प्रति	समीप
चेतसा	मनसे	ब्रह्मन्	शौनकजी !
इति	इस प्रकार	यदुपुर्याः	द्वारिकासे
चिन्तयतः	चिन्ता करते हुए	कपिध्वजः	अर्जुन
तस्य	उन	आगमत्	आये ॥२२॥

तं पादयोर्निपतितमयथापूर्वमातुरम् ।
अधोवदनमब्बिन्दून् सृजन्तं नयनाब्जयोः ॥२३॥

तं पादयोः निपतितं अयथा पूर्वं आतुरं अधः बदन अप् बिन्दून् सृजन्तं नयन अब्जयोः ॥ २३ ॥

तं	उन (अर्जुन) को	निपतिन्तं	गिरे हुए
पादयोः	पैरोंपर	पूर्वं	पहिले

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अयथा	जैसे कभी नहीं हुए थे	नयनाब्जयोः	कमल लोचनोंसे
		अप्	आँसूकी
आतुरं	वैसे व्याकुल	बिन्दून्	बूँदें
वदन	मुख	सृजन्तं	टपकाते ॥२३॥
अधः	नीचे झुकाये		

विलोक्योद्विग्नहृदयो विच्छायमनुजं नृपः ।
पृच्छति स्म सुहृन्मध्ये संस्मरन्नारदेरितम् ॥२४॥

विलोक्य उद्विग्न हृदयः विच्छायं अनुजं नृपः पृच्छति स्म सुहृन्मध्ये संस्मन् नारद ईरितम् ॥ २४ ॥

विच्छायं	कान्तिहीन	संस्मरन्	स्मरण करते हुए
अनुजं	छोटे भाई अर्जुनको	नृपः	राजा युधिष्ठिर
विलोक्य	देखकर	सुहृन्	सम्बन्धियोंके
उद्विग्न	उद्विग्न	मध्ये	बीचमें
हृदयः	हृदय	पृच्छति	पूछने
नारद	देवर्षिनारदका	स्म	लगे ॥२४॥
ईरितं	कहा		

युधिष्ठिर उवाच–

कच्चिदानर्तपुर्यां नः स्वजनाः सुखमासते ।
मधुभोजदशार्हार्हसात्वतान्धकवृष्णयः ॥२५॥

कच्चित् आनर्तपुर्यां नः स्वजनाः सुखं आसते मधु भोज दशार्ह अर्ह सात्वत अन्धक वृष्णयः ॥ २५ ॥

आनर्तपुर्यां	द्वारिकामें	सात्वत	सात्वत
नः	हमारे	अन्धक	अन्धक
स्वजनाः	स्वजन	वृष्णयः	वृष्णि वंशीलोग
मधु	मधु	कच्चित्	क्या
भोज	भोज	सुखं	सुखपूर्वक
दशार्ह	दशार्ह	आसते	हैं ? ॥२५॥
अर्ह	अर्ह		

शूरो मातामहः कच्चित्स्वस्त्यास्ते वाथ मारिषः ।
मातुलः सानुजः कच्चित्कुशल्यानकदुन्दुभिः ॥२६॥

शूरः मातामहः कच्चित् स्वस्ति आस्ते वा अथ मारिषः मातुलः सानुजः कच्चित् कुशली आनक दुन्दुभिः ॥ ६ ॥

कच्चित्	क्या	आस्ते	हैं,
मारिषः	सम्मान्य	कच्चित्	क्या
मातामहः	नानाजी	मातुलः	मामा
शूरः	शूरजी	आनक दुन्दुभिः	वसुदेवजी
अथ	अव	सानुजः	भाइयोंके साथ
स्वस्ति	कुशलपूर्वक	कुशली	सकुशल हैं ? ॥२६॥
वा	तो		

सप्त स्वसारस्तत्पत्न्यो मातुलान्यः सहात्मजाः ।
आसते स स्नुषाः क्षेमं देवकी प्रमुखाः स्वयम् ॥२७॥

सप्त स्वसारः तत् पत्न्योः मातुलान्यः सह आत्मजाः आसते स स्नुषाः क्षेमं देवकी प्रमुखाः स्वयम् ॥ २७ ॥

तत्	उनकी	आत्मजाः	पुत्रोंके
पत्न्योः	पत्नियां	सह	साथ
देवकी प्रमुखाः	जिनमें देवकीजी मुख्य हैं वे	स स्नुषाः	पुत्र वधुओंके साथ
		स्वयं	अपने आपमें
सप्त	सातों	क्षेमं	कुशलपूर्वक हैं ? ॥२७॥
स्वसारः	बहिनें		
मातुलान्यः	(हमारी) मामियाँ		

कच्चिद्राजाऽऽहुको जीवत्यसत्पुत्रोऽस्य चानुजः ।
हृदीकः ससुतोऽक्रूरो जयन्तगदसारणाः ॥२८॥

कच्चित् राजा आहुकः जीवति असत् पुत्रः अस्य च अनुजः हृदीकः ससुतः अक्रूरः जयन्त गद सारणाः ॥ २८ ॥

कच्चित्	क्या	हृदीकः	हृदीक
असत्	असत्	ससुतः	अपने पुत्र (कृतवर्मा)
पुत्रः	पुत्र (कंसके पिता)		के साथ
राजा	उग्रसेन	अक्रूरः	अक्रूर
च	और	जयन्त	जयन्त
अस्य	इनके	गद	गद
अनुजः	छोटे भाई (देवक)	सारणाः	सारणादि ॥२८॥
जीवति	जीवित हैं ?		

आसते कुशलं कच्चिद्ये च शत्रुजिदादयः ।
कच्चिदास्ते सुखं रामो भगवान् सात्वतां प्रभुः ॥२९॥

आसते कुशलं कच्चित् ये च शत्रुजित आदयः कच्चित् आस्ते सुखं रामः भगवान् सात्वतां प्रभुः ॥ २९ ॥

च	और	कच्चित्	क्या
ये	जो	सात्वतां	भक्तोंके (यादवोंके)
शत्रुजित	शत्रुजित	प्रभुः	स्वामी
आदयः	आदि हैं	भगवान्	भगवान्
कच्चित्	क्या	रामः	बलरामजी
कुशलं	कुशलपूर्वक	सुखं	सुखपूर्वक
आसते	हैं ?	आसते	हैं ? ॥२९॥

प्रद्युम्नः सर्ववृष्णीनां सुखमास्ते महारथः ।
गम्भीररयोऽनिरुद्धो वर्धते भगवानुत ॥३०॥

प्रद्युम्नः सर्व वृष्णीनां सुखं आस्ते महारथः गम्भीररयः अनिरुद्ध वर्धते भगवान् उत ॥ ३० ॥

सर्व	सब	गम्भीर	गम्भीर
वृष्णीनां	वृष्णिवंशियोंमें	रयः	वेगवाले
महारथः	महारथी	भगवान्	भगवान
प्रद्युम्नः	प्रद्युम्न	अनिरुद्धः	अनिरुद्ध
सुखं	सुखसे	वर्धते	उन्नति तो कर रहे
आसते	हैं	उत	हैं ॥ ३० ॥

सुषेणश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः ।
अन्ये च कार्ष्णिप्रवराः सपुत्रा ऋषभादयः ॥३१॥

सुषेणः चारुदेष्णः च साम्बः जाम्बवती सुतः अन्ये च कार्ष्णि प्रवराः सपुत्रा ऋषभ आदयः ॥ ३१ ॥

सुषेणः	सुषेण	च	भी
चारुदेष्णः	चारुदेष्ण	कार्ष्णि	श्रीकृष्ण पुत्रोंमें
च	और	प्रवराः	श्रेष्ठ
जाम्बवती	जाम्बवतीके	ऋषभ	ऋषभ
सुतः	पुत्र	आदयः	आदि
साम्बः	साम्ब	सपुत्रा	पुत्रोंके साथ ॥३१॥
अन्ये	दूसरे		

तथैवानुचराः शौरेः श्रुतदेवोद्धवादयः ।
सुनन्दनन्दशीर्षण्या ये चान्ये सात्वतर्षभाः ॥३२॥

तथा एव अनुचराः शौरेः श्रुतदेव उद्धव आदयः सुनन्द नन्द शीर्षण्या ये च अन्ये सात्वत ऋषभाः ॥ ३२ ॥

तथा	ऐसे	ये	जो
एव	ही	अन्ये	दूसरे
शौरेः	श्रीकृष्णके	सुनन्द	सुनन्द
अनुचराः	अनुचर	नन्द	नन्द
श्रुतदेव	श्रुतदेव	शीर्षण्या	प्रमुख
उद्धव	उद्धव	सात्वत	यदुवंशमें
आदयः	आदि	ऋषभाः	श्रेष्ठ हैं ॥३२॥
च	और		

अपि स्वस्त्यासते सर्वे रामकृष्णभुजाश्रयाः ।
अपि स्मरन्ति कुशलमस्माकं बद्धसौहृदाः ॥३३॥

अपि स्वस्ति आसते सर्वे राम कृष्ण धुजा आश्रयाः अपि स्मरन्ति कुशलं अस्माकं बद्ध सौहृदाः ॥ ३३ ॥

अपि	क्या	अस्माकं	हम लोगोंके
सर्वे	सब	सौहृदाः	सौहार्द्रसे
राम	बलराम	बद्ध	बँधे हुए
कृष्ण	श्रीकृष्णकी	कुशलं	(हम लोगोंके)
भुजा	भुजाओं (बल) के		कुशलको
आश्रयाः	आश्रयमें रहनेवाले	स्मरन्ति	स्मरण
स्वस्ति	कुशलपूर्वक	अपि	तो करते हैं ॥३३॥
आसते	हैं		

भगवानपि गोविन्दो ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः ।
कच्चित्पुरे सुधर्मायां सुखमास्ते सुहृद्वृतः ॥३४॥

भगवान् अपि गोविन्दः ब्रह्मण्यः भक्तवत्सलः कच्चित् पुरे सुधर्मायां सुखं आसते सुहृत् वृतः ॥ ३४ ॥

कच्चित्	क्या	पुरे	अपने नगरमें
ब्रह्मण्यः	ब्राह्मण भक्त	सुधर्मायां	सुधर्मा सभामें
भक्तवत्सलः	भक्तवत्सल	सुहृत्	सम्बन्धियोंसे
भगवान्	भगवान	वृतः	घिरे
गोविन्दः	गोविन्द	सुखं	सुखपूर्वक
अपि	भी	आसते	हैं ॥३४॥

मङ्गलाय च लोकानां क्षेमाय च भवाय च ।
आस्ते यदुकुलाम्भोधावाद्योऽनन्तसखः पुमान् ॥३५॥

मङ्गलाय च लोकानां श्रेमाय च भवाय च आस्ते यदुकुल अम्भोधः आद्यः अनन्तसखः पुमान् ॥ ३५ ॥

लोकानां	सब लोकोंके	च	भी
मङ्गलाय	मंगलके लिए	आद्यः	आदि
च	और	पुमान्	पुरुष
क्षेमाय	कल्याणके लिए	अनन्त	बलरामजीके
च	एवं	सखः	साथ
भवाय	अभ्युदयके लिए	यदुकुल	यदुकुलरूपी

अम्भोधः	समुद्रमें	आस्ते	विराजमान हैं ॥३५॥

यद्बाहुदण्डगुप्तायां स्वपुर्यां यदवोऽर्चिताः ।
क्रीडन्ति परमानन्दं महापौरुषिका इव ॥३६॥

यत् बाहुदण्ड गुप्तायां स्वपुर्यां यदवः अर्चिताः क्रीडन्ति परमानन्दं महापौरुषिका इव ॥ ३६ ॥

यत्	जिनके	महापौरुषिका	विष्णु भगवानके पार्षदोंके
बाहुदण्ड	भुजाओंसे	इव	समान
गुप्तायां	सुरक्षित	परमानन्दं	परमानन्दसे
स्वपुर्यां	अपनी पुरी (द्वारिका) में	क्रीडन्ति	विहार करते हैं ॥३६॥
अर्चिताः	(सबसे) सम्मानित		
यदवः	यदुवंशी		

यत्पादशुश्रूषणमुख्यकर्मणा
सत्यादयो द्व्यष्टसहस्रयोषितः ।
निर्जित्य संख्ये त्रिदशांस्तदाशिषो
हरन्ति वज्रायुधवल्लभोचिताः ॥३७॥

यत् पाद शुश्रूण मुख्य कर्मणा सत्या आदयः द्वय अष्ट सहस्र योषितः निर्जित्य संख्ये त्रिदशान् तत् आशिषः हरन्ति वज्रायुध वल्लभा उचिताः ॥ ३७ ॥

सत्या	सत्यभामा	शुश्रूषण	सेवारूपी
आदयोः	आदि	मुख्य	मुख्य
द्व	दो	कर्मणा	कर्मसे
अष्ट	आठ (सोलह)	संख्ये	युद्धमें
सहस्र	सहस्र	त्रिदशान्	देवताओंको
योषितः	स्त्रियाँ	निर्जित्य	जीतकर
यत्	जिनके	तत्	उन (देवताओं) को
पाद	चरणोंकी	आशिषः	अभीष्ट

वज्रायुध	इन्द्र	हरन्ति	उपभोग करती
वल्लभा	पत्नीके		हैं ॥३७॥
उचिताः	योग्य (कल्पवृक्षका)		

यद्बाहुदण्डाभ्युदयानुजीविनो
यदुप्रवीरा ह्यकुतोभया मुहुः ।
अधिक्रमन्त्यङ्घ्रिभिराहृतां बलात्
सभां सुधर्मां सुरसत्तमोचिताम् ॥३८॥

यत् बाहुदण्ड अभ्युदय अनुजीविनः यदु प्रवीरा हि अकुतोभयाः मुहुः अधिक्रमन्ति अङ्घ्रिभिः आहृतां बलात् सभां सुधर्मां सुरसत्तम उचिताम् ॥ ३८ ॥

यत्	जिनके	उचितां	उचित
बाहुदण्ड	भुजदण्ड	सुधर्मा	सुधर्मा
अभ्युदय	पराक्रमके	सभां	सभां
अनुजीविनः	अनुजीवी	बलात्	बलपूर्वक
यदु	यदुवंशके	आहृतां	छीन लायी गयीको
प्रवीरा	श्रेष्ठ वीर	मुहुः	बार बार
हि	निश्चित रूपसे	अङ्घ्रिभिः	अपने पदोंसे
अकुतोभया	सब ओरसे निर्भय	अधिक्रमन्ति	रौंदते हैं ॥३८॥
सुरसत्तम	श्रेष्ठ देवताओंके लिए		

कच्चित्तेऽनामयं तात भ्रष्टतेजा विभासि मे ।
अलब्धमानोऽवज्ञातः किं वा तात चिरोषितः ॥३९॥

कच्चित् ते अनामयं तात भ्रष्ट तेजा विभासि मे अलब्ध मानः अवज्ञातः किं वा तात चिर ऊषितः ॥ ३९ ॥

तात	भाई !	मे	मुझे
कच्चित्	क्या	तेजा	तेजसे
ते	तुम्हारा	भ्रष्ट	रहित
अनामयं	(शरीर) निरोग है ?	विभासि	लगते हो,

मानः	सम्मान	किं	क्या
अलब्ध	नहीं मिला ?	चिर	देरसे
अवज्ञातः	अपमान हुआ ?	ऊषितः	उपवास किये
वा	अथवा		हो ? ॥३९॥
तात	भाई		

कच्चिन्नाभिहतोऽभावैः शब्दादिभिरमङ्गलैः ।
न दत्तमुक्तमर्थिभ्य आशया यत्प्रतिश्रुतम् ॥४०॥

कच्चित् न अभिहितः अभावैः शब्द आदिभिः अमंगलैः न दत्तं उक्तं अर्थिभ्य आशया यत् प्रतिश्रुतम् ॥ ४० ॥

कच्चित्	क्या	आशया	आशापूर्वक (आये),
अमंगलैः	अमंगल	अर्थिभ्य	मांगने आयेको
शब्दादिभिः	शब्द (संकेत) आदिसे	यत्	जो
		प्रतिश्रुतं	देनेको
अभावैः	अभाव सूचक (बातोंसे)	उक्तं	कह चुके थे:
अभिहतः	पुकारे तो गये	न	नहीं
न	नहीं हो ?	दत्तं	दिया ? ॥४०॥

कच्चित्त्वं ब्राह्मणं बालं गां वृद्धं रोगिणं स्त्रियम् ।
शरणोपसृतं सत्त्वं नात्याक्षीः शरणप्रदः ॥४१॥

कच्चित् त्वं ब्राह्मण बालं गां वृद्धं रोगिणं स्त्रियं शरण उपसृतं सत्त्वं न अत्याक्षीः शरणप्रदः ॥ ४१ ॥

कच्चित्	क्या	रोगिणं	रोगीको
त्वं	तुम	स्त्रियं	स्त्रीको
शरणप्रदः	शरण देनेवाले हो (फिर भी)	शरण	शरणमें
		उपसृतं	आये
ब्राह्मणं	ब्राह्मणको	सत्त्वं	किसी प्राणीको
बालं	बालकको	अत्याक्षीः	त्यागा तो
गां	गायको	न	नहीं ? ॥४१॥
वृद्धं	वृद्धको		

कच्चित्त्वं नागमोऽगम्यां गम्यां वासत्कृतां स्त्रियम् ।
पराजितो वाथ भवान्नोत्तमैर्नासमैः पथि ॥४२॥

कच्चित् त्वं न अगमः अगम्यां गम्यां वा असत्कृतां स्त्रियं पराजितः वा अथ भवान् न उत्तमैः न असमैः पथि ॥ ४२ ॥

कच्चित्	क्या	वा	अथवा
त्वं	तुम	अथ	क्या
अगम्यां	गमन न करने योग्य स्त्रीसे	पथि	मार्गमें
		भवान्	तुम
अगमः	गमन तो	न उत्तमैः	जो अपनेसे श्रेष्ठ नहीं है
न	नहीं किया,		
वा	अथवा	न असमैः	जो अपनेसे विषम भी नहीं है (सम है)
गम्यां	गमन करने योग्य		
स्त्रियं	स्त्रीका	पराजितः	(उससे) पराजित होगये ॥४२॥
असत्कृतं	सत्कार नहीं किया ?		

अपि स्वित्पर्यभुङ्क्थास्त्वं सम्भोज्यान् वृद्धबालकान् ।
जुगुप्सितं कर्म किंचित्कृतवान्न यदक्षमम् ॥४३॥

अपि स्वित् पर्यभुङ्क्षा त्वं सम्भोज्यान् वृद्ध बालकान् जुगुप्सितं कर्म किञ्चित् कृतवान् यत् अक्षमं ॥ ४३ ॥

अपि	क्या	किंचित्	कुछ
त्वं	तुमने	यत्	जो
संभोज्यान्	पहिले भोजन कराने योग्य	अक्षमं	नहीं करना चाहिए था
वृद्ध	वृद्ध	जुगुप्सितं	निन्दित
बालकान्	बालकोंसे	कर्म	कर्म
पर्यभुंक्ष	पहिले भोजनकर	कृतवान्	किया ? ॥४३॥
स्वित्	लिया		

कच्चित् प्रेष्ठतमेनाथ हृदयेनात्मबन्धुना ।
शून्योऽस्मि रहितो नित्यं मन्यसे तेऽन्यथा न रुक् ॥४४॥

कच्चित् प्रेष्ठतमेन अथ हृदयेन आत्म बन्धुना शून्यः अस्मि रहितः नित्यं मन्यसे ते अन्यथा न रुक् ॥ ४४ ॥

कच्चित	क्या	**नित्यं**	सदाको
प्रेष्ठतमेन	प्रियतमसे	**रहितः**	(उनसे)रहित होगया
हृदयेन	हृदयसे	**मन्यसे**	मानते हो ?
आत्म बन्धुना	अपने अभिन्न सखासे	**अन्यथा**	दूसरा कोई
अथ	अब	**ते**	तुम्हारा
शून्यः	सूना	**रुक्**	रोग (दुःख)
अस्मि	हूँ	**न**	नहीं है ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

सूत उवाच–

एवं कृष्णसखः कृष्णो भ्रात्रा राज्ञाऽऽविकल्पितः ।
नानाशङ्कास्पदं रूपं कृष्णविश्लेषकर्शितः ॥१॥

एवं कृष्णसखः कृष्णः भ्रात्रा राज्ञा अविकल्पितः नाना शङ्कास्पदं रूपं कृष्ण विश्लेष कर्शितः ॥ १ ॥

एवं	इस प्रकार	राज्ञा	राजा युधिष्ठिर द्वारा
कृष्णसखः	श्रीकृष्णके सखा	नाना	अनेक प्रकारकी
कृष्णः	अर्जुन	शंकास्पदं	शंकाओंके आधार
कृष्ण	श्रीकृष्णके	रूपं	रूपसे
विश्लेष	वियोगसे	अविकल्पितः	विकल्पपूर्वक पूछे
कर्शितः	कृश हुए		जानेपर ॥१॥
भ्रात्रा	बड़े भाई		

शोकेन शुष्यद्वदनहृत्सरोजो हतप्रभः ।
विभुं तमेवानुध्यायन्नाशक्नोत्प्रतिभाषितुम् ॥२॥

शोकेन शुष्यत् वदन हृत् सरोज हत प्रभः विभुं तं एव अनुध्यायन् न शक्नोत् प्रतिभाषितुम् ॥ २ ॥

शोकेन	शोकसे	एव	ही
वदन	मुख	विभुं	सर्वव्यापकका
शुष्यत्	सूख रहा था	अनुध्यायन्	बार बार चिन्तन
हृत्सरोज	हृदय कमल		करते
प्रभः	कान्ति	प्रतिभाषितुं	उत्तर देनेमें
हत	हीन होगया था	शक्नोत्	समर्थ
तं	उन	न	नहीं हुए ॥२॥

कृच्छ्रेण संस्तभ्य शुचः पाणिनाऽऽमृज्य नेत्रयोः ।
परोक्षेण समुन्नद्धप्रणयौत्कण्ठ्यकातरः ॥३॥

कृच्छ्रेण संस्तभ्य शुचः पाणिना आमृज्य नेत्रयोः परोक्षेण समुन्नद्ध प्रणय औत्कण्ठ्य कातरः ॥ ३ ॥

परोक्षेण	(श्रीकृष्णके) परोक्ष हो जानेसे	**कृच्छ्रेण**	कठिनाईसे
समुन्नद्ध	अत्यन्त बढ़े हुए	**शुचः**	शोकको
प्रणय	प्रेमकी	**संस्तभ्य**	रोककर
उत्कण्ठ्य	उत्कण्ठासे	**पाणिना**	हाथोंसे
कातरः	व्याकुल	**नेत्रयोः**	नेत्रोंको
		आमृज्य	पोंछकर ॥३॥

सख्यं मैत्रीं सौहृदं च सारथ्यादिषु संस्मरन् ।
नृपमग्रजमित्याह बाष्पगद्गदया गिरा ॥४॥

सख्यं मैत्रीं सौहृदं च सारथ्यादि संस्मरन् नृपं अग्रजं इति आह वाष्प गद्गदया गिरा ॥ ४ ॥

सख्यं	(श्रीकृष्णके) सखा भाव	**संस्मरन्**	बार बार स्मरण करते हुए
मैत्रीं	मित्रता	**अग्रजं**	बड़े भाई
सौहृदं	सौहार्द्र	**नृपं**	राजा युधिष्ठिरसे
च	तथा	**बाष्प गद्गदया**	आंसूसे गद्गद हुई
सारथ्यादि	सारथीपने आदि (टहने-घूमने) को	**गिरा**	वाणीसे
		इति	इस प्रकार
		आह	बोले ॥४॥

अर्जुन उवाच–

वञ्चितोऽहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा ।
येन मेऽपहृतं तेजो देवविस्मापनं महत् ॥५॥

वञ्चितः अहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा येन मे अपहृतं तेजः देव विस्मापनं महत् ॥ ५ ॥

महाराज	महाराज	देव	देवताओंको भी
बन्धुरूपिणा	बन्धु (मित्र) रूपी	विस्मापनं	विस्मयमें डाल
हरिणा	श्रीकृष्ण द्वारा		देनेवाला
अहं	मैं	महत्	महान
वञ्चितः	ठग लिया गया	तेजः	तेज
येन	जिन्होंने	अपहृतं	हरण कर लिया ॥५॥
मे	मेरा		

यस्य क्षणवियोगेन लोको ह्यप्रियदर्शनः ।
उक्थेन रहितो ह्येष मृतकः प्रोच्यते यथा ॥६॥

यस्य क्षण वियोगेन लोकः हि अप्रिय दर्शनः उक्थेन रहितः हि एष मृतकः प्रोच्यते यथा ॥ ६ ॥

हि	क्योंकि	हि	क्योंकि
यथा	जैसे	यस्य	जिनके
एष	यह (शरीर)	क्षण	क्षणभरके
उक्थेन	जीवसे	वियोगेन	वियोगसे
रहितः	रहित	लोकः	संसार
मृतकः	मृतक	अप्रिय	अप्रिय
प्रोच्यते	कहा जाता है (वैसे ही)	दर्शनः	दीखने लगता है ॥६॥

यत्संश्रयाद् द्रुपदगेहमुपागतानां
राज्ञां स्वयंवरमुखे स्मरदुर्मदानाम् ।
तेजो हृतं खलु मयाभिहतश्च मत्स्यः
सज्ञीकृतेन धनुषाधिगता च कृष्णा ॥७॥

यत् संश्रयात् द्रुपदगेह उपागतानां राज्ञां स्वयम्वर मुखे स्मर दुर्मदानां तेज. हृतं खलु मया अभिहितः च मत्स्यः सज्जीकृतेन धनुषा अधिगता च कृष्णा ॥ ७ ॥

यत्	जिनके	स्वयम्वर	स्वयंवरके
संश्रयात्	आश्रयसे	मुखे	प्रारम्भमें

पदगेह	राजा द्रुपदके घर	मया	मेरे द्वारा
पागतानां	आये हुए	धनुषा	धनुषकी
मर	कामसे	सज्जीकृतेन	प्रत्यंत्वा चढ़ाकर
र्मदानां	उन्मत्त	मत्स्यः	मत्स्य
राज्ञां	राजाओंका	अभिहतः	वेध कर दिया गया
तेजः	तेज	च	और
तं	हरण करके	कृष्णा	द्रौपदी
ञ्जु	निश्चय	अधिगता	प्राप्तकी गयी ॥७॥

यत्संनिधावहमु खाण्डवमग्नयेऽदा-
मिन्द्रं च सामरगणं तरसा विजित्य ।
लब्धा सभा मयकृता-द्भुतशिल्पमाया
दिग्भ्यौऽहरन्नृपतयो बलिमध्वरे ते ॥८॥

यः सन्निधाः अहं खाण्डवं अग्नये अदां इन्द्रं च सामर गणं तरसा विजित्य लब्धा सभा मयकृता अद्भुत शिल्प माया दिग्भ्यः आहरन् नृपतयः बलिं अध्वरे ते ॥ ८ ॥

यत्	जिनके	अद्भुतशिल्प	अद्भुत शिल्प एवं
सन्निधाः	सान्निध्यसे	माया	मायावाली
अहं	मैंने	सभा	सभा
तरसा	वेगपूर्वक	लब्धा	प्राप्त किया (एवं)
सामरगणं	देवताओंके समूहके साथ	ते	आपके
		अध्वरे	राजसूय यज्ञमें
इन्द्रं	इन्द्रको	दिग्भ्यः	दिशाओंसे
च	भी	नृपतयः	राजा लोग
विजित्य	जीतकर	बलिं	उपहार
मयकृता	मय दानवकी बनायी	आहरन्	लेकर आये ॥८॥

यत्तेजसा नृपशिरोऽङ्घ्रिमहन्मखार्थे
आर्योऽनुजस्तव गजायुतसत्त्ववीर्यः ।
तेनाहृताः प्रमथनाथमखाय भूपा
यन्मोचितास्तदनयन् बलिमध्वरे ते ॥९॥

यत् तेजसा नृपशिरः अङ्घ्रि अहन् मखार्थे आर्यः अनुजः तव गज अयुत सत्त्ववीर्यः तेन आहृताः प्रमथनाथ मखाय भूपा यत् मोचिताः तत् अनयन् बलिं अध्वरे ते ॥ ९ ॥

यत्	जिनके	अहन्	मार दिया
तेजसा	तेजसे	प्रमथनाथ	महाभैरवकी
अयुत	दस हजार	मखाय	बलि देकर यज्ञ करनेके लिए
गज	हाथीकी		
सत्त्व	शक्ति (एवं)	तेन	उस (जरासन्ध) द्वारा
वीर्यः	पराक्रमवाले		
तव	आपके	आहृताः	पकड़कर लाए गये
अनुजः	छोटे भाई	भूपा	राजाओंको
आर्यः	आर्य भीमसेनजीने	यत्	क्योंकि
नृप	राजाओंके	मोचिताः	(बन्दीगृहसे) छुड़ा दिया
शिरः	सिरोंपर		
अङ्घ्रि	पैर रखनेवाले (जरासन्ध) को	तत्	अतः
		ते	(वे) आपके
मखार्थे	राजसूय यज्ञ (की दिग्विजय) के लिए	अध्वरे	राजसूय यज्ञमें
		बलिं	उपहार
		अनयन्	ले आये ॥९॥

पत्न्यास्तवाधिमखक्लृप्तमहाभिषेक-
श्लाघिष्ठचारुकबरं कितवैः सभायाम् ।
स्पृष्टं विकीर्य पदयोः पतिताश्रुमुख्या
यस्तत्स्त्रियोऽकृत हतेशविमुक्तकेशाः ॥१०॥

पत्न्याः तव अधिमख क्लृप्त महाभिषेक श्लाघिष्ठ चारु कवरं कितवैः सभायां स्पृष्टं विकीर्य पदयोः पतित अश्रुमुख्या यः तत् स्त्रियः अकृत हतेश विमुक्त केशाः ॥ १० ॥

अधिमख	राजसूय यज्ञके	क्लृप्त	पवित्र
महाभिषेक	महाभिषेकसे	श्लाघिष्ठ	प्रशंसनीय

चारु	सुन्दर	तव	आपकी
कवरं	जूड़ेको	पत्न्याः	पत्नी द्रौपदीके लिए
कितवैः	धूर्तोंने जब	यः	जिन्होंने
सभायां	सभामें	तत्	उन (धूर्तों) की
स्पृष्टं	छू (पकड़) लिया	स्त्रियः	स्त्रियोंको
विकीर्य	(उन केशोंको) फैलाकर	हतेश	पतिके मारे जानेसे
		विमुक्त	खुले हुए
अश्रुमुख्या	मुखपर आँसू बहाती	केशाः	केशोंवाली
पदयोः	चरणोंपर	अकृत	बना दिया ॥१०॥
पतिता	गिरी		

यो नो जुगोप वन एत्य दुरन्तकृच्छ्राद्
दुर्वाससोऽरिरचितादयुताग्रभुग् यः ।
शाकान्नशिष्टमुपयुज्य यतस्त्रिलोकीं
तृप्तामंमंस्त सलिले विनिमग्नसङ्घः ॥११॥

यः नः जुगोप वन एत्य दुरन्त कृच्छ्रात् दुर्वाससः अरि रचितात् अयुत अग्र भुक् यः शाकात् अशिष्टं उपयुज्य यतः त्रिलोकीं तृप्तां अमंस्त सलिले विनिम प्रसंघः ॥ ११ ॥

यः	जिन्होंने	अग्र	(उनसे) पहिले
वन	वनमें	भुक्	भोजन करनेवाले
एत्य	आकर	दुर्वाससः	दुर्वासाजीको
नः	हम लोगोंकी	सलिले	(स्नान करते समय) जलमें
अरि	शत्रु (दुर्योधन) द्वारा	प्रसङ्घः	(उनका वह) संघ
रचितात्	उत्पन्न किए गए	विनिम	विलय होगया (भाग गया)
दुरन्त	जिसका अन्त शक्य नहीं था उस		
कृच्छ्रात्	संकटसे	यः	(क्योंकि) जिन्होंने
जुगोप	रक्षाकी,	शाकात्	शाक भोजनसे
अयुत	दस हजार (शिष्योंको साथ बैठाकर)	अशिष्ट	बचे हुए (पत्ते) को
		उपयुज्य	उपयोग (भोजन) करके

त्रिलोकीं	त्रिलोकीको	अमंस्त	मान लिया ॥११॥
तृप्तां	तृप्त		

यत्तेजसाथ भगवान् युधि शूलपाणि-
र्विस्मापितः सगिरिजोऽस्त्रमदान्निजं मे ।
अन्येऽपि चाहममुनैव कलेवरेण
प्राप्तो महेन्द्रभवने महदासनार्धम् ॥१२॥

यत् तेजसा अथ भगवान् युधि शूलपाणिः विस्मापितः स गिरिज अस्त्रं अदात् निजं मे अन्ये अपि च अहं अमुनैव कलेवरेण प्राप्तः महेन्द्र भवने महत् आसनार्धम् ॥ १२ ॥

अथ	तदन्तर	च	और
यत्	जिनके	अन्ये	दूसरोंने
तेजसा	तेजसे	अपि	भी (अपने अस्त्र दि
युधि	युद्धमें	अहं	मैं
भगवान्	भगवान	अमुनैव	इसी
शूलपाणिः	त्रिशूलहस्त शंकरजी	कलेवरेण	शरीरसे
स गिरिजः	पार्वतीजीके साथ	महेन्द्रभवनं	इन्द्रके भवनमें
विस्मापितः	विस्मयमें डाल दिये जानेपर	महत् आसनार्धं	महान इन्द्रासनके आधे भागको
मे	मुझे	प्राप्तः	प्राप्त कर सका ॥१२॥
निजं	निजी		
अस्त्रं	अस्त्र पाशुपत		
अदात्	दिये		

तत्रैव मे विहरतो भुजदण्डयुग्मं
गाण्डीवलक्षणमरातिवधाय देवाः ।
सेन्द्राः श्रिता यदनुभावितमाजमीढ
तेनाहमद्य मुषितः पुरुषेण भूम्ना ॥१३॥

तत्रैव मे विहरतः भुजदण्डं युग्मं गाण्डीव लक्षणं अराति वधाय देवा सेन्द्राः श्रिता यत् आनुभावितं आजमीढ तेन अहं अद्य मुषितः पुरुषे भूम्ना ॥ १३ ॥

यत्	जिनकी
आनुभावितं	कृपासे प्रभावित
मे	मुझसे
तत्रैव	वहीं (स्वर्गमें)
विहरतः	विहार करते समय
युग्मं	दो
भुजदण्डं	भुजाओंवाले
गाण्डीव लक्षणं	गाण्डीवधारीका
अराति	शत्रुओंके
वधाय	वधके लिए
सेन्द्राः	इन्द्रके साथ
देवाः	देवताओंने
श्रिता	आश्रय लिया
आजमीढ	महाराज (युधिष्ठिर)
तेन	उन
भूम्ना	सर्वव्यापक
पुरुषेण	पुरुषके द्वारा
अहं	मैं
मुषितः	ठगा गया हूँ ॥१३॥

यद्बान्धवः कुरुबलाब्धिमनन्तपार-
मेको रथेन ततरेऽहमतार्यसत्त्वम् ।
प्रत्याहृतं बहु धनं च मया परेषां
तेजास्पदं मणिमयं च हृतं शिरोभ्यः ॥१४॥

यत् बान्धवः कुरु बल अब्धि अनन्तपारं एकः रथेन ततरे अहं अतार्य सत्त्वं प्रत्याहृतं बहुधनं च मया परेषां तेज आस्पदं मणिं अयं च हृतं शिरोभ्यः ॥ १४ ॥

यत्	जिनके
बान्धवः	सहायक (सारथि) होनेसे
कुरु	कौरवोंकी
बल	सेनारूप
अनन्तपारं	अनन्त पारवाले
अतार्यसत्त्वं	जिसमें पार न करने देनेवाले पराक्रमी थे
अब्धि	(ऐसे) समुद्रको
एकः	अकेले
रथेन	रथके द्वारा
अहं	मैंने
ततरे	पार कर लिया,
च	तथा
मया	मेरे द्वारा
परेषां	शत्रुओंका
बहुधनं	बहुत-सा धन
प्रत्याहृतं	छीन लाया गया,
च	एवं
अयं	यह
मणिं	मणि
तेजस्पदं	तेजस्वी (अश्वत्थामा) के
शिरोभ्यः	सिरमेंसे
हृतं	छीना ॥१४॥

यो भीष्मकर्णगुरुशल्यचमूष्वदभ्र-
राजन्यवर्यरथमण्डलमण्डितासु ।
अग्रेचरो मम विभो रथयूथपाना-
मायुर्मनांसि च दृशा सह ओज आर्च्छत् ॥१५॥

यः भीष्म कर्ण गुरु शल्य चमूषु अदभ्र राजन्यवर्य रथमंडल मंडितासु अग्रेचरः मम विभो रथयूथपानां आयुः मनांसि च दृशा सह ओज आर्छत् ॥ १५ ॥

विभो	प्रभो !	अग्रेचरः	आगे चलने
अदभ्र	अदम्य	रथ यूथपानां	रथ सेनाके यूथपतियोंकी
भीष्म	भीष्म		
कर्ण	कर्ण	आयुः	आयु
गुरु	द्रोणाचार्य	मनांसि	मन
शल्य	शल्यादि	च	और
राजन्यवर्य	श्रेष्ठ राजाओंके	दृशा	दृष्टिको
रथमंडल	रथ समूहोंसे	ओजः	ओज
मंडितासु	सुशोभित	सह	के साथ
चमूषु	सेनामें	आर्छत	छीन लिया करते थे ॥१५॥
यः	जो		
मम	मेरे		

यद्दोष्षु मा प्रणिहितं गुरुभीष्मकर्ण-
नप्तृत्रिगर्तशलसैन्धववाह्लिकाद्यैः ।
अस्त्राण्यमोघमहिमानि निरूपितानि
नो पस्पृशुर्नृहरिदासमिवासुराणि ॥१६॥

यत् दोःषु मां प्रणिहितं गुरु भीष्म कर्ण नप्तृ त्रिगर्तशल सैन्धव वाह्लिकाद्यैः अस्त्राणि अमोघ महिमानि निरूपितानि न उपस्पृशुः नृहरिदासं इव असुराणि ॥ १६ ॥

यत्	जिनकी
दोःषु	भुजाओंके
प्रणिहितं	आश्रयमें स्थित
मां	मुझे
गुरु	द्रोणाचार्य
भीष्म	भीष्म
कर्ण	कर्ण
नप्तृ	भूरिश्रवा
त्रिगर्त	सुशर्मा
शल	शल्य
सैन्धव	जयद्रथ
वाल्लिकाद्यैः	वाल्लीक आदि (अश्वत्थामा) के
अमोघ	अव्यर्थ
महिमानि	महिमावाले
निरूपितानि	वर्णित
अस्त्राणि	दिव्यास्त्र
उपस्पृशुः	छूतक सके
न	नहीं
नृहरि	नृसिंह भगवानके
दास	दास प्रह्लादको
असुराणि	असुरों
इव	के समान ॥१६॥

सौत्ये वृतः कुमतिनाऽऽत्मद ईश्वरो मे
यत्पादपद्ममभवाय भजन्ति भव्याः ।
मां श्रान्तवाहमरयो रथिनो भुविष्ठं
न प्राहरन् यदनुभावनिरस्तचित्ताः ॥१७॥

सौत्ये वृतः कुमतिना आत्मद ईश्वरः मे यत् पादपद्म अभवाय भजन्ति भव्याः मां श्रान्तवाहं रथिनः भुविष्ठं न प्राहरन् यत् अनुभाव निरस्त चित्ताः ॥ १७ ॥

यत्	जिनके
पादपद्म	चरणकमलोंका
भव्यः	महापुरुष
अभवाय	आवागमनसे छूटनेके लिए
भजन्ति	भजन करते हैं
मे	मुझ
कुमतिना	दुर्बुद्धिने
आत्मद	अपने आपको दे देनेवाले
ईश्वरः	उन ईश्वरको
सौत्ये	सारथि
वृतः	बनाया
यत्	जिनके —
अनुभाव	प्रभावसे
निरस्त	निरस्त
चित्ताः	चित्तवाले
रथिनः	रथियोंने
श्रान्तवाहं	थके अश्वोंवाले

भुविष्ठं	पृथ्वीपर खड़े	न प्राहरन्	प्रहार नहीं
मां	मुझपर		किया ॥१७॥

नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानि
हे पार्थहेऽर्जुन सखे कुरुनन्दनेति ।
संजल्पितानि नरदेव हृदिस्पृशानि
स्मर्तुर्लुठन्ति हृदयं मम माधवस्य ॥१८॥

नर्माणि उदार रुचिर स्मित शोभितानि हे पार्थ हे अर्जुन सखे कुरुनन्दन इति संजल्पितानि नरदेव हृदि स्पृशानि स्मर्तुः लुठन्ति हृदयं मम माधवस्य ॥ १८ ॥

नरदेव	राजन्	कुरुनन्दन	कुरुनन्दन
माधवस्य	माधवके	इति	इस प्रकार
उदार	उदार	संजल्पितानि	कहकर बातचीतके
रुचिर	सुन्दर		ढंगको
स्मित	मुस्कराहटसे	स्मर्तुः	स्मरण करनेवाला
शोभितानि	शोभित	मम	मेरा
नर्माणि	परिहास तथा	हृदयं	हृदय
हे पार्थ	हे पार्थ	लुठन्ति	जैसे लुढ़का
हे अर्जुन	हे अर्जुन		(मूर्छित हुआ) जा
सखे	सखा		रहा है ॥१८॥

शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादि-
ष्वैक्याद्वयस्य ऋतवानिति विप्रलब्धः ।
सख्युः सखेव पितृवत्तनयस्य सर्वं
सेहे महान्महितया कुमतेरघं मे ॥१९॥

शय्या आसन अटन विकत्थन भोजनादिषु ऐक्यात् वयस्य ऋतवान् इति विप्रलब्धः सख्युः सखेव पितृवत् तनयस्य सर्वं सेहे महान् महितया कुमतेः अघं मे ॥ १९ ॥

शय्या	शयन करतेमें	अटन	घूमनेमें
आसन	बैठनेमें	विकत्थन	गप्प लड़ानेमें

भोजनादिषु	भोजनादिमें	पितृवत्	पिताकी भांति
ऐक्यात्	एक साथ रहनेके कारण	तनयस्य	पुत्रका
		मे	मुझ
वयस्य	मित्र !	कुमतेः	कुबुद्धिका
ऋतवान्	तुम सच्चे हो ?	सर्वं	सब
इति	इस प्रकार	अघं	अपराध
विप्रलब्धः	ब्यंग किए जानेपर भी	महान्	उन महान्ने
		महितया	अपनी महानतासे
सखेव	सखाकी भांति	सेहे	सहन किया ॥१९॥
सख्युः	सखाका		

सोऽहं नृपेन्द्र रहितः पुरुषोत्तमेन
सख्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यः ।
अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमङ्ग रक्षन्
गोपैरसद्भिरबलेव विनिर्जितोऽस्मि ॥२०॥

सः अहं नृपेन्द्र रहितः पुरुषोत्तमेन सख्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यः अध्वनि उरुक्रम परिग्रहं अङ्ग रक्षन् गोपैः असद्भिः अबलेव विनिर्जितः अस्मि ॥ २० ॥

नृपेन्द्र	नृपेन्द्र !	अध्वनि	मार्गमें
सः	वही	अङ्ग	उन प्रियकी
अहं	मैं	परिग्रहं	पत्नियोंकी
पुरुषोत्तमेन	पुरुषोत्तम	रक्षन्	रक्षा करता हुआ
प्रियेण	प्रिय	असद्भिः	दुष्ट
सख्याः	सखा	गोपैः	गोपों द्वारा
सुहृदेन	सुहृदसे	अबलेव	स्त्रीकी भांति
रहितः	रहित होकर	विनिर्जितः	जीत लिया गया
हृदयेन	हृदयसे	अस्मि	हूँ ॥२०॥
शून्यः	सूना होगया हूँ		

तद्वै धनुस्त इषवः स रथो हयास्ते
सोऽहं रथी नृपतयो यत आनमन्ति ।
सर्वं क्षणेन तदभूदसदीशरिक्तं
भस्मन् हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम् ॥२१॥

तत् वै धनुः त इषवः स रथः हयाः ते सः अहंरथी नृपतयाः यत आनमन्ति सर्वं क्षणेन तत् असत् ईश रिक्तं भस्मन् हुतं कुहक राद्धं इव उप्तं उष्यामु ॥२१॥

वै	निश्चय
तत्	वही
धनुः	धनुष (गाण्डीव) है
त	वही
इषवः	वाण हैं
स	वही
रथः	रथ (नन्दिघोष) है
हयाः	घोड़े भी
ते	वही हैं
सः	वही
रथी	रथी
अहं	मैं हूँ
नृपतयः	राजा लोग
यत	जिसे
आनमन्ति	नमस्कार करते थे
ईश	उन समर्थसे
रिक्तं	रहित होनेपर
तत्	वह
सर्वं	सब
क्षणेन	एक क्षणमें
असत्	असत् (सारहीन)
अभूत्	होगया
भस्मन्	राखमें
हुतं	आहुतिके समान,
कुहक	कपटपूर्वक
राद्धं	सेवाके समान,
उष्यां	ऊसरमें
उप्तं	बीज बोनेके
इव	समान ॥२१॥

राजंस्त्वयाभिपृष्टानां सुहृदां नः सुहृत्पुरे ।
विप्रशापविमूढानां निघ्नतां मुष्टिभिर्मिथः ॥२२॥

राजन् त्वया अभिपृष्टानां सुहृदां नः सुहृत् पुरे विप्रशाप विमूढानां निघ्नतां मुष्टिभिः मिथः ॥२२॥

राजन्	राजन्
नः	हमारे
सुहृत्	सुहृदोंके
पुरे	नगरमें
त्वया	आपके द्वारा
अभिपृष्टानां	पूछे गये
सुहृदां	सुहृदोंमें
विप्रशाप	ब्राह्मणोंके शापसे
विमूढानां	मोहग्रस्त हुए
मिथः	परस्पर एक दूसरेको
मुष्टिभिः	घूसोंसे
निघ्नतां	मारते हुए ॥२२॥

वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथितचेतसाम् ।
अजानतामिवान्योन्यं चतुःपञ्चावशेषिताः ॥२३॥

वारुणीं मदिरां पीत्वा मदा उन्मथित चेतसां अजानतां इव अन्योन्यं चतुः पञ्च अवशेषिताः ॥२३॥

वारुणीं:	वारुणी	अन्योन्यं	एक दूसरेको
मदिरां	मदिरा	अजानता	अपरिचित
पीत्वा	पीवर	इव	के समान
मदा	नशेसे	चतुः	चार
उन्मथित	मनवाले हुए	पञ्च	पाँच
चेतसां	चित्तवाले	अवशेषिताः	बच गये हैं ॥२३॥

प्रायेणैतद् भगवत ईश्वरस्य विचेष्टितम् ।
मिथो निघ्नन्ति भूतानि भावयन्ति च यन्मिथः ॥२४॥

प्रायेण एतद् भगवतः ईश्वरस्य विचेष्टितं मिथः निघ्नन्ति भूतानि भावयन्ति च यत् मिथः ॥२४॥

प्रायेण	प्रायः	यत्	जिनकी
एतद्	यह	मिथः	परस्पर
ईश्वरस्य	सर्व संचालक	भावयन्ति	रक्षा करते हैं
भगवतः	भगवानकी	च	उन्हींको
विचेष्टितं	विशेष क्रीड़ा है कि	मिथः	परस्पर
भूतानि	प्राणी	निघ्नन्ति	मारते हैं ॥२४॥

जलौकसां जले यद्वन्महान्तोऽदन्त्यणीयसः ।
दुर्बलान्बलिनो राजन्महान्तो बलिनो मिथोः ॥ ५॥

जल ओकसां जले यद्वत् महान्तः अदन्ति अणीयसः दुर्बलान् बलिनः राजन् महान्तः बलिनः मिथ ॥२५॥

राजन्	राजन्	ओकसां	रहनेवालोंमें
यद्वत	जैसे	महान्तः	बड़े (जलचर)
जले	जलमें	अणीयसः	छोटोंको

अदन्ति	खा लेते हैं (ऐसे ही)	बलिनः	बलवान
बलिनः	बलवान	मिथः	परस्पर(लड़ते मर
दुर्बलान्	दुर्बलोंको (और)		हैं ॥२५॥
महान्तः	महान्		

एवं बलिष्ठैर्यदुभिर्महद्भिरितरान् विभुः ।
यदून् यदुभिरन्योन्यं भूभारान् संजहार ह ॥२६॥

एवं बलिष्ठैः यदुभिः महद्भिः इतरान् विभुः यदून् यदुभिः अन्योन्यं भूभारान् संजहार ह ॥२६॥

एवं	इसी प्रकार	ह	और
विभुः	समर्थ (श्रीकृष्ण)ने	यदून्	यदुवंशियोंको
महद्भिः	महान बलवान	यदुभिः	यदुवंशियों द्वारा
यदुभिः	यदुवंशियों द्वारा	अन्योन्यं	एक दूसरे द्वारा ही
इतरान्	दूसरे	संजहार	विनाश करवा दिया
भूभारान्	पृथ्वीके भार रूप (राजाओं)को		॥२६॥

देशकालार्थयुक्तानि हृत्तापोपशमानि च ।
हरन्ति स्मरतश्चित्तं गोविन्दाभिहितानि मे ॥२७॥

देश काल अर्थ युक्तानि हृत् ताप उपशमानि च हरन्ति स्मरः चित्तं गोविन्द अभिहितानि मे ॥२७॥

देश	स्थान	गोविन्द	गोविन्दके
काल	समय	अभिहितानि	उपदेश
अर्थ	प्रयोजनसे	स्मरतः	स्मरण करनेपर
युक्तानि	संयुक्त	मे	मेरा
च	तथा	चित्तं	चित्त
हृत्ताप	हृदयके तापको	हरन्ति	खींच लेते हैं ॥२७॥
उपशमानि	शान्त कर देनेवाला		

सूत उवाच-

एवं चिन्तयतो जिष्णोः कृष्णपादसरोरुहम् ।
सौहार्देनातिगाढेन शान्ताऽऽसीद्विमला मतिः ॥२८॥

एवं चिन्तयतः जिष्णोः कृष्ण पाद सरोरुहं सौहार्द्रेन अति गाढेन शान्ता आसीत् विमला मतिः ॥ २८ ॥

एव	इस प्रकार	जिष्णोः	अर्जुनकी
अति गाढेन	अत्यन्त प्रगाढ़	मतिः	बुद्धि
सौहार्द्रेन	सुहृदतापूर्वक	शान्ता	शान्त
कृष्ण	श्रीकृष्णके	विमला	निर्मल
पादसरोरुहं	चरणकमलोंका	आसीत्	होगयी ॥२८॥
चिन्तयतः	चिन्तन करते हुए		

वासुदेवाङ्घ्र्यनुध्यानपरिबृंहितरंहसा ।
भक्त्या निर्मथिताशेषकषायधिषणोऽर्जुनः ॥२९॥

वासुदेव अंघ्रि अनुध्यान परिबृंहित रंहसा भक्त्या निर्मथित अशेष कषाव धिषणः अर्जुनः ॥ २९ ॥

वासुदेव	वासुदेवके	अर्जुन	अर्जुनकी
अंघ्रि	चरणोंकों	धिषणः	बुद्धिका
अनुध्यान	बार बार ध्यानके	अंशेष	सम्पूर्ण
रंहसा	वेगसे	कषाय	मल
परिबृंहित	संयुक्त	निर्मथितं	(रगड़कर)स्वच्छ कर
भक्त्या	भक्तिके द्वारा		दिया गया ॥२९॥

गीतं भगवता ज्ञानं यत् तत् सङ्ग्राममूर्धनि ।
कालकर्मतमोरुद्धं पुनरध्यगमद्विभुः ॥३०॥

गीतं भगवता ज्ञानं यत् तत् संग्राम मूर्धनि काल कर्म तमः रुद्धं पुनः अध्यगमत् विभुः ॥ ३० ॥

भगवता	भगवान श्रीकृष्ण द्वारा		होने) से
संग्राम	महाभारत युद्धके	कर्म	(युद्ध जैसे) कर्म (में लगने) से
मूर्धनि	प्रारम्भमें	तमः	प्रमादसे
यत्	जो	रुद्धं	रुक (विस्मृत) होगया था
ज्ञानं	ज्ञान	विभुः	(वह) प्रबल (ज्ञान)
गीतं	गाया (सुनाया) था	पुनः	फिर
तत्	वह	अध्यगमत्	स्मरण आगया ॥३०॥
काल	समय (अनुकूल न		

विशोको ब्रह्मसम्पत्त्या संछिन्नद्वैतसंशयः ।
लीनप्रकृतिनैर्गुण्यादलिङ्गत्वादसम्भवः ॥३१॥

विशोकः ब्रह्म सम्पत्त्या संछिन्न द्वैत संशयः लीन प्रकृति नैर्गुण्यात् अलिंगत्वात् असम्भवः ॥ ३१ ॥

ब्रह्म	ब्रह्म	प्रकृतिः	अविद्या
सम्त्या	सम्पत्ति (ब्रह्मावस्थान)होनेसे	लीनः	विलीन होगयी ।
विशोकः	शोकरहित होगये	नैर्गुण्यात्	गुणातीत होनेसे
द्वैत	द्वैतजन्य	अलिंगत्वात्	कारण शरीर भंग हो जानेसे
संशयः	संशय	असंभवः	जन्म-मरणसे छूट गये ॥३१॥
संच्छिन्नः	कट गया ।		

निशम्य भगवन्मार्गं संस्थां यदुकुलस्य च ।
स्वःपथाय मतिं चक्रे निभृतात्मा युधिष्ठिरः ॥३२॥

निशम्य भगवन् मार्गं संस्थां यदुकुलस्य च स्वः पथाय मतिं चक्रे निभृतात्मा युधिष्ठिरः ॥ ३२ ॥

भगवन्	भगवान श्रीकृष्णके	यदुकुलस्य	यदुकुलके
मार्गं	मार्ग (स्वधाम गमन) को	संस्थां	विनाशको
		निशम्य	सुनकर
च	और	निभृतात्मा	निश्चल बुद्धि

युधिष्ठिरः	युधिष्ठिरने	मतिं	निश्चय
स्वःपथाय	स्वर्गारोहणका	चक्रे	किया ॥३२॥

पृथाप्यनुश्रुत्य धनञ्जयोदितं
नाशं यदूनां भगवद्गतिं च ताम् ।
एकान्तभक्त्या भगवत्यधोक्षजे
निवेशितात्मोपरराम संसृतेः ॥३३॥

पृथा अपि अनुश्रुत्य धनंजय उदितं नाशं यदूनां भगवत् गतिं च तां एकान्त भक्त्या भगवति अधोक्षजे निवेशित आत्मा उपरराम संसृते ॥३३॥

पृथा	कुन्तीदेवी	एकान्त	अनन्य
अपि	ने भी	भक्त्या	भक्तिसे
धनञ्जय	अर्जुन द्वारा	भगवति	भगवान
उदितं	कहा गया	अधोक्षजे	हृषीकेशमें
यदूनां	यदुवंशियोंका	आत्मा	चित्त
नाशं	विनाश	निवेशित	लगाकर
च	और	संसृतेः	जन्म-मृत्यु रूप
भगवत्	भगवानकी		संसारसे
तां	उस	उपरराम	उपरत (मुक्त)
गतिको			होगयीं ॥३३॥
अनुश्रुत्य	सुनकर		

ययाहरद् भुवो भारं तां तनुं विजहावजः ।
कण्टकं कण्टकेनेव द्वयं चापीशितुः समम् ॥३४॥

ययां अहरत् भुवः भारं तां तनुं विजहाव अजः कण्टकं कण्टकेन इव द्वय च अपि ईशितुः समम् ॥ ३४ ॥

कण्टकं	काँटेको	भुवः	पृथ्वीका
कण्टकेन	काँटेसे (निकालने)के	भारं	भार
इव	समान	अहरत्	हरण किया
यया	जिसके द्वारा	अजः	अजन्मा भगवानने

तां	उस	द्वय	दोनों ही*
तनुं	शरीरको*	ईशितुः	सर्वेश्वरके लिए
अपि	भी	समं	समान हैं ॥३४॥
विजहाव	छोड़ दिया		

यथा मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्याद् यथा नटः ।
भूभारः क्षपितो येन जहौ तच्च कलेवरम् ॥३५॥

यथा मत्स्यादि रूपाणि धत्ते जह्यात् यथा नटः भूभारः क्षपितः येन जहौ तत् च कलेवरम् ॥ ३५ ॥

यथा	जैसे	येन	जिस रूपसे
मत्स्यादि	मत्स्य आदि (कूर्म, वाराह, वामनादि)	भूभारः	पृथ्वीका भार
		क्षपितः	दूर किया
रूपाणि	रूप	तत्	वह
धत्ते	धारण करते हैं और	कलेवरं	कलेवर**
जह्यात्	छोड़ देते हैं	च	भी
यथा	जैसे	जहौ	छोड़ दिया ॥३५॥
नटः	नट (अनेक वेश बनाता छोड़ता है)		

यदा मुकुन्दो भगवानिमां महीं
जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः ।
तदाहरेवाप्रतिबुद्धचेतसा—
मधर्महेतुः कलिरन्ववर्तत ॥३६॥

---

* आचार्यगण यहाँ 'तनुं' का अर्थ यदुवंशियोंका शरीर करते हैं। दोनोंका अर्थ करते हैं—भू भार भूत राजागण तथा यदुवंशी ये दोनों ईश्वरके लिए समान ही हैं। यह अर्थ इसलिए करना पड़ता है; क्योंकि श्रीकृष्णका श्रीविग्रह नित्य है। उसे छोड़ना सम्भव नहीं है।

** श्रीकृष्ण भक्ति सम्प्रदायोंमें श्रीकृष्णका नन्दनन्दन रूप नित्य माना जाता है और चतुर्भुज वासुदेव रूप भूमा पुरुषका अंशा भूभार इस चतुर्भुज रूपसे दूर करके इस रूपको छोड़ दिया।

यदा मुकुन्दः भगवान् इमां महीं जहौ स्वतन्वा श्रवणीयः सत्कथः तदा अहः एव अतिप्रतिबुद्ध चेतसां अधर्म हेतुः कलिः अन्ववर्तत ॥३६॥

यदा	जब	तदा	उस
सत्कथः	जिनकी सत् कथा	अहः एव	दिनसे ही
श्रवणीयः	सुनने योग्य हैं (उन)	अप्रतिबुद्ध	विचारहीन
भगवान्	भगवान	चेतसां	चित्तवालोंको
मुकुन्दः	मुकुन्दने	अधर्म	अधर्ममें
स्व	अपने	हेतुः	(लगनेका) कारण
तन्वा	शरीरसे	कलिः	कलियुग
इमां	इस	अन्ववर्तत	प्रभावमें आगया ॥३६॥
महीं	पृथ्वीको		
जहौ	छोड़ा		

युधिष्ठिरस्तत्परिसर्पणं बुधः
पुरे च राष्ट्रे च गृहे तथाऽऽत्मनि ।
विभाव्य लोभानृतजिह्महिंसना-
द्यधर्मचक्रं गमनाय पर्यधात् ॥३७॥

युधिष्ठिरः तत् परिसर्पणं बुधः पुरे च राष्ट्रे च गृहे तथा आत्मनि विभाव्य लोभ अनृत जिह्म हिंसनात् हि अधर्म चक्रं गमनाय पर्यधात् ॥३७॥

युधिष्ठिरः	राजा युधिष्ठिरने	च	एवं
हि	क्योंकि	गृहे	घरमें
तत्	उस (कलियुग) का	तथा	तथा
परिसर्पणं	फैलाव	आत्मनि	अपने लोगोंमें
लोभ	लोभ	बुधः	जान लिया
अनृत	झूठ	अधर्म	अधर्मका
जिह्म	कपट	चक्रं	चक्र (चल पड़ा) था
हिंसनात्	हिंसासे	गमनाय	(उससे) निकल चलनेका
विभाव्य	अनुमान कर लिया	पर्यधात्	दृढ़ निश्चय किया ॥३७॥
पुरे	नगरमें		
च	तथा		
राष्ट्रे	राज्यमें		

स्वराट् पौत्रं विनयिनमात्मनः सुसमं गुणैः ।
तोयनीव्या पतिं भूमेरभ्यषिञ्चद्गजाह्वये ॥३८॥

स्वराट् पौत्रं विनयिनं आत्मनः सुसमं गुणैः तोयनीव्याः पतिं भूमेः अभ्यसिञ्चत् गजाह्वये ॥ ३८ ॥

विनयिनं	विनयी	भूमेः	पृथ्वीका
गुणैः	गुणोंमें	पतिं	स्वामी (बनाते)
आत्मनः	अपने	स्वराट्	सम्राट् पदपर
सुसमं	भली प्रकार समान	गजाह्वये	हस्तिनापुरमें
पौत्रं	पौत्र परीक्षित्को	अभ्यसिञ्चत्	अभिषेक कर दिया ॥३८॥
तोयनीव्या	समुद्र पर्यन्त		

मथुरायां तथा वज्रं शूरसेनपतिं ततः ।
प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमग्नीनपिबदीश्वरः ॥३९॥

मथुरायां तथा वज्रं शूरसेन पतिं ततः प्राजापत्यं निरूप्य इष्टिं अग्नीन् अपिबत् ईश्वरः ॥ ३९ ॥

तथा	इसी प्रकार	ईश्वरः	समर्थ (युधिष्ठिर) ने
मथुरायां	मथुरामें	प्राजापत्य	प्राजापत्य
शूरसेन	शूरसेनदेशके	इष्टि	यज्ञ
पतिं	स्वामीके रूपमें	निरूप्य	करके
वज्रं	(प्रद्युम्नके पौत्र) वज्रनाभका (अभिषेक किया)	अग्नीन्	अग्नियोंको
		अपिबत्	* पीलिया (अपनेमें ही न्यास कर लिया) ३९॥
ततः	तदनन्तर		

विसृज्य तत्र तत् सर्वं दुकूलवलयादिकम् ।
निर्ममो निरहंकारः संछिन्नाशेषबन्धनः ॥४०॥

---

* गृहस्थको सदा अग्निहोत्र करना चाहिए । गृहस्थ धर्म त्यागकर संन्यास या वीरसंन्यास लेते समय अग्निका त्याग करनेकी यह विशेष विधि है ।

विसृज्य तत्र तत् सव दुकूल वलय आदिकं निर्ममः निरहंकार संछिन्नः अशेष बन्धनः ॥ ४० ॥

तत्र	वहीं	विसृज्य	छोड़कर
तत्	वह	निर्ममः	ममता रहित
सर्व	सब	निरहंकारः	अहंकार हीन
दुकूल	उत्तरीय (बहुमूल्य वस्त्रादि)	अशेष	सम्पूर्ण
		बन्धनः	बन्धनोंको
वलय	कंकण	संछिन्नः	काटकर ॥४०॥
आदिकं	आदि आभूषण		

वाचं जुहाव मनसि तत्प्राण इतरे च तम् ।
मृत्यावपानं सोत्सर्गं तं पञ्चत्वे ह्यजोहवीत् ॥४१॥

वाचं जुहाव मनसि तत् प्राण इतरे च तं मृत्याः अपानं स उत्सर्गं तं पञ्चत्वे हि अजः हवीत् ॥ ४१ ॥

वाचं	वाणीका	मृत्याः	मृत्युमें (मृत्यु पर्यन्त इनका भी त्याग कर दिया)
मनसि	मनमें		
जुहाव	लय कर लिया (मौन होगये)	तं	उस (मृत्युको)
		पञ्चत्वे	(पंचभूतात्मक देहकी मृत्यु होती है–इस निश्चयसे) पञ्चत्वमें
तत्	उसे		
प्राण	प्राणमें (प्राण संयम करके मनको स्थिर कर दिया)		
		हि	क्योंकि
इतरे	दूसरी इन्द्रियोंको	अजः	आत्मा अजन्मा है
च	भी	हवीत्	(मृत्युका भी) हवन (त्याग) कर दिया ॥४१॥
तं	उसी प्राणमें		
अपानं	अपान वायुको		
स उत्सर्गं	मल-मूत्रोत्सर्गके साथ		

त्रित्वे हुत्वाथ पञ्चत्वं तच्चैकत्वेऽजुहोन्मुनिः ।
सर्वमात्मन्यजुहवीद्ब्रह्मण्यात्मानमव्यये ॥४२॥

त्रित्वे हुत्वा अथ पञ्चत्वं तत् च एकत्वे अजुहोत् मुनिः सर्वात्मनि ब्रह्मणि आत्मानं आत्मनि अव्यये ॥ ४२ ॥

मुनिः	मननशील (युधिष्ठिर) ने	अजुहोत्	हवन किया।
त्रित्वे	त्रिगुणात्मक प्रकृतिमें	सर्वात्मनि	सर्वात्मा
पञ्चत्वं	(महाभूतोंकी) पंचात्मकताको	ब्रह्मणि	ब्रह्म रूप
तत्	उस (त्रिगुणत्व) को	आत्मानं	अपने आप
च	भी	अव्यये	निर्विकार
एकत्वे	एकत्वमें	आत्मनि	परमात्मासे
		अजुहोत्	हवन कर (मिला) दिया ॥४२॥

चीरवासा निराहारो बद्धवाङ् मुक्तमूर्धजः।
दर्शयन्नात्मनो रूपं जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥४३॥

चीरवासा निराहारः बद्धवाङ् मुक्तमूर्धजः दर्शयन् आत्मनः रूपं जड उन्मत्त पिशाचवत् ॥ ४३ ॥

चीरवासा	कौपीनधारी	रूपं	रूप
निराहारः	निराहार	जड	मूर्ख
बद्धवाङ्	मौन	उन्मत्त	पागल
मूर्धजः	सिरके केश	पिशाचवत्	प्रेत लगेके समान
मुक्त	खोले	दर्शयन्	दिखलाते ॥४३॥
आत्मनः	अपना		

अनपेक्षमाणो निरगादशृण्वन्बधिरो यथा।
उदीचीं प्रविवेशाशां गतपूर्वां महात्मभिः।
हृदि ब्रह्म परं ध्यायन्नावर्तेत यतो गतः ॥४४॥

अन अपेक्षमाणः निरगात् अशृण्वन् बधिरः यथा उदीचीं प्रविवेश आशां गत पूर्वां महात्मभिः हृदि ब्रह्म परं ध्यायन् न आवर्तेत यतो गतः ॥ ४४ ॥

अन	बिना (किसीकी)	यथा	जैसे
अपेक्षमाणः	अपेक्षा किए	बधिरः	बहिरे हों

अशृण्वन्	(किसीकी भी बात) न सुनते हुए	गत	गये हुए
		उदीचीं	उत्तर
हृदि	हृदयमें	दिशां	दिशामें
परं	परम	प्रविवेश	प्रवेश किया (गये)
ब्रह्म	ब्रह्मका	यतः	जहाँ
ध्यायन्	ध्यान करते	गतः	जाकर (कोई)
पूर्वां	पहिलेके	न	नहीं
महात्मभिः	महात्माओं द्वारा	आवर्तेत	लौटता ॥४४॥

सर्वे तमनु निर्जग्मुर्भ्रातरः कृतनिश्चयाः ।
कलिनाधर्ममित्रेण दृष्ट्वा स्पृष्टाः प्रजा भुवि ॥४५॥

सर्वे तं अनु निर्जग्मुः भ्रातरः कृत निश्चयाः कलिना अधर्म मित्रेण दृष्ट्वा स्पृष्टाः प्रजा भुवि ॥ ४५ ॥

अधर्म	अधर्मके	दृष्ट्वा	(यह) देखकर
मित्रेण	मित्र	सर्वे	सब
कलिना	कलियुगके द्वारा	भ्रातरः	भाई
भुवि	पृथ्वीपर	कृतनिश्चयाः	निश्चय करके
प्रजा	प्रजाका	तं	उन (युधिष्ठिर) के
स्पृष्टाः	स्पर्श (प्रभावित) करली गयी है	अनु	पीछे
		निर्जग्मुः	निकल पड़े ॥४५॥

तेसाधुकृतसर्वार्था ज्ञात्वाऽऽत्यन्तिकमात्मनः ।
मनसा धारयामासुर्वैकुण्ठचरणाम्बुजम् ॥४६॥

ते साधु कृत सर्वार्था ज्ञात्वा आत्यन्तिकं आत्मनः मनसा धारयामासुः वैकुण्ठ चरणाम्बुजम् ॥ ४६ ॥

ते	वे	वैकुण्ठ	श्रीकृष्णके
सर्वार्था	सब पुरुषार्थ	चरणाम्बुजं	चरणकमलोंको
साधु	भली प्रकार	ज्ञात्वा	जानकर
कृत	प्राप्त कर लिए थे	मनसा	चित्तमें (उन्हें)
आत्मनः	अपना	धारयामासुः	धारण किया ॥४६॥
आत्यन्तिकं	अन्तिम (लक्ष्य)		

तद्ध्यानोद्रिक्तया भक्त्या विशुद्धधिषणाः परे ।
तस्मिन् नारायणपदे एकान्तमतयो गतिम् ॥४७॥

तत् ध्यान उद्रिक्तया भक्त्या विशुद्ध धिषणाः परे तस्मिन् नारायण पदे एकान्त मतयः गतिं ॥ ४७ ॥

तत्	उन (श्रीकृष्ण) के	मतयः	मति (भाव) वाले
ध्यान	ध्यानसे		(वे)
उद्रिक्तया	प्रवृद्ध	तस्मिन्	उन
भक्त्या	भक्ति द्वारा	परे	परम पुरुष
धिषणाः	बुद्धि	नारायण	नारायणके
विशुद्ध	विशुद्ध होगयी	पदे	पद (स्थान) में
एकान्त	अनन्य	गतिं	गति प्राप्त हुए ॥४७॥

अवापुर्दुरवापां ते असद्भिर्विषयात्मभिः ।
विधूतकल्मषास्थाने विरजेनात्मनैव हि ॥४८॥

अवापुः दुः अवापां असद्भिः विषयात्मभिः विधूत कल्मष आस्थाने विरजेन आत्मना एव हि ॥ ४८ ॥

विषयात्मभिः	विषयोंमें लगे चित्तवाले	विधूत	रहितोंके
		आस्थाने	पदको
असद्भिः	असंयत लोगोंके लिए	हि	क्योंकि
दुः	बड़े कष्टसे	विरजेन	निर्मल होनेसे
अवापां	मिलनेवाली (गतिको)	आत्मना	अपने आप
		एव	ही
कल्मष	मलिनता	अवापुः	प्राप्त हुए ॥४८॥

विदुरोऽपि परित्यज्य प्रभासे देहमात्मवान् ।
कृष्णावेशेन तच्चित्तः पितृभिः स्वक्षयं ययौ ॥४९॥

विदुरः अपि परित्यज्य प्रभासे देह आत्मवान् कृष्ण आवेशेन तत् चित्तः पितृभिः स्व क्षयं ययौ ॥ ४९ ॥

आत्मवान्	संयमी	प्रभासे	प्रभासमें
कृष्ण	श्रीकृष्णके	देह	शरीर
आवेशेन	आवेशसे	परित्यज्य	छोड़कर
तत्	उनमें	पितृभिः	पितरोंके साथ
चित्तः	चित्त लगाये	स्व	अपने
विदुरः	विदुर	क्षयं	धाम (यमलोक)
अपि	भी	ययौ	गए ॥४९॥

द्रौपदी च तदाऽऽज्ञाय पतीनामनपेक्षताम् ।
वासुदेवे भगवति ह्येकान्तमतिरापतम् ॥५०॥

द्रौपदी च तत् आज्ञाय पतीनां अनपेक्षतां वासुदेवे भगवति हि एकान्त मतिः अवाप तम् ॥ ५० ॥

द्रौपदी	द्रौपदीने	भगवति	भगवान
च	भी	वासुदेवे	वासुदेवमें
तत्	वह	एकान्त	अनन्य
पतीनां	पतियोंकी	मतिः	बुद्धि थी
अनपेक्षतां	अपेक्षा हीनता	तं	उनको
आज्ञाय	जानकर	अवाप	प्राप्त होगयी ॥५०॥
हि	क्योंकि		

यः श्रद्धयैतद् भगवत्प्रियाणां
पाण्डोः सुतानामिति सम्प्रयाणम् ।
शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं
लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम् ॥५१॥

यः श्रद्धयति एतत् भगवत् प्रियाणां पाण्डोः सुतानां इति सम्प्रयाणं शृणोति अलं स्वस्त्ययनं पवित्रं लब्ध्वा हरौ भक्तिं उपैति सिद्धिम् ॥ ५१ ॥

अलं	पूर्ण	पवित्रं	पवित्र
स्वस्त्ययनं	कल्याणकारी	भगवत्	भगवानके

प्रियाणां	प्रिय	श्रद्धयति	(इस पर) श्रद्धा करता है
पाण्डोः	पाण्डुके		
सुतानां	पुत्रोंका	हरौ	श्रीहरिमें
इति	इस प्रकारका	भक्तिं	भक्ति
एतत्	यह	लब्ध्वा	प्राप्त करके
सम्प्रयाणं	परमगति पा लेना	सिद्धिं	अन्तःकरणकी शुद्धि
यः	जो	उपैति	पाता है ॥५१॥
शृणोति	सुनता है		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः

अथ षोडशोऽध्यायः

सूत उवाच–

ततः परीक्षित् द्विजवर्यशिक्षया
महीं महाभागवतः शशास ह ।
यथा हि सूत्यामभिजातकोविदाः
समादिशन् विप्र महद्गुणस्तथा ॥१॥

ततः परीक्षित् द्विजवर्य शिक्षया महीं महाभागवतः शशास ह यथा हि सूत्यां अभिजात कोविदाः समादिशन् विप्र महद्गुणाः तथा ॥ १ ॥

ततः	तदनन्तर	अभिजात	जातक (ज्योतिष शास्त्र) के
विप्र	शौनकजी !	कोविदाः	विद्वानोंने
महाभागवतः	महाभागवत	यथा	जैसा
परीक्षित्	परीक्षित्	हि	कि
द्विजवर्य	उत्तम ब्राह्मणोंकी	समादिशन्	बतलाया था
शिक्षया	शिक्षाके अनुसार	तथा	वैसे ही
ह	ही	महद्गुणाः	महापुरुषोंके गुण (उनमें थे) ॥१॥
महीं	पृथ्वीका		
शशास	शासन करने लगे		
सूत्यां	सूतिका गृहमें		

स उत्तरस्य तनयामुपयेम इरावतीम् ।
जनमेजयादींश्चतुरस्तस्यामुत्पादयत् सुतान् ॥२॥

स उत्तरस्य तनयां उपयेम इरावतीं जनमेयः आदींन् चतुरान् तस्यां उत्पादयत् सुतान् ॥ २ ॥

स	उन्होंने	तनयां	पुत्री
उत्तरस्य	उत्तरकी	इरावतीं	इरावतीसे

उपयेम	विवाह किया	चतस्रः	चार
तस्यां	उसमें	सुतान्	पुत्रोंको
जनमेजः	जनमेजय	उत्पादयत्	उत्पन्न किया ॥२॥
आदींन्	आदि		

आजहाराश्वमेधांस्त्रीन्गङ्गायां भूरिदक्षिणान् ।
शारद्वतं गुरुं कृत्वा देवा यत्राक्षिगोचराः ॥३॥

आजहार अश्वमेधान् त्रीन् गंगायां भूरि दक्षिणान् शारद्वतं गुरुं कृत्वा देवा यत्र अक्षिगोचराः ॥ ३ ॥

शारद्वतं	कृपाचार्यको	गङ्गायां	गंगा किनारे
गुरुं	गुरु	आजहार	किये
कृत्वा	बनाकर	यत्र	जिनमें
भूरि	बहुत	देवा	देवता
दक्षिणान्	दक्षिणावाले	अक्षिगोचरा	प्रत्यक्ष दर्शन देते
त्रीन्	तीन		थे ॥३॥
अश्वमेधान्	अश्वमेध यज्ञ		

निजग्राहौजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित् ।
नृपलिङ्गधरं शूद्रं घ्नन्तं गोमिथुनं पदा ॥४॥

निजग्राह ओजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित् नृपलिङ्ग धरं शूद्रं घ्नन्तं गोमिथुनं पदा ॥ ४ ॥

वीरः	वीर (परीक्षित) ने	गोमिथुनं	गाय-बैलकी जोड़ीको
क्वचित्	कभी	पदा	पैरसे
नृपलिङ्ग धरं	राजाओंके चिह्न	घ्नन्तं	मारते
	धारण करनेवाले	ओजसा	तेजपूर्वक
शूद्रं	शूद्र	निजग्राह	नियन्त्रित
कलिं	कलियुगको		किया ॥४॥

शौनक उवाच—

कस्य हेतोर्निजग्राह कलिं दिग्विजये नृपः ।

नृदेवचिह्नधृक् शूद्रकोऽसौ गां यः पदाहनत् ।
तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम् ॥५॥

कस्य हेतोः निजग्राह कलिं दिग्विजये नृपः नृदेव चिह्न धृक् शूद्र कः असौ गां यः पदाहनत् तत् कथ्यतां महाभाग यदि कृष्ण कथा आश्रयम् ॥५॥

नृपः	राजा परीक्षितने	कः	कौन था
दिग्विजये	दिग्विजयेके समय	यः	जो
कस्य	किस	गां	गायको
हेतोः	कारणसे	पदाहनत्	पैरसे मार रहा था ?
कलिं	कलियुगका	महाभाग	महाभाग सूतजी
निजग्राह	नियन्त्रण किया ?	यदि	यदि
नृदेव	राजाका	कृष्ण कथा	श्रीकृष्णकी कथाका
चिह्नधृक्	चिह्न (मुकुटादि) धारण करनेवाला	आश्रयं	अंग (हो तो)
शूद्र	शूद्र	तत्	वह
असौ	यह	कथ्यतां	कहिए ॥५॥

अथवास्य पदाम्भोजमकरन्दलिहां सताम् ।
किमन्यैरसदालापैरायुषो यदसद्व्ययः ॥६॥

अथवा अस्य पदाम्भोज मकरन्द लिहां सतां किं अन्यैः असत् आलापैः आयुषः यत् असत् व्ययः ॥ ६ ॥

अथवा	अथवा	असत्	व्यर्थ
अस्य	इन (श्रीकृष्ण) के	आलापैः	चर्चाओंसे
पदाम्भोज	चरणकमलोंके	किं	क्या लाभ
मकरन्द	मकरन्दका	यत्	जिनमें
लिहां	पान करनेवाले	आयुषः	आयुका
सतां	सत्पुरुषोंकी(कथा हो)	असत्	व्यर्थ
अन्यैः	दूसरी	व्यय	व्यय होता है ॥६॥

क्षुद्रायुषां नृणामङ्ग मर्त्यानामृतमिच्छताम् ।
इहोपहूतो भगवान् मृत्युः शामित्रकर्मणि ॥७॥

क्षुद्र आयुषां नृणां अङ्ग मर्त्यानां अमृतं इच्छतां इह उपहूतः भगवान् मृत्युः शामित्रः कर्मणि ॥ ७ ॥

अङ्ग	प्रिय सूतजी	भगवान्	भगवान
क्षुद्र	छोटी	मृत्युः	मृत्युको
आयुषां	आयुवाले	शामित्र	शान्ति
अमृतं	अमृतत्त्वकी	कर्मणि	कर्मके लिए
इच्छतां	इच्छा करनेवाले	उपहूतः	बुला लिया गया है ॥७॥
नृणां	मनुष्योंके लिए		
इह	यहाँ		

न कश्चिन्म्रियते तावद् यावदास्त इहान्तकः ।
एतदर्थं हि भगवानाहूतः परमर्षिभिः ।
अहो नृलोके पीवेत हरिलीलामृतं वचः ॥८॥

न कश्चित् म्रियते तावत् यावत् आस्त इह अन्तकः एतत् अर्थं हि भगवान् आहूतः परमर्षिभिः अहो नृलोके पीवेत हरिलीला अमृतं वचः ॥ ८ ॥

कश्चित्	कोई भी	परमर्षिभिः	परमर्षियों द्वारा
तावत्	तबतक	भगवान्	भगवान (मृत्यु)
न	नहीं	आहूतः	बुलाये गये हैं
म्रियेत	मरेगा	अहो	अहो
यावत्	जबतक	नृलोके	मनुष्यलोकमें
अन्तकः	मृत्युदेव	हरिलीला	भगवानकी लीलाओंका
इह	यहाँ		
आस्त	हैं	वचः	वर्णन
हि	क्योंकि	पीवेत	पान (श्रवण) करे ॥८॥
एतत्	इसी		
अर्थं	प्रयोजनसे		

मन्दस्य मन्दप्रज्ञस्य वयो मन्दायुषश्च वै ।
निद्रया ह्रियते नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः ॥९॥

मन्दस्य मन्द प्रज्ञस्य वयः मन्द आयुषःस्य च वै निद्रया ह्रियते नक्तं दिवा च व्यर्थ कर्मभिः ॥ ९ ॥

वै	निश्चय	नक्तं	रात
मन्दस्य	पौरुषहीन	निद्रया	नींदमें
मन्द	मन्द	च	और
प्रज्ञस्य	बुद्धिवाले	दिवा	दिन
च	और	व्यर्थं	व्यर्थ
मन्द	थोड़ी	कर्मभिः	कर्मोंमें
आयुषस्य	आयुवाले (लोगों)की	ह्रियते	बीत जाता है ॥९॥
वयः	आयु		

सूत उवाच–

यदा परीक्षित् कुरुजाङ्गलेवसन्
कलिं प्रविष्टं निजचक्रवर्तिते ।
निशम्य वार्तामनतिप्रियां ततः
शरासनं संयुगशौण्डिराददे ॥१०॥

यदा परीक्षित कुरुजाङ्गले अवसन् कलिं प्रविष्टं निज चक्रवर्तिते निशम्य वार्तां अनति प्रियां ततः शरासनं संयुग शौण्डिः आददे ॥ १० ॥

यदा	जब	अनति	कुछ कम
परीक्षित	परीक्षितने	प्रियां	प्रिय
कुरुजाङ्गले	कुरुजाङ्गल देशमें	वार्तां	समाचार
अवसन्	निवास करते हुए	निशम्य	सुनकर
निज	अपने	संयुग	युद्धके लिए
चक्रवर्तिते	चक्रवर्ती राज्यमें	शरासनं	धनुष
कलिं	कलिका	शौण्डिः	हाथमें
प्रविष्टं	प्रवेश	आददे	उठा लिया ॥१०॥

स्वलंकृतं श्यामतुरङ्गयोजितं
रथं मृगेन्द्रध्वजमाश्रितः पुरात् ।

वृतो रथाश्वद्विपपत्तियुक्तया
स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः ॥११॥

स्व अलंकृतं श्यामतुरङ्ग योजितं रथं मृगेन्द्र ध्वज आश्रितः पुरात् वृतः रथ अश्व द्विप पत्ति युक्तया स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः ॥ ११ ॥

स्व	अपने	अश्व	घोड़े
अलंकृतं	आभूषणोंसे भूषित होकर	द्विप	हाथी
		पत्ति	पैदल
श्यामतुरङ्ग	काले घोड़ोंसे	युक्तया	युक्त (चतुरंगिणी)
योजितं	जुड़े	स्वसेनया	अपनी सेनासे
मृगेन्द्रध्वज	सिंह चिह्नवाली ध्वजायुक्त	वृतः	घिरे
		पुरात्	नगरसे
रथं	रथपर	दिग्विजयाय	दिग्विजयके लिए
आश्रितः	बैठकर	निर्गतः	निकल पड़े ॥११॥

भद्राश्वं केतुमालं च भारतं चोत्तरान् कुरून् ।
किम्पुरुषादीनि वर्षाणि विजित्य जगृहे बलिम् ॥१२॥

भद्राश्वं केतुमालं च भारतं च उत्तरान् कुरून् किम्पुरुषादीनि वर्षाणि विजित्य जगृहे बलिम् ॥ १२ ॥

भद्राश्वं	भद्राश्ववर्ष	किम्पुरुष	किम्पुरुष
केतुमालं	केतुमालवर्ष	आदीनि	आदि
च	और	वर्षाणि	देशोंको
भारतं	भारतवर्ष	विजित्य	जीतकर
च	तथा	बलि	उपहार
उत्तरान् कुरून्	उत्तर कुरुवर्ष	जगृहे	लिया ॥१२॥

तत्र तत्रोपशृण्वानः स्वपूर्वेषां महात्मनाम् ।
प्रगीयमाणं च यशः कृष्णमाहात्म्यसूचकम् ॥१३॥

तत्र तत्र उप शृण्वानः स्व पूर्वेषां महात्मनां प्रगीयमाणं च यशः कृष्ण माहात्म्य सूचकम् ॥ १३ ॥

तत्र तत्र	उन उन स्थानोंमें	यशः	सुयश
कृष्णमाहात्म्य	श्रीकृष्णकी महिमाको	प्रगीयमाणं	गाये जाते हुए
सूचकं	सूचित करनेवाले	च	ही
स्वपूर्वेषां	अपने पूर्वज	उपशृण्वानः	समीपसे सुनते हुए (चलते गये) ॥१३॥
महात्मना	महात्माओंका		

आत्मानं च परित्रातमश्वत्थाम्नोऽस्त्रतेजसः ।
स्नेहं च वृष्णिपार्थानां तेषां भक्तिं च केशवे ॥१४॥

आत्मानं च परित्रातं अश्वत्थाम्नः अस्त्र तेजसः स्नेहं च वृष्णि पार्थानां तेषां भक्तिं च केशवे ॥ १४ ॥

आत्मानं	अपनेको	पार्थानां	पाण्डवोंका
च	भी	स्नेहं	(परस्पर) प्रेम
अश्वत्थाम्नः	अश्वत्थामाके	च	एवं
अस्त्र	ब्रह्मास्त्रके	तेषां	उन (यादव-पाण्डवों) की
तेजसः	तेज (ज्वाला) से	केशवे	श्रीकृष्णमें
परित्रातं	बचाया हुआ,	भक्तिं	भक्ति (का वर्णन सुनकर) ॥१४॥
च	तथा		
वृष्णि	यदुवंशियों		

तेभ्यः परमसंतुष्टः प्रीत्युज्जृम्भितलोचनः ।
महाधनानि वासांसि ददौ हारान् महामनाः ॥१५॥

तेभ्यः परम संन्तुष्टः प्रीति उज्जृम्भित लोचनः महाधनानि वासांसि ददौ हारान् महामनाः ॥ १५ ॥

तेभ्यः	उन (वर्णन करने वालों) पर	महामनाः	उदार चित्तसे
परमसंन्तुष्टः	अत्यन्त सन्तुष्ट होकर	महाधनानि	बहुमूल्य
प्रीति	प्रीतिसे	वासांसि	वस्त्र (एवं)
उज्जृम्भित	खिले हुए	हारान्	हार
लोचनः	नेत्रवाले (राजाने)	ददौ	दिये ॥१५॥

सारथ्यपारषदसेवनसख्यदौत्य-
वीरासनानुगमनस्तवनप्रणामान् ।
स्निग्धेषु पाण्डुषु जगत्प्रणतिं च विष्णो-
र्भक्तिं करोति नृपतिश्चरणारविन्दे ॥१६॥

सारथ्य पारषद सेवन सख्य दौत्य वीरासन अनुगमन स्तवन प्रणामान् स्निग्धेषु पाण्डुषु जगत् प्रणतिं च विष्णोः भक्तिं करोति नृपतिः चरणारविन्दे ॥ १६ ॥

सारथ्य	(परीक्षित सुनते थे कि भगवान श्रीकृष्ण पाण्डवोंके) सारथी बने	प्रणामान्	(युधिष्ठिरको) प्रणाम करते
		पाण्डुषु	पाण्डवोंपर
		स्निग्धेषु	स्नेहके कारण
पार्षद	सभासद बनकर	जगत्	पूरे संसारसे
सेवन	(उनकी) सेवाकी	प्रणतिं	प्रणाम
सख्य	(उनके) सखा थे	च	भी (करवा दिया)
दौत्य	दूत बने (उनके)	नृपतिः	राजा परीक्षित् (यह सुनकर)
वीरासन	(युद्ध कालमें) वीरासनसे बैठकर (पहरा देते)	विष्णोः	श्रीकृष्णके
		चरणारविन्दो	चरणकमलोंमें
अनुगमन	पीछे पीछे चलते	भक्तिं	भक्ति
स्तवन	प्रशंसा करते	करोति	करते थे ॥१६॥

तस्यैवं वर्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिमन्वहम् ।
नातिदूरे किलाश्चर्यं यदासीत् तन्निबोध मे ॥१७॥

तस्य एवं वर्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिं अन्वहं न अतिदूरे किल आश्चर्यं यत् आसीत् तत् निबोध मे ॥ १७ ॥

तस्य	उन (राजा परीक्षित) के	एवं	इस प्रकार
		पूर्वेषां	अपने पूर्वजोंके
अन्वहं	प्रतिदिन	वृत्तिं	व्यवहारका

वर्तमानस्य	पालन करते हुए	आश्चर्यं	आश्चर्य
अतिदूरे	बहुत दूर	आसीत्	हुआ
न	नहीं (पास ही)	तत्	वह
किल	अहो	मे	मुझसे
यत्	जो	निबोध	सुनें ॥१७॥

धर्मः पदैकेन चरन् विच्छायामुपलभ्य गाम् ।
पृच्छति स्माश्रुवदनां विवत्सामिव मातरम् ॥१८॥

धर्मः पद एकेन चरन् विच्छायां उपलभ्य गां पृच्छति स्म अश्रुवदनां विवत्सां इव मातरम् ॥ १८ ॥

धर्मः	धर्म	अश्रुवदनां	अश्रुमुखी
एकेन	एक ही	विवत्सां	बछड़े हीनकी
पदेन	पैरसे	इव	भांति
चरन्	चलता हुआ	मातरं	मातासे
विच्छायां	उदास	पृच्छति	पूछता
गां	गौ (पृथ्वी) को	स्म	है ॥१८॥
उपलभ्य	पाकर		

धर्म उवाच–

कच्चिद्भद्रेऽनामयमात्मनस्ते
विच्छायासि म्लायतेषन्मुखेन ।
आलक्षये भवतीमन्तरार्धिं
दूरे बन्धुं शोचसि कञ्चनाम्ब ॥१९॥

कच्चित् भद्रे अनामयं आत्मनः ते विच्छायासि म्लायता इषत् मुखेन आलक्षये भवतीं अन्तर आर्धि दूरे बन्धुं शोचसि कंचन अम्ब ॥ १९ ॥

भद्रे	कल्याणी !	अनामयं	रोगरहित (स्वस्थ) तो है ?
कच्चित्	क्या		
ते	आपका	इषत्	थोड़े
आत्मनः	शरीर	म्लायता	मलीन हुए

मुखेन	मुखसे	अम्ब	मां !
विच्छायासि	श्रीहीन हो,	कंचन	किसी
भवतीं	आपको	दूरे	दूर गये
अन्तर	चित्तमें	बन्धुं	बन्धुकी
आधि	चिन्तावाली	शोचसि	चिन्ता कर रही हो ? ॥१९॥
आलक्षये	लक्षित करता हूँ,		

पादैर्न्यूनं शोचसि मैकपाद-
मात्मानं वा वृषलैर्भोक्ष्यमाणम् ।
आहो सुरादीन् हृतयज्ञभागान्
प्रजा उत स्विन्मघवत्यवर्षति ॥२०॥

पादैः न्यूनं शोचसि मां एकपादं आत्मानं वा वृषलैः भोक्ष्यमाणं आहो सुरादीन् हृत यज्ञ भागान् प्रजाः उत स्वित् मघवति अवर्षति ॥ २० ॥

पादैः	पैरोंकी	हृत	हरण हो चुका है (उन)
न्यूनं	कमीसे	सुरआदीन	देवता आदि (पितर, लोकपालादि)
एकपादं	एक ही पैरवाले	उत	या
मां	मेरे लिए	मघवति	इन्द्रके
वा	अथवा	अवर्षति	वर्षा न करनेसे
वृषलैः	शूद्रों द्वारा	प्रजाः	प्रजाके लिए
भोक्ष्यमाणं	भोगी जाती हुई	शोचसि	चिन्ता कर रही हैं ॥२०॥
आत्मानं	अपने लिए		
आहो	अथवा		
यज्ञभागान्	यज्ञका भाग (जिनका)		

अरक्ष्यमाणाः स्त्रिय उर्वि बालान्
शोचस्यथो पुरुषादैरिवार्तान् ।
वाचं देवीं ब्रह्मकुले कुकर्म-
ण्यब्रह्मण्ये राजकुले कुलाग्र्यान् ॥२१॥

अरक्ष्यमाणाः स्त्रिय उर्वि बालान् शोचसि अथ पुरुषादैः इव आर्तन् वाचं देवीं ब्रह्मकुले कुकर्मणि अब्रह्मण्ये राजकुले कुलग्र्यान् ॥ २१ ॥

पुरुषादैः	राक्षसों	कुकर्मणि	कुकर्म करनेवाले
इव	जैसे (लोगों) से	ब्रह्मकुले	ब्राह्मणोंके कुलमें (चली गयी) हैं या
आर्तान्	व्याकुल	कुलाग्र्यान्	ब्राह्मण
अरक्ष्यमाणाः	अरक्षित	अब्रह्मण्ये	ब्राह्मणद्रोही
स्त्रिय	स्त्रियों (एवं)	राजकुले	राजकुलोंके (सेवक) होगये हैं
बालान्	बालकोंके लिए	शोचसि	(इसलिए) चिन्ता कर रही हो ?॥२१॥
अथ	अथवा		
उर्वि	पृथ्वीदेवी !		
वाचं	वाणी (विद्या)		
देवीं	देवी		

किं क्षत्रबन्धून् कलिनोपसृष्टान्
राष्ट्राणि वा तैरवरोपितानि ।
इतस्ततो वाशनपानवासः-
स्नानव्यवायोन्मुखजीवलोकम् ॥२२॥

किं क्षत्रबन्धून् कलिना उपसृष्टान् राष्ट्राणि वा तैः अवरोपितानि इतः ततः वा अशन पान वासः स्नान व्यवाय उन्मुख जीवलोकम् ॥ २२ ॥

कलिना	कलियुग द्वारा	इतः ततः	जहाँ तहाँ
उपसृष्टान्	उत्पन्न किए (कलियुगी)	अशन	भोजन
		पान	पान
क्षत्रबन्धून्	क्षत्रियाधमोंकी	वासः	निवास
वा	अथवा	व्यवाय	स्त्री सहवासमें
तैः	उनके द्वारा	उन्मुख	लगे (मर्यादाहीन)
अवरोपितानि	उजाड़ कर दिए गये	जीवलोकं	जीवोंकी
राष्ट्राणि	राज्योंकी	किं	क्या (तुम चिन्ता कर रही) ॥२२॥
वा	अथवा		

यद्वाम्ब ते भूरिभरावतार-
कृतावतारस्य हरेर्धरित्रि ।

अन्तर्हितस्य स्मरती विसृष्टा
कर्माणि निर्वाणविलम्बितानि ॥२३॥

यत् वा अम्ब ते भूरि भरावतार कृत अवतारस्य हरेः धरित्रि अन्तर्हितस्य स्मरती विसृष्टा कर्मणि निर्वाण विलम्बितानि ॥ २३ ॥

अम्ब	मां	हरेः	श्रीहरिके
धरित्रि	पृथिवी	अन्तर्हितस्य	अन्तर्धान होजानेपर
वा	अथवा	यत्	जो
ते	तुम्हारे	विसृष्टा	छोड़ दिये गये
भूरि	बहुत	निर्वाण	मोक्षके भी
भरावतार	भारको उतारनेके लिए	विलम्बितानि	आश्रयभूत
		कर्माणि	(उनके) कर्मोंको
अवतारस्य	अवतार	स्मरती	स्मरण कर रही हो ॥२३॥
कृत	धारण किये		

इदं ममाचक्ष्व तवाधिमूलं
वसुन्धरे येन विकर्शितासि ।
कालेन वा ते बलिनां बलीयसा
सुरार्चितं किं हृतमम्ब सौभगम् ॥२४॥

इदं मम आचक्ष्व तव आधि मूलं वसुन्धरे येन विकर्शिता असि कालेन वा ते बलिना बलीतसा सुर अर्चितं ते हृतं अम्ब सौभगम् ॥ २४ ॥

वसुन्धरे	पृथ्वीदेवी !	विकर्शिता	दुबली हो रही
इदं	यह	असि	हो
तव	तुम्हारी	वा	अथवा
आधि	चिन्ताका	अम्ब	माता !
मूलं	कारण	बलिना	बलवानोंमें भी
मम	मुझसे	बलीयसा	परम बलवान
आचक्ष्व	बतलाओ	कालेन	कालके द्वारा
येन	जिससे	ते	तुम्हारा

सुर	देवताओंसे	हृतं	हरण कर लिया गया ? ॥२४॥
अर्चितं	पूजित (सत्कृत)		
सौभगं	सौभाग्य		

धर्मयुवाच-

भवान् हि वेद तत्सर्वं यन्मां धर्मानुपृच्छसि ।
चतुर्भिर्वर्तसे येन पादैर्लोकसुखावहैः ॥२५॥

भवान् हि वेद तत् सर्वं यत् मां धर्मं अनुपृच्छसि चतुर्भिः वर्तसे येन पादैः लोकसुख आवहैः ॥ २५ ॥

भवान्	आप	येन	जिनके द्वारा
तत्	वह	लोक	लोगोंको
सर्वं	सब	सुख	सुख
वेद	जानते हैं	आवहैः	देनेवाले
यत्	जो	चतुर्भिः	चारों ही
मां	मुझसे	पादैः	चरणोंसे
अनुपृच्छसि	पूछ रहे हैं	वर्तसे	व्यवहार करते थे ॥२५॥
हि	क्योंकि		
धर्म	धर्म !		

सत्यं शौचं दया क्षान्तिस्त्यागः सन्तोष आर्जवम् ।
शमो दमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम् ॥२६॥

सत्यं शौचं दया क्षान्तिः त्यागः सन्तोष आर्जवं शमः दमः तपः साम्यं तितीक्षा उपरतिः श्रुतम् ॥ २६ ॥

सत्यं	सत्य	आर्जवं	सरलता
शौचं	पवित्रता	शमः	शम (मनकी शान्ति)
दया	दया	दमः	दम (इन्द्रियोंको वशमें रखना)
क्षान्तिः	क्षमा	तपः	तपस्या
त्यागः	त्याग	साम्यं	समता
सन्तोष	संतोष		

तितीक्षा	तितीक्षा (आये दुःखोंको चुपचाप सह लेना)	उपरतिः	भोगोंसे उपरामता
		श्रुतं	वेदाध्ययन ॥२६॥

ज्ञानं विरक्तिरैश्वर्यं शौर्यं तेजो बलं स्मृतिः ।
स्वातन्त्र्यं कौशलं कान्तिर्धैर्यं मार्दवमेव च ॥२७॥

ज्ञानं विरक्तिः ऐश्वर्यं शौर्यं तेजः बलं स्मृतिः स्वातन्त्र्यं कौशलं कान्तिः धैर्यं मार्दवं एव च ॥ २७ ॥

ज्ञानं	ज्ञान	स्वातन्त्र्यं	स्वतन्त्रता
विरक्तिः	वैराग्य	कौशलं	कुशलता
ऐश्वर्यं	ऐश्वर्य	कान्तिः	कान्ति
शौर्यं	शौर्य	धैर्यं	धैर्य
तेजः	तेज	च	और
बलं	बल	मार्दवं	मृदुलता
स्मृतिः	स्मरण शक्ति	एव	भी ॥२७॥

प्रागल्भ्यं प्रश्रयः शीलं सह ओजो बलं भगः ।
गाम्भीर्यं स्थैर्यमास्तिक्यं कीर्तिर्मानोऽनहंकृतिः ॥२८॥

प्रागल्भ्यं प्रश्रयः शीलं सह ओजः बलं भगः गाभीर्यं स्थैर्यं आस्तिक्यं कीर्तिः मानः अनहं कृतिः ॥ २८ ॥

प्रागल्भ्यं	प्रगल्भता	गाम्भीर्यं	गम्भीरता
प्रश्रयः	नम्रता	स्थैर्यं	स्थिरता
शीलं	शील	आस्तिक्यं	आस्तिकता (वेदोंपर विश्वास)
सह	सहन शक्ति		
ओजः	ओजस्विता	कीर्तिः	यश
बलं	बल	मानः	सम्मान
भगः	भग (ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्रीकी पूर्णता)	अनहंकृतिः	अहंकार हीनता ॥२८॥

एते चान्ये च भगवन्नित्या यत्र महागुणाः ।
प्रार्थ्या महत्त्वमिच्छद्भिर्न वियन्ति स्म कर्हिचित् ॥ २९॥

एते च अन्ये च भगवत् नित्याः यत्र महागुणाः प्रार्थ्या महत्त्वं इच्छद्भिः न वियन्ति स्म कर्हिचित् ॥ २९ ॥

भगवन्	भगवान ! (धर्म !)	महागुणाः	महान् गुण
एते	ये	यत्र	जिनमें
च	और	नित्याः	नित्य (रहते) थे
अन्ये	दूसरे	कर्हिचित्	कभी भी
च	भी	न	नहीं
महत्त्वं	महानता	वियन्ति	वियुक्त होते
इच्छद्भिः	चाहनेवालोंके लिए	स्म	थे ॥२९॥
प्रार्थ्याः	अभिलषित		

तेनाहं गुणापात्रेण श्रीनिवासेन साम्प्रतम् ।
शोचामि रहितं लोकं पाप्मना कलिनेक्षितम् ॥३०॥

तेन अहं गुण पात्रेण श्रीनिवासेन साम्प्रतं शोचामि रहितं लोकं पाप्मना कलिना ईक्षितम् ॥ ३० ॥

अहं	मैं	रहितं	रहित
तेन	उन	पाप्मना	पापी
गुण	गुणोंके	कलिना	कलियुग द्वारा
पात्रेण	आश्रय	ईक्षितं	देखे गये (प्रभावित)
श्रीनिवासेन	श्रीनिवास (श्रीकृष्ण) द्वारा	लोकं	लोगोंके लिए
साम्प्रतं	इस समय	शोचामि	चिन्ता कर रही हूँ ॥३०॥

आत्मानं चानुशोचामि भवन्तं चामरोत्तमम् ।
देवान् पितॄनृषीन् साधून् वर्णांस्तथाऽऽश्रमान् ॥३१॥

आत्मानं च अनुशोचामि भवन्तं च अमरोत्तमं देवान् पितॄन् ऋषीन् साधून् सर्वान् वर्णान् तथा आश्रमान् ॥ ३१ ॥

आत्मानं	अपने लिए	भवन्तं	आपके लिए
च	भी	च	भी
अमरोत्तमं	देव श्रेष्ठ	देवान्	देवताओं

पितॄन्	पितरों	तथा	तथा
ऋषीन्	ऋषियों	आश्रमान्	आश्रमोंके लिए
साधून्	सत्पुरुषों	अनुशोचामि	चिन्ता कर रही हूँ ॥३१॥
सर्वान्	सब		
वर्णान्	वर्णों		

ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपाङ्गमोक्ष-
कामास्तपः समचरन् भगवत्प्रपन्नाः ।
सा श्रीः स्ववासमरविन्दवनं विहाय
यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता ॥३२॥

ब्रह्मा आदयः बहुतिथं यत् अपाङ्गमोक्ष कामाः तपः समचरन् भगवत् प्रपन्नाः सा श्रीः स्ववासं अरविन्दवनं विहाय यत् पाद सौभगं अलं भजते अनुरक्ता ॥ ३२ ॥

ब्रह्मा	ब्रह्मा	सा	वही
आदयः	आदि (इन्द्र, वरुण प्रभृति)	श्रीः	लक्ष्मी
		स्ववासं	अपने निवास
यत्	जिनके	अरविन्दवनं	कमलवनको
अपाङ्गमोक्ष	कृपाकटाक्ष	विहाय	छोड़कर
कामाः	पानेकी इच्छासे	यत्	जिनके
भगवत्	भगवानकी	पादसौभगं	चरणोंकी सुभगता (छाया) को
प्रपन्नाः	शरण लेकर		
बहुतिथं	बहुत समयतक	अलं	दृढ़तासे
तपः	तपस्या	अनुरक्ता	अनुरक्त होकर
समचरन्	करते रहे	भजते	सेवन करती हैं ॥३२॥

तस्याहमब्जकुलिशाङ्कुशकेतुकेतैः
श्रीमत्पदैर्भगवतः समलंकृताङ्घ्री ।
त्रीनत्यरोच उपलभ्य ततोविभूतिं
लोकान् स मां व्यसृजदुत्स्मयतीं तदन्ते ॥३३॥

तस्य अहं अब्जकुलिश अंकुश केतु केतैः श्रीमत् पदैः भगवतः समलंकृता अङ्घ्री त्रीन् अत्यरोच उपलभ्य ततः विभूतीं लोकान् स मां व्यसृजत् उत्स्मयन्तीं तत् अन्ते ॥ ३३ ॥

अहं	मैं	**लोकान्**	लोकोंमें
तस्य	उनके	**अत्यरोच**	अत्यन्त शोभित
अब्ज	कमल		हुई थी
कुलिश	वज्र	**ततः**	उनसे
अंकुश	अंकुश	**विभूतीं**	(यह) ऐश्वर्य
केतु	पताका	**उपलभ्य**	पाकर
केतैः	चिह्नोंवाले	**उत्स्मयन्तीं**	अभिमान करने
भगवतः	भगवानके		लगी थी
श्रीमत्	शोभाशाली	**स**	उन्होंने
पदैः	चरणचिह्नोंसे	**ततः**	इसलिए
समलंकृता	भली प्रकार आभूषित	**मां**	मुझे
अङ्घ्री	शरीरवाली (होकर)	**अन्ते**	अन्तमें
त्रीन्	तीनों	**व्यसृजत्**	छोड़ दिया ॥३३॥

यो वै ममातिभरमासुरवंशराज्ञा-
मक्षौहिणीशतमपानुददात्मतन्त्रः ।
त्वां दुःस्थमूनपदमात्मनि पौरुषेण
सम्पादयन् यदुषु रम्यमबिभ्रदङ्गम् ॥३४॥

यः वै मम अति भरं आसुरवंश राज्ञां अक्षौहिणी शतं अपानुदत् आत्मतन्त्रः त्वां दुस्थं ऊनपदं आत्मनि पौरुषेण सम्पादयन् यदुषु रम्यं अबिभ्रत् अंगम् ॥ ३४ ॥

वै	अहो		सेनाको
मम	मेरे	**यः**	जिन
अतिभरं	अत्यन्त भार बने	**आत्मतन्त्र**	परम स्वतन्त्रने
आसुरवंश	असुरवंशके	**अपानुदत्**	दूर कर दिया
राज्ञां	राजाओंकी	**दुःस्थं**	कुढ़ते हुए
अक्षौहिणी शतं	सौ अक्षौहिणी	**ऊनपदं**	कम पैरवाले

त्वां	तुमको	यदुषु	यदुवंशमें
पौरुषेण	पुरुषार्थसे	रम्यं	रमणीय
आत्मनि	अपने ही भीतर	अङ्गं	शरीर
सम्पादयन्	परिपूर्ण (पदवाला) बनाते	अबिभ्रत्	धारण किया ॥३४॥

का वा सहेत विरहं पुरुषोत्तमस्य
प्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः ।
स्थैर्यं समानमहरन्मधुमानिनीनां
रोमोत्सवो मम यदङ्घ्रिविटङ्कितायाः ॥३५॥

का वा सहेत विरहं पुरुषोत्तमस्य प्रेम अवलोक रुचिर स्मित वल्गु जल्पैः स्थैर्यं स मानं अहरन् मधुमानिनीनां रोमोत्सवः मम यत् अङ्घ्रि विटङ्किता याः ॥ ३५ ॥

प्रेम	प्रेमपूर्ण	यत्	जिनके
अवलोक	निरीक्षण	अङ्घ्रि	चरणों
रुचिर	मनोहर	विटङ्किताया:	चिह्नि
स्मित	मुसुकान	मम	मुझे
वल्गु	मधुर	रोमोत्सवः	रोमाञ्च होता रहता था
जल्पैः	वचनोंसे		
स	उन्होंने	पुरुषत्तमस्य	(उन) पुरुषोत्तमका
मधुमानीनां	मधुमयी मानिनियों (सत्यभामादि) की	विरहं	वियोग
		का	कौन
मान	मान (एवं)	वा	ऐसी है जो
स्थैर्यं	स्थिरता	सहेत	सह सकती है ॥३५॥
अहरन्	छीन लिया था		

*सूत उवाच**–

तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा ।
परीक्षिन्नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ॥३६॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तयोः एवं कथयतोः पृथिवी धर्मयोः तदा परीक्षित् नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ॥ ३६ ॥

तयोः	उन	**परीक्षित्**	परीक्षित
पृथिवी	पृथ्वी (और)	**नाम**	नामके (प्रसिद्ध)
धर्मयोः	धर्मके	**राजर्षिः**	राजर्षिः
एवं	इस प्रकार	**प्राची**	पूर्वकी*
कथयतोः	बात करते	**सरस्वतीं**	सरस्वती (के समीप)
तदा	समय ही	**प्राप्तः**	पहुँचे ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः

---

* सरस्वती नामकी पाँच नदियाँ हैं। उनमें १. उदीची (उत्तरी) सरस्वती बदरीनाथसे आगे है। २. प्रतीची (पश्चिमी) सरस्वती सिद्धपुर गुजरातके पास है। ३. (प्राची) सरस्वती (पूर्वी) कुरुक्षेत्रके पास है। ४. गुप्ता सरस्वती (प्रयागमें भूमिके नीचे है)। ५. एक सरस्वती ब्रजमें है।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

सूत उवाच-

तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत् ।
दण्डहस्त च वृषलं ददृशे नृपलाञ्छनम् ॥१॥

तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानं अनाथवत् दण्ड हस्तं च वृषलं ददृशे नृप लांछनम् ॥ १ ॥

तत्र	वहाँ	दण्डहस्तं	हाथमें डण्डा लिए
राजा	राजा (परीक्षित) ने	नृप	राजाके
अनाथवत्	अनाथकी भांति	लांछनं	चिह्न (मुकुटादि) वाले
हन्यमानं	पीटे जाते हुए		
गोमिथुन	गाय बैलके जोड़ेको	वृषलं	शूद्रको
च	और	ददृशे	देखा ॥१॥

वृषं मृणालधवलं मेहन्तमिव बिभ्यतम् ।
वेपमानं पदैकेन सीदन्तं शूद्रताडितम् ॥२॥

वृषं मृडाल धवलं मेहन्तं इव विभ्यन्तं वेपमानं पदा एकेन सीदन्तं शूद्र ताडितम् ॥ २ ॥

शूद्र	शूद (के द्वारा)	वेपमानं	काँपता हुआ
ताडितं	पीटा जाता	विभ्यन्तं	डरे हुएके
मृडाल	कमलतन्तुके समान	इव	समान
धवलं	श्वेत	मेहन्तं	मूत्र त्याग करता
वृषं	बैल	सीदन्तं	कष्ट पाते
एकेन	एक		(देखा) ॥२॥
पदा	पैरसे (खड़ा)		

गां च धर्मदुघां दीनां भृशं शूद्रपदाहताम् ।
विवत्सां साश्रुवदनां क्षामां यवसमिच्छतीम् ॥३॥

गां च धर्म दुघां दीना भृशं शूद्र पद आहतां विवत्सां स अश्रुवदनां क्षामां यवसं इच्छतीम् ॥ ३ ॥

धर्म	धर्मके (उपयोगका)	गां	गायको
दुघां	(दूध घी आदि) देनेवाली	च	भी
		विवत्सां	बछड़ेसे रहित
भृशं	बार बार	साश्रुवदनां	अश्रुमुखी
शूद्र	शूद्रके	क्षामां	दुबली
पद	पैरकी	यवसं	चारा
आहतां	(ठोकर) चोट (सहने) से	इच्छतीं	चाहती (भूखी देखा) ॥३॥
दीनां	दीन हुई		

पप्रच्छ रथमारूढः कार्तस्वरपरिच्छदम् ।
मेघगम्भीरया वाचा समारोपितकार्मुकः ॥४॥

पप्रच्छ रथ आरूढः कार्तस्वर परिच्छदं मेघगम्भीरया वाचा समारोपित कार्मुकः ॥ ४ ॥

कार्तस्वर	स्वर्ण	मेघगम्भीरया	मेघ गर्जनके समान गम्भीर
परिच्छदं	मण्डित		
रथ	रथपर	वाचा	वाणीसे
आरूढः	बैठे हुए	पप्रच्छ	पूछा (ललकारा) ॥४॥
कार्मुकः	धनुष		
समारोपित	चढ़ाकर		

*राजोवाच**–

कस्त्वं मच्छरणे लोके बलाद्धंस्यबलान् बली ।
नरदेवोऽसि वेषेण नटवत्कर्मणाद्विजः ॥५॥

कः त्वं मत् शरणे लोके नटवत् बलात् हंसि अबलान् बली नरदेवः असि वेषेण कर्मणा अद्विजः ॥ ५ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

त्वं	तू	हंसि	मारता है ?
कः	कौन है ?	वेषेण	वेषसे
मत्	मेरी	नटवत्	नटके समान
शरणे	शरणमें रहनेवाले	नरदेवः	राजा (और)
लोके	लोगोंमें-से	कर्मणा	कर्मसे
बली	बलवान होकर	अद्विजः	शूद्र
अबलान्	निर्बलोंको	असि	है ॥५॥
बलात्	जबरदस्ती		

यस्त्वं कृष्णे गते दूरं सह गाण्डीवधन्वना ।
शोच्योऽस्यशोच्यान् रहसि प्रहरन् वधमर्हसि ॥६॥

यः त्वं कृष्णे गते दूरं सह गाण्डीव धन्वना शोच्यः अशोच्यान् रहसि प्रहरन् वधं अर्हसि ॥ ६ ॥

गाण्डीवधन्वना	गाण्डीव धन्वा (हमारे दादा) अर्जुन	त्वं	तू
		रहसि	एकान्तमें
सह	के साथ	अशोच्यान्	निरपराधोंको
कृष्णे	भगवान श्रीकृष्णके	प्रहरन्	मार रहा है (अतः)
दूरं	दूर (दूसरे लोकमें)	शोच्यः	अपराधी है
गते	चले जानेपर	वधं	मार देने
यः	क्योंकि	अर्हसि	योग्य है ॥६॥

त्वं वा मृणालधवलः पादैर्न्यूनः पदा चरन् ।
वृषरूपेण किं कश्चिद् देवो नः परिखेदयन् ॥७॥

त्वं वा मृडाल धवलः पादैः न्यूनं पदा चरन् वृष रूपेण किं कश्चित् देवः नः परिखेदयन् ॥ ७ ॥

मृडाल धवलः	कमलनालके समान श्वेत	न्यूनं	कम होनेपर भी
		पदा	(एक ही) पैरसे
त्वं	आप	चरन्	चलते हैं
पादैः	(तीन) पैरोंके	वा	अथवा

किं	क्या	नः	हमको (आपके इस रूपसे)
वृषरूपेण	बैलके रूपमें	परिखेदयन्	बहुत खेद (दुःख) हो रहा है ॥७॥
कश्चित्	कोई		
देवः	देवता हैं ?		

न जातु पौरवेन्द्राणां दोर्दण्डपरिरम्भिते ।
भूतलेऽनुपतन्त्यस्मिन् विना ते प्राणिनां शुचः ॥८॥

न जातु पौरवेन्द्राणां दोर्दण्ड परिरम्भिते भूतले अनुपतन्ति अस्मिन् विना ते प्राणिनां शुचः ॥ ८ ॥

पौरवेन्द्राणां	पुरुवंशी राजाओंके	विना	छोड़कर
दोर्दण्ड	भुजदण्डोंसे	जातु	किसी भी
परिरम्भिते	रक्षित	प्राणिनां	प्राणीके
अस्मिन्	इस	शुचः	अश्रु
भूतले	पृथ्वीपर	न	नहीं
ते	आपको	अनुपतन्ति	गिरते ॥८॥

मा सौरभेयानुशुचो व्येतु ते वृषलाद् भयम् ।
मा रोदीरम्ब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि ॥९॥

मा सौरभेय अनुशुचः व्येतु ते वृषलात भयं मा रोदीः अम्ब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि ॥ ९ ॥

खलानां	दुष्टोंको	वृषलात्	(इस) शूद्रसे
शास्तरि	शासन करने (दण्ड देने) वाले	भयं	भय
		व्येतु	दूर हो ।
मयि	मेरे रहते	अम्ब	गो माता !
सौरभेय	वृषभदेव !	मा	मत
मा	मत	रोदीः	रोइये
अनुशुचः	आँसू बहाइये	ते	आपका
ते	आपका	भद्रं	कल्याण हो ॥९॥

यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यन्ते साध्व्यसाधुभिः ।
तस्य मत्तस्य नश्यन्ति कीर्तिरायुर्भगो गतिः ॥१०॥

यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वाः त्रस्यन्ते साध्वि असाधुभिः तस्य मत्तस्य नश्यन्ति कीर्तिः आयुः भगः गतिः ॥ १० ॥

साध्वि	साध्वी !	मत्तस्य	प्रमादी (राजा) का
यस्य	जिसके	कीर्तिः	सुयश
राष्ट्रे	राज्यमें	आयुः	आयु
सर्वाः	सब	भगः	ऐश्वर्य
प्रजाः	प्रजा	गतिः	सद्गति
असाधुभिः	दुष्टों द्वारा	नश्यन्ति	नष्ट हो जाती हैं ॥१०॥
त्रस्यन्ते	भयभीतकी जाती है		
तस्य	उस		

एष राज्ञां परो धर्मो ह्यार्तानामार्तिनिग्रहः ।
अत एनं वधिष्यामि भूतद्रुहमसत्तमम् ॥११॥

एष राज्ञां परः धर्मः हि आर्तानां आर्ति निग्रहः अतः एनं वधिष्यामि भूत द्रुहं असत्तमम् ॥ ११ ॥

हि	क्योंकि	निग्रहः	दूर करना
राज्ञां	राजाओंका	अतः	अतएव
एष	यह	एनं	इस
परः	परम	भूतद्रुहं	प्राणियोंसे द्वेष करनेवाले
धर्मः	धर्महै		
आर्तानां	दुःखियोंका	असत्तमं	अत्यन्त दुष्टको
आर्ति	दुःख	वधिष्यामि	मार दूंगा ॥११॥

कोऽवृश्चत् तव पादान्त्रीन् सौरभेय चतुष्पद ।
मा भूवंस्त्वादृशा राष्ट्रे राज्ञां कृष्णानुदर्तिनाम् ॥१२॥

कः अवृश्चत् तव पादान् त्रीन् सौरभेय चतुष्पद मा भूवं त्वादृशाः राष्ट्रे राज्ञां कृष्ण अनुवर्तिनाम् ॥ १२ ॥

सौरभेय	सुरभिनन्दन !	तव	आपके
चतुष्पद	(आप तो) चतुष्पद हैं	त्रीन्	तीन

पादान्	पैरोंको	राष्ट्रे	राज्यमें
कः	किसने	त्वादृशाः	आपके समान (पीड़ित कोई)
अवृश्चत्	काटा	मा	मत
कृष्ण	श्रीकृष्णके	भूवन्	होवें ॥१२॥
अनुवर्तिनां	अनुयायी		
राज्ञां	राजाओंके		

आख्याहि वृष भद्रं वः साधूनामकृतागसाम् ।
आत्मवैरूप्यकर्तारं पार्थानां कीर्तिदूषणम् ॥१३॥

आख्याहि वृष भद्रं वः साधूनां अकृत आगसां आत्म वैरूप्य कर्तारं पार्थानां कीर्ति दूषणम् ॥ १३ ॥

वृष	वृषभदेव	वैरूप्य	कुरूप
वः	आप दोनोंका	कर्तारं	करनेवालेको
भद्रं	कल्याण हो	पार्थानां	(जिसने) पाण्डवोंकी
साधूनां	सत्स्वभाववाले	कीर्ति	कीर्तिको
आगसां	अपराध	दूषणं	कलंकित किया है (उसे)
अकृत	न करनेवाले (निरपराध)	आख्याहि	बतलाइये ॥१३॥
आत्म	अपनेका		

जनेनागस्यघं युञ्जन् सर्वतोऽस्य च मद्भयम् ।
साधूनां भद्रमेव स्यादसाधुदमने कृते ॥१४॥

जने अनागसि अघं युञ्जन् सर्वतः अस्य च मत् भयं साधूनां भद्रं एव स्यात् असाधु दमने कृते ॥ १४ ॥

अनागसि	निरपराध	मत्	मुझसे
जने	लोगोंका	भयं	भय रहेगा
अघं	अपराध	च	ही
युञ्जन्	करनेवालेको	असाधु	दुष्टोंका
सर्वतः	सब कहीं	दमने	दमन
अस्य	उसे	कृते	कर देनेसे

साधूनां	सज्जनोंका	स्यात्	होगा
भद्रं	कल्याण	एव	ही ॥१४॥

अनागस्त्विह भूतेषु य आगस्कृन्निरङ्कुशः ।
आहर्तास्मि भुजं साक्षादमर्त्यस्यापि साङ्गदम् ॥१५॥

अनागःसु इह भूतेषु यः आगः कृत् निरङ्कुशः आहर्ता अस्मि भुजं साक्षात् अमर्तस्य अपि साङ्गदम् ॥ १५ ॥

य	जो	साक्षात्	(वह) प्रत्यक्ष
इह	इस मेरे राज्यमें	अमर्तस्य	देवता हो
अनागःसु	निरपराध	अपि	तो भी
भूतेषु	प्राणियोंका	साङ्गदं	अङ्गद सहित
निरङ्कुशः	उच्छृखल होकर	भुजं	(उसकी) भुजा
आगः	अपराध	आहर्ता	(मैं) काट देनेवाला
कृत्	करनेवाला है	अस्मि	हूँ ॥१५॥

राज्ञो हि परमो धर्मः स्वधर्मस्थानुपालनम् ।
शासतोऽन्यान् यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानिह ॥१६॥

राज्ञः हि परमः धर्मः स्वधर्मं स्थान् अनुपालनं शासतः अन्यान् यथा शास्त्रं अनापत् उत्पथान् इह ॥ १६ ॥

अनापत्	बिना आपत्तिकालके	स्वधर्मस्थान	अपने (वर्णाश्रम विहित) धर्मका पालन करनेवालोंकी
इह	इस लोकमें		
अन्यान्	दूसरे		
उत्पथान	शास्त्रमर्यादा छोड़कर चलनेवालोंको	अनुपालनं	बराबर रक्षा करना
शास्त्रं	शास्त्रकी विधिके	राज्ञः	राजाओंका
यथा	अनुसार	हि	क्योंकि
शासतः	दण्ड देना (और)	परमः	परम
		धर्मः	धर्म है ॥१६॥

धर्म उवाच-

एतद् वः पाण्डवेयानां युक्तमार्ताभयं वचः ।
येषां गुणगणैः कृष्णो दौत्यादौ भगवान् कृतः ॥१७॥

एतद् वः पाण्डवेयानां युक्तं आर्त अभयं वचः येषां गुणगणैः कृष्णः दौत्य आदौ भगवान् कृतः ॥ १७ ॥

येषां	जिनके	पाण्डवेयानां	(उन) पाण्डवोंके वंशमें उत्पन्न
गुणगणैः	सद्गुणोंके कारण	वः	आपकी
भगवान्	(षडैश्वर्य सम्पन्न) भगवान	एतत्	यह
कृष्णः	श्रीकृष्णने	आर्त	दुःखीको
दौत्य	(उनका) दूत बनकर	अभय	निर्भय (करनेवाली)
आदौ	दूसरी भी अनेक (सेवायें)	वचः	वाणी
कृतः	कीं	युक्तं	उपयुक्त ही है ॥१७॥

न वयं क्लेशबीजानि यतः स्युः पुरुषर्षभ ।
पुरुषं तं विजानीमो वाक्यभेदविमोहिताः ॥१८॥

न वयं क्लेश बीजानि यतः स्युः पुरुषर्षभ पुरुषं तं विजानीमः वाक्य भेद विमोहिताः ॥ १८ ॥

पुरुषर्षभ	पुरुष श्रेष्ठ !	न	नहीं
वाक्यभेद	(शास्त्रोंके) वाक्योंमें अनेक रूपताके कारण	विजानीमः	जानते
		यतः	जिससे
विमोहिताः	मोह (भ्रम) में पड़े	क्लेश	दुःखोंका
वयं	हम	बीजानि	कारण
तं	उस	स्युः	(उत्पन्न होता) है ॥१८॥
पुरुषं	पुरुषको		

केचिद् विकल्पवसना आहुरात्मानमात्मनः ।
दैवमन्ये परे कर्म स्वभावमपरे प्रभुम् ॥१९॥

केचित् विकल्प वसनाः आहुः आत्मनं आत्मना दैवं अन्ये परे कर्म स्वभावं अपरे प्रभुम् ॥ १९ ॥

विकल्प	द्वैतको	केचित्	कोई
वसनाः	स्वीकार न करनेवाले	आत्मानं	अपने आपको ही

आत्मना	अपने कष्टका कारण	कर्म	कर्मको
आहुः	कहते हैं	अपरे	दूसरे
अन्ये	दूसरे	स्वभावं	प्रकृतिको (इसमें)
दैवं	भाग्यको	प्रभुं	समर्थ (बतलाते)
परे	अन्य (कोई)		हैं ॥१९॥

अप्रतर्क्यादनिर्देश्यादिति केष्वपि निश्चयः ।
अत्रानुरूपं राजर्षे विमृश स्वमनीषया ॥२०॥

अप्रतर्क्यात् अनिर्देश्यात् इति केषु अपि निश्चयः अत्र अनुरूपं राजर्षे विमृश स्व मनीषया ॥ २० ॥

केषु	किन्हींका	राजर्षे	राजर्षि !
इति	ऐसा	स्व	अपनी
अपि	भी	मनीषया	बुद्धिसे
निश्चयः	निश्चय है कि	अत्र	इस विषयमें
अप्रतर्क्यात्	(दुःखका कारण) तर्कसे नहीं जाना जा सकता	अनुरूपं	जो उचित हो
		विमृश	(उसका) विचार करें ॥२०॥
अनिर्देश्यात्	(उसे) बतलाया भी नहीं जा सकता		

सूत उवाच–

एवं धर्मे प्रवदति स सम्राट् द्विजसत्तम ।
समाहितेन मनसा विखेदः पर्यचष्ट तम् ॥२१॥

एवं धर्मे प्रवदति स सम्राट् द्विजसत्तम समाहितेन मनसा विखेदः पर्यचष्ट तम् ॥ १ ॥

द्विजसत्तम	ब्राह्मण श्रेष्ठ शौनकजी !	धर्मे	धर्मके
		प्रवदति	प्रवचन देनेपर
एवं	इस प्रकार	स	वे

सम्राट्	राजा परीक्षित्	**मनसा**	चित्तसे
विखेदः	खेद रहित होगये	**तं**	उस (धर्म) से
समाहितेन	एकाग्र	**पर्यचष्ट**	बोले ॥२१॥

राजोवाच–

धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मोऽसि वृषरूपधृक् ।
यत् अधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ॥२२॥

धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मः असि वृषरूप धृक् यत् अधर्म कृतः स्थानं सूचकस्य अपि तत् भवेत् ॥ २२ ॥

धर्मज्ञ	धर्मको जाननेवाले (आप)	**स्थानं**	स्थान (नरकादि मिलते हैं)
धर्मं	धर्मका	**सूचकस्य**	चुगली करनेवालेको
ब्रवीषि	उपदेश कर रहे हैं,	**अपि**	भी
वृषरूप	बैलका रूप	**तत्**	वही (नरकादि)
धृक्	धारण किये (आप)	**भवेत्**	मिलते हैं । (इसीसे आपने अपनेको कष्ट देनेवालेका नाम नहीं बतलाया) ॥२३॥
धर्मः	धर्म		
असि	हैं ।		
अधर्मकृतः	अधर्म करनेवालेको		
यत्	जो		

अथवा देवमायाया नूनं गतिरगोचरा ।
चेतसो वचसश्चापि भूतानामिति निश्चयः ॥२३॥

अथवा देव मायायाः नूनं गतिः अगोचरा चेतसः वचसः च अपि भूतानां इति निश्चयः ॥ २३ ॥

अथवा	अथवा	**मायायाः**	मायाकी
इति	यही	**गति**	गति
निश्चयः	सिद्धान्त	**भूतानां**	प्राणियोंके लिए
नूनं	निश्चित है कि	**चेतसः**	मनसे
देव	परमात्माकी	**वचसः**	वाणी

च	से	अगोचरा	जानी नहीं जा
अपि	भी		सकती ॥२३॥

तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः प्रकीर्तिताः ।
अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसङ्गमदैस्तव ॥२४॥

तपः शौचं दया सत्यं इति पादाः प्रकीर्तिताः अधर्म अंशैः त्रयः भग्नाः स्मयः सङ्ग मदैः तव ॥ २४ ॥

तव	आप (धर्म) के	अधर्म	अधर्मके
तपः	तपस्या,	अंशैः	अंश
शौचं	पवित्रता,	स्मय	अभिमान (से तप)
दया	दया,	सङ्ग	आसक्ति (से शौच)
सत्यं	सत्य—	मदैः	मद (से दया)
इति	इस प्रकार	त्रयः	तीन (पद)
पादाः	(चार) पैर	भग्नाः	टूट गये हैं ॥२४॥
प्रकीर्तिताः	(शास्त्रने)बतलाये हैं		

इदानीं धर्म पादस्ते सत्यं निर्वर्तयेद्यतः ।
तं जिघृक्षत्यधर्मोऽयमनृतेनैधितः कलिः ॥२५॥

इदानीं धर्म पादः ते सत्यं निर्वर्तयेत् यतः तं जिघृक्षति अधर्मः अयं अनृतेन एधितः कलिः ॥ २५ ॥

धर्म	धर्मदेव !	तं	उसे
इदानीं	इस समय	अयं	यह
ते	आपका	अनृतेन	झूठसे
सत्यं	सत्यरूप	एधितः	बलवान बनाया गया
पादः	चरण	अधर्मः	अधर्म रूप
यतः	क्योंकि	कलिः	कलियुग
निर्वतयेत्	बचा हुआ है	जिघृक्षति	नष्ट कर देना चाहता

इयं च भूर्भगवता न्यासितोरुभरा सती ।
श्रीमद्भिस्तत्पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका ॥२६॥

इयं च भूः भगवता न्यासिता उरुभरा सती श्रीमद्भिः तत् पदन्यासैः सर्वतः कृत कौतुका ॥ २६ ॥

इयं	ये
च	भी
भूः	पृथ्वीदेवी हैं
उरुभरा	बहुत भार (पीड़िता)
सती	होनेपर
श्रीमद्भिः	श्रीमान्
भगवता	भगवान (श्रीकृष्ण) के द्वारा
न्यासिता	(भारहीन करके) स्थापितकी गयीं (और)
तत्	उन (भगवान) के
पदन्यासैः	चरण रखनेसे
सर्वतः	सब ओर
कौतुका	अलंकृत
कृत	हुईं ॥२६॥

शोचत्यश्रुकला साध्वी दुर्भगेवोज्झिताधुना ।
अब्रह्मण्या नृपव्याजा शूद्रा भोक्ष्यन्ति मामिति ॥२७॥

शोचति अश्रुकला साध्वी दुर्भगा इव उज्झिता अधुनां अब्रह्मण्या नृपव्याजा शूद्रा भोक्ष्यन्ति मां इति ॥ २७ ॥

साध्वी	ये सती
अधुना	इस समय
उज्झिता	(भगवान द्वारा) छोड़ी हुई
दुर्भगा	भाग्यहीनाके
इव	समान
अश्रुकला	आँसू बहाती
इति	इस प्रकार
शोचति	चिन्ता कर रही हैं कि
अब्रह्मण्या	ब्राह्मणद्वेषी
शूद्रा	शूद्र
नृपव्याजा	राजा बननेके बहाने
मां	मेरा
भोक्ष्यन्ति	उपभोग करेंगे ॥२७॥

*सूत उवाच**–

इति धर्मं महीं चैव सान्त्वयित्वा महारथः ।
निशातमाददे खड्गं कलयेऽधर्महेतवे ॥२८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

इति धर्मं महीं च एव सान्त्वयिता महारथः निशातं आददे खड्गं कलये अधर्म हेतवे ॥ २८ ॥

इति	इस प्रकार	अधर्म	अधर्मके
धर्मं	धर्मको,	हेतवे	कारण
महीं	पृथ्वी	कलये	कलियुगके (मारनेके) लिए
च	को		
एव	भी	निशातं	तीक्ष्ण धारवाली
सान्त्वयित्वा	आश्वासन देकर	खड्गं	तलवार
महारथः	महारथी (परीक्षित) ने	आददे	खींचली ॥२८॥

तं जिघांसुमभिप्रेत्य विहाय नृपलाञ्छनम् ।
तत्पादमूलं शिरसा समगाद् भयविह्वलः ॥२९॥

तं जिघांसुं अभिप्रेत्य विहाय नृप लाञ्छनं तत् पादमूलं शिरसा सम अगात् भय विह्वलः ॥ २९ ॥

तं	उन (राजा परीक्षित्) का	भय	भयसे
जिघांसुं	मार देनेका	विह्वलः	व्याकुल होकर (कलियुग)
अभिप्रेत्य	अभिप्राय जानकर	तत्	उनके
नृप	राजाका	पादमूलं	चरणोंपर
लाञ्छनं	चिह्न (मुकुट)	शिरसा	शिरसा:
विहाय	उतारकर	सम अगात्	गिर पड़ा ॥२९॥

पतितं पादयोर्वीक्ष्य कृपया दीनवत्सलः ।
शरण्यो नावधीच्छ्लोक्य आह चेदं हसन्निव ॥३०॥

पतितं पादयोः वीक्ष्य कृपया दीनवत्सलः शरण्यः न अवधीत् श्लोक्य आह च इदं हसन् इव ॥ ३० ॥

पादयोः	पैरोंपर	वीक्ष्य	देखकर
पतितं	गिरे हुएको		

दीनवत्सलः	दीनोंपर स्नेह करनेवाले	अवधीत्	मारा
		कृपया	कृपावश
शरण्यः	शरणदाता	इदं	यह
श्लोक्यः	प्रशंसनीय (परीक्षितने)	हसन्	हँसते हुए
		इव	से
न	(उसे) नहीं	आह	बोले ॥३०॥

राजोवाच-

न ते गुडाकेशयशोधराणां
बद्धाञ्जलेर्वै भयमस्ति किंचित् ।
न वर्तितव्यं भवता कथंचन
क्षेत्रे मदीये त्वमधर्मबन्धुः ॥३१॥

न ते गुडाकेश यशोधराणां बद्धाञ्जलेः वै भयं अस्ति किञ्चित् न वर्तितव्यं भवता कथञ्चन क्षेत्रे मदीये त्वं अधर्मबन्धुः ॥ ३१ ॥

गुडाकेश	अर्जुनके	अस्ति	है (किन्तु)
यशोधराणां	यशको धारण करनेवाले (उनके वंशजों)	त्व	तुम
		अधर्मबन्धुः	अधर्मके मित्र हो (अतः)
बद्धाञ्जलेः	के सम्मुख हाथ जोड़ लेनेपर	भवता	तुमको
		मदीये	मेरे
ते	तुम्हें	क्षेत्रे	राज्यमें
किञ्चित्	थोड़ा	कथञ्चन	कभी भी
वै	भी	न	नहीं
भयं	भय	वर्तितव्यं	(अपना) बर्ताव
न	नहीं		करना चाहिए ॥३१॥

त्वां वर्तमानं नरदेवदेहे-
ष्वनु प्रवृत्तोऽयमधर्मपूगः ।
लोभोऽनृतं चौर्यमनार्यमंहो
ज्येष्ठा च माया कलहश्च दम्भः ॥३२॥

त्वां वर्तमानं नरदेव देहेषु अनु प्रवृत्तः अयं अधर्म पूगः लोभः अनृतं चौर्यं अनार्यं अंहो ज्येष्ठा च माया कलहः च दम्भः ॥ ३२ ॥

नरदेव	राजाओंके	च	तथा
देहेषु	शरीरमें	माया	कपट,
त्वां	तुम्हारे	कलहः	झगड़ा
वर्तमानं	उपस्थित रहनेपर	च	एवं
लोभः	लोभ,	दम्भः	दम्भ
अनृतं	झूठ,	अयं	यह
चौर्यं	चोरी,	अधर्म	अधर्म
अनार्यं	असभ्यता,	पूगः	राशिमें
अंहो	पाप,	अनु प्रवृत्तः	प्रवृत्ति हो जाती है ॥३२॥
ज्येष्ठा	दरिद्रता		

न वर्तितव्यं तदधर्मबन्धो
धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ।
ब्रह्मावर्ते यत्र यजन्ति यज्ञै-
र्यज्ञेश्वरं यज्ञवितानविज्ञाः ॥३३॥

न वर्तितव्यं तत् अधर्मबन्धो धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ब्रह्मावर्ते यत्र यजन्ति यज्ञैः यज्ञेश्वरं यज्ञ वितान विज्ञाः ॥ ३३ ॥

धर्मेण	धर्मपूर्वक	यज्ञैः	यज्ञोंके द्वारा
च	और	यज्ञेश्वरं	भगवान् यज्ञेश्वर (विष्णु) का
सत्येन	सत्यसे		
वर्तितव्ये	व्यवहार करने योग्य	यजन्ति	यजन करते हैं,
ब्रह्मावर्ते	ब्रह्मावर्त (भारत) में	तत्	वहाँ
यत्र	जहाँ	अधर्मबन्धो	अधर्मके मित्र तुमको
यज्ञ वितान	यज्ञविधिके विस्तारको	न	नहीं
		वर्तितव्यं	व्यवहार करना चाहिए
विज्ञाः	जाननेवाले		

यस्मिन् हरिर्भगवानिज्यमान
इज्यामूर्तिर्यजतां शं तनोति ।

कामानमोघान् स्थिरजङ्गमाना-
मन्तर्बहिर्वायुरिवैष आत्मा ॥३४॥

यस्मिन् हरिः भगवान् इज्यमान इज्यार्मूतिः यजतां शं तनोति कामान् अमोघान् स्थिर जङ्गमानां अन्तः बहिः वायुः इव एष आत्मा ॥३४॥

स्थिर	अचर	**हरिः**	श्रीहरि
जङ्गमानां	चर (सबके)	**यस्मिन्**	जिन (यज्ञों) में
अन्तः	भीतर	**इज्यमानः**	यज्ञसे सन्तुष्ट किये जानेपर
बहिः	बाहर		
वायुः	वायुके	**यजतां**	यज्ञ करनेवालोंकी
इव	समान (व्याप्त)	**अमोघान्**	अव्यर्थ
एष	ये	**कामान्**	कामनाएँ (पूर्ण करते हैं और)
आत्मा	आत्मा		
इज्यामूर्तिः	यज्ञमूर्ति	**शं**	कल्याण
भगवान्	भगवान	**तनोति**	करते हैं ॥३४॥

सूत उवाच–

परीक्षितैवमादिष्टः स कलिर्जातवेपथुः ।
तमुद्यतासिमाहेदं दण्डपाणिमिवोद्यतम् ॥३५॥

परीक्षिता एवं आदिष्टः स कलिः जातवेपथुः तं उद्यतः असिं आह इदं दण्डपाणि इव उद्यतम् ॥ ३५ ॥

परीक्षिता	परीक्षितके द्वारा	**तं**	उनको
एवं	इस प्रकार	**उद्यतं**	प्रस्तुत (देखकर)
आदिष्टः	आदेश दिये जानेपर	**स**	वह
असिं	तलवार	**कलिः**	कलियुग
उद्यत	उठाये	**जातदेपथुः**	काँपता हुआ
दण्डपाणि	(काल) दण्ड लिए यमराजके	**इदं**	यह
		आह	बोला ॥३५॥
इव	समान		

कलिरुवाच–

यत्र क्वचन वत्स्यामि सार्वभौम तवाज्ञया ।
लक्षये तत्र तत्रापि त्वामात्तेषुशरासनम् ॥३६॥

यत्र क्वचन वत्स्यामि सार्वभौम तव आज्ञया लक्षये तत्र तत्र अपि त्वां आत्त इषु शरासनम् ॥ ३६ ॥

सार्वभौम	(आपतो) सम्पूर्ण पृथ्वीके सम्राट् हैं (अतः)	**त्वां**	आपको
		शरासनं	धनुषपर
		इषु	वाण
तव	आपकी	**आत्त**	चढ़ाये
आज्ञया	आज्ञासे	**लक्षये**	देखता हूँ ॥३६॥ (सर्वत्र ही तो आपका राज्य है। मैं जहाँ रहूँगा, वहीं आप धनुष चढ़ाये पहुँच जायँगे।)
यत्र	जहाँ		
क्वचन	कहीं		
वत्स्यामि	बसूँगा		
तत्र तत्र	वहाँ वहाँ		
अपि	भी		

तन्मे धर्मभृतां श्रेष्ठ स्थानं निर्देष्टुमर्हसि ।
यत्रैव नियतो वत्स्य आतिष्ठंस्तेऽनुशासनम् ॥३७॥

तत् मे धर्मभृतां श्रेष्ठ स्थानं निर्देष्टुं अर्हसि यत्र एव नियतः वत्स्य आतिष्ठन् ते अनुशासनम् ॥ ३७ ॥

धर्मभृतां	धर्मका पालन करने वालोंमें	**ते**	आपकी
		अनुशासनं	आज्ञाका
श्रेष्ठ	श्रेष्ठ ! (आपको)	**आतिष्ठन्**	पालन करते हुए
तत्	अतः	**यत्र**	जहाँ
मे	मुझे	**एव**	ही
स्थानं	स्थान	**नियतः**	निश्चित रूपसे
निर्देष्टुं	बतलाना	**वत्स्य**	(मैं) निवास करूँ ॥३७॥
अर्हसि	चाहिये,		

सूत उवाच–

अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ ।
द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ॥३८॥

अभ्यर्थितः तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्र अधर्मः चतुर्विधः ॥ ३८ ॥

अभ्यर्थितः	प्रार्थना किए जानेपर	सूना	हिंसामें
तदा	तब	स्थानानि	(निवास) स्थान
तस्मै	उस	ददौ	दिया
कलये	कलियुगको	यत्र	जिनमें (असत्य,मद,
द्यूतं	जुएमें		आसक्ति और
पानं	मदिरापानमें		निर्दयता)
स्त्रियः	(व्यभिचारिणी) स्त्रियोंमें	चतुर्विधः	चार प्रकारके
		अधमः	अधर्म रहते हैं ॥३८॥

पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः ।
ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पञ्चमम् ॥३९॥

पुनः च याचमानाय जातरूपं अदात् प्रभुः ततः अनृतं मदं कामं रजः वैरं च पञ्चमम ॥ ३९ ॥

पुनः	फिर	अनृतं	झूठ,
च	भी	मदं	मद,
याचमानाय	याचना करनेपर	कामं	कामना,
प्रभुः	समर्थ (परीक्षित) ने	रजः	राजसिकता
जातरूपं	स्वर्ण	च	और
अदात्	दिया	पञ्चमं	पाँचवाँ
ततः	उस (स्वर्णमें कलिके निवास) से	वैरं	शत्रुता (का निवास होगया) ॥३९॥

अमूनि पञ्च स्थानानि ह्यधर्मप्रभवः कलिः ।
औत्तरेयेण दत्तानि न्यवसत् तन्निदेशकृत् ॥४०॥

अमूनि पञ्च स्थानानि हि अधर्म प्रभवः कलिः औत्तरेयेण दत्तानि न्यवसत् तत् निदेश कृत ॥ ४० ॥

हि	क्योंकि	प्रभवः	उत्पन्न करनेवाला
औत्तरेयेण	राजा परीक्षितके	कलिः	कलियुग
दत्तानि	दिये हुए	तत्	उनकी
अमूनि	इन	निदेश	आज्ञाका
पञ्च	पाँच	कृत	पालन करता हुआ
स्थानानि	स्थानोंमें	न्यवसत्	निवास करने
अधर्म	अधर्मको		लगा ॥४०॥

अथैतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुषः क्वचित् ।
विशेषतो धर्मशीलो राजा लोकपतिर्गुरुः ॥४१॥

अथ एतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुष क्वचित् विशेषतः धर्मशीलः राजा लोकपतिः गुरुः ॥ ४१ ॥

अथ	अतएव	लोकपतिः	लोगोंका स्वामी,
बुभूषुः	उत्तम गति	राजा	राजा (और)
	चाहनेवाला	गुरुः	आचार्य
पुरुषः	पुरुष	एतानि	इनको
विशेषतः	विशेषत	क्वचित्	कभी भी
धर्मशीलः	धर्मात्मा,	न सेवेत	सेवन न करें ॥४१॥

वृषस्य नष्टांस्त्रीन् पादान् तपः शौचं दयामिति ।
प्रतिसंदध आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ॥४२॥

वृषस्य नष्टान् त्रीन् पादान् तपः शौचं दयां इति प्रतिसन्दध आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ॥ ४२ ॥

वृषस्य	बैलके	तपः	तपस्या,
नष्टान्	नष्ट हुए	शौचं	पवित्रता (और)
त्रीन्	तीन	दयां	दया—
पादान्	पैर	इति	इनको

प्रतिसंदध	फिरसे जोड़ दिया	महीं	पृथ्वीको
च	और	समवर्धयत	भली प्रकार समृद्ध (सुखी)किया ॥४२॥
आश्वास्य	आश्वासन देकर		

स एष एतर्ह्यध्यास्त आसनं पार्थिवोचितम् ।
पितामहेनोपन्यस्तं राज्ञारण्यं विविक्षता ॥४३॥

स एष एतः हि अध्यास्त आसनं पार्थिवोचितं पितामहेन उपन्यस्तं राज्ञा अरण्यं विविक्षता ॥ ४३ ॥

अरण्यं	वनमें	आसनं	सिंहासनपर
विविक्षता	जानेकी इच्छावाले	स	वही
राज्ञा	राजा	एष	ये (राजा परिक्षित्)
पितामहेन	पितामह (युधिष्ठिर) द्वारा	हि	क्योंकि
		एतः	इस समय*
उपन्यस्तं	दिये गये	अध्यास्त	विराजमानहैं ॥४३॥
पार्थिवोचितं	राजोचित		

आस्तेऽधुना स राजर्षिः कौरवेन्द्रश्रियोल्लसन् ।
गजाह्वये महाभागश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः ॥४४॥

आस्ते अधुना स राजर्षिः कौरवेन्द्रश्रिय उल्लसन् गजाह्वये महाभागः चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः ॥ ४४ ॥

स	वे	कौरवेन्द्रश्रियः	कौरवेन्द्रकी लक्ष्मीसे
राजर्षिः	राजर्षि	उल्लसन्	सुशोभित
महाभागः	महाभाग	गजाह्वये	हस्तिनापुरमें
चक्रवर्ती	चक्रवर्ती	अधुना	इस समय*
बृहच्छ्रवाः	महान यशस्वी	आस्ते	हैं ॥४४॥

---

* भागवतके सभी विद्वान टीकाकारोंका मत है कि यहाँ परीक्षितके वर्तमान होनेकी बात—आसन्न भूतकालके लिए इसलिए है; क्योंकि शौनकादिका सत्र परीक्षितके राज्यकालमें प्रारम्भ होगया था ।

इत्थम्भूतानुभावोऽयमभिमन्युसुतो नृपः ।
यस्य पालयतः क्षोणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ॥४५॥

इत्थंभूत अनुभावः अयं अभिमन्युसुतः नृपः यस्य पालयतः क्षोणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ॥ ४५ ॥

इत्थंभूत	इस प्रकारके	**क्षोणीं**	पृथ्वीका
अनुभावः	प्रभाववाले	**पालयतः**	पालन करते समय
अयं	ये	**यूयं**	आप लोगोंने
अभिमन्युसुतः	अभिमन्युके पुत्र	**सत्राय**	(इस सत्रकी)
नृपः	राजा (परीक्षित) हैं	**दीक्षिताः**	दीक्षा ली ॥४५॥
यस्य	जिनके		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः

अथ अष्टादशोऽध्यायः

सूत उवाच-

यो वै द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टो न मातुरुदरे मृतः ।
अनुग्रहाद् भगवतः कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥१॥

यः वै द्रोणि अस्त्र विप्लुष्टः न मातुः उदरे मृतः अनुग्रहात् भगवतः कृष्णस्य अद्भुत कर्मणः ॥ १ ॥

अद्भुत	अद्भुत	अस्त्र वै	ब्रह्मास्त्रसे निश्चित रूपसे
कर्मणः	कर्म करनेमें समर्थ		
भगवतः	भगवान्	विप्लुष्टः	नष्ट किये जानेपर भी
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके	मातु	माताके
अनुग्रहात्	अनुग्रहसे	उदरे	पेटमें
यः	जो	न	नहीं
द्रोणि	अश्वत्थामाके	मृतः	मरे ॥१॥

ब्रह्मकोपोत्थिताद् यस्तु तक्षकात्प्राणविप्लवात् ।
न सम्मुमोहोरुभयाद् भगवत्यर्पिताशयः ॥२॥

ब्रह्म कोप उत्थितात् यस्तु तक्षकात् प्राण विप्लवात् न सम्मुमोह उरुभयात् भगवति अर्पित आशयः ॥ २ ॥

ब्रह्म	ब्राह्मणके	उरुभयात्	भारी भयसे (भी)
कोप	क्रोधसे	भगवति	भगवानमें
उत्थितात्	उत्पन्न	अर्पित	अर्पित
तक्षकात्	तक्षक द्वारा	आशयः	अन्तःकरण (होनेसे)
प्राण	प्राण	यस्तु	जो (राजा परीक्षित)
विप्लवात्	नाश (जैसे)	न सम्मुमोह	मोहमें नहीं पड़े ॥२॥

उत्सृज्य सर्वतः सङ्गं विज्ञाताजितसंस्थितिः ।
वैयासकेर्जहौ शिष्यो गङ्गायां स्वं कलेवरम् ॥३॥

उत्सृज्य सर्वतः सङ्गं विज्ञात अजित संस्थितिः वैयासकेः जहौ शिष्यः गङ्गायां स्वं कलेवरम् ॥ ३ ॥

सर्वतः	सब ओरसे	संस्थितिः	स्वरूप
सङ्गं	आसक्ति	विज्ञात	जानकर (उन राजा
उत्सृज्य	त्यागकर		परीक्षितने)
वैयासकेः	व्यासनन्दन	गङ्गायां	गङ्गा किनारे
	श्रीशुकदेवजीसे	स्वं	अपने
शिष्यः	(उनका) शिष्य	कलेवरं	शरीरको
	बनकर	जहौ	त्याग दिया ॥३॥
अजित	श्रीहरिका		

नोत्तमश्लोकवार्तानां जुषतां तत्कथामृतम् ।
स्यात्सम्भ्रमोऽन्तकालेऽपि स्मरतां तत्पदाम्बुजम् ॥४॥

न उत्तमश्लोक वर्तानां जुषतां, तत् कथामृतं स्यात् सम्भ्रमः अन्तकाले अपि स्मरतां तत् पदाम्बुजम् ॥ ४ ॥

उत्तमश्लोक	पुण्य कीर्ति	स्मरतां	स्मरण करने
	भगवानकी		वालोंको
वार्तानां	चर्चामें लगे,	अन्तकाले	मरते समय
तत्	उनकी	अपि	भी
कथामृतं	कथारूप अमृतका	सम्भ्रमः	(देहात्म बुद्धि रूप)
जुषतां	सेवन करने वालोंको,		भ्रम
तत्	उनके	न	नहीं
पदाम्बुजं	चरण-कमलोंका	स्यात्	होता ॥४॥

तावत्कलिर्न प्रभवेत् प्रविष्टोऽपीह सर्वतः ।
यावदीशो महानुर्व्यामभिमन्यव एकराट् ॥५॥

तावत् कलिः न प्रभवेत् प्रविष्टः अपि इह सर्वतः यावत् ईशः महान् उर्व्यां आभिमन्यव एकराट् ॥ ५ ॥

इह	इस पृथ्वीपर	प्रविष्टः	प्रवेश कर लेनेपर
सर्वतः	सब कहीं	अपि	भी

कलिः	कलियुग	उर्व्यां	पृथ्वीपर
तावत्	तबतक	आभिमन्यव	अभिमन्यु नन्दन (परीक्षित)
न	नहीं		
प्रभवेत्	(अपना) प्रभाव दिखा सका	महान्	महान्
		एकराट्	एक छत्र
यावत्	जबतक	ईशः	सम्राट् रहे ॥५॥

यस्मिन्नहनि यर्ह्येव भगवानुत्ससर्ज गाम् ।
तदैवेहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभवः कलिः ॥६॥

यस्मिन् अहनि यर्हि एव भगवान् उत्ससर्ज गां तत् एव इह अनुवृत्तः असाः अधर्म प्रभवः कलिः ॥ ६ ॥

यस्मिन्	जिस	एव	ही
अहनि	दिन,	इह	इस लोकमें
यर्हि	जिस समय	असाः	यह
एव	ही	अधर्म प्रभवः	अधर्मको उत्पन्न करनेवाला
भगवान्	भगवान् श्रीकृष्णने		
गां	पृथ्वीको	कलिः	कलियुग
उत्ससर्ज	छोड़ा	अनुवृत्तः	प्रवृत्त होगया ॥६॥
तत्	उस (समय)		

नानुद्वेष्टि कलिं सम्राट् सारङ्ग इव सारभुक् ।
कुशलान्याशु सिद्ध्यन्ति नेतराणि कृतानि यत् ॥७॥

न अनुद्वेष्टि कलिं सम्राट् सारङ्ग इव सारभुक् कुशलानि आशु सिद्ध्यन्ति न इतराणि कृतानि यत् ॥ ७ ॥

सारङ्ग	भ्रमरके	अनुद्वेष्टि	दृढ़ द्वेष
इव	समान	न	नहीं किया,
सारभुक्	सार भोजी	यत्	क्योंकि (इस कलियुगमें)
सम्राट्	राजा परीक्षित्ने		
कलिं	कलियुगसे		

कुशलानि	उत्तम कर्म*	कृतानि	कर्म
आशु	शीघ्र	न	(शीघ्र सफल) नहीं
सिद्ध्यन्ति	सफल होते हैं।		होते ॥७॥
इतराणि	दूसरे (असत्)		

किं नु बालेषु शूरेण कलिना धीरभीरुणा।
अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यो वृको नृषु वर्तते ॥८॥

किं नु बालेषु शूरेण कलिना धीर भीरुणा अप्रमत्तः प्र मत्तेषु यः वृकः नृषु वर्तते ॥ ८ ॥

बालेषु	बालकों (जैसे अज्ञानियों) के लिए	अप्रमतः	सावधान होकर
		वर्तते	वर्तनेवाले
शूरेण	शूरवीरसे,	वृकः	भेड़ियेके समान
धीर	धैर्यशालियोंसे	यः	इस
भीरुणा	डरनेवालेसे,	कलिना	कलियुगसे
प्रमत्तेषु	प्रमाद करनेवाले	किं नु	क्या हानि है ॥८॥
नृषु	मनुष्योंसे		

उपवर्णितमेतद्वः पुण्यं पारीक्षितं मया।
वासुदेवकथोपेतमाख्यानं यदपृच्छत ॥९॥

उपवर्णितं एतद् वः पुण्यं पारीक्षितं मया वासुदेव कथाः उपेतं आख्यानं यत् पृच्छतः ॥ ९ ॥

यत्	जो	कथाः	कथासे
पृच्छतः	(आप लोगोंने) पूछा था (वह)	उपेतं	मिला हुआ
		पुण्यं	पवित्र
वासुदेव	भगवान श्रीकृष्णकी	पारीक्षित	राजा परीक्षितका

---

* यहाँ उत्तम कर्मके शीघ्र तथा अधम कर्मके शीघ्र न सफल होनेकी बात सांसारिक सफलताके क्षेत्रमें नहीं है। अन्तःकरणकी शुद्धि तथा पारलौकिक सफलता ही सफलता है। राजस-तामस साधनाओंसे यह सफलता इस युगमें दुर्लभ है।

एतत्	यह	मया	मैंने
आख्यानं	चरित	उपवर्णितं	वर्णन किया ॥९॥
वः	आप लोगोंसे		

या याः कथा भगवतः कथनीयोरुकर्मणः ।
गुणकर्माश्रयाः पुम्भिः संसेव्यास्ता बुभूषुभिः ॥१०॥

याः याः कथा भगवतः कथनीया उरुकर्मणः गुण कर्म आश्रयाः पुंभिः संसेव्याः ताः बुभूषुभिः ॥ १० ॥

याः याः	जो जो	बुभूषुभिः	आत्मतृप्ति चाहनेवाले
भगवतः	भगवान	पुम्भिः	पुरुषोंको
उरुकर्मणः	अनन्त कर्माके	ताः	उनका
गुण	गुणों (एवं)	संसेव्याः	सेवन (श्रवण-कीर्तन) करना चाहिए ॥१०॥
कर्म	कर्म (चरित) के		
आश्रयाः	आधारकी		
कथनीया कथाः	वर्णन करने योग्य कथा हैं,		

शौनक उवाच*–

सूत जीव समाः सौम्य शाश्वतीर्विशदं यशः ।
यस्त्वं शंससि कृष्णस्य मर्त्यानामृतं हि नः ॥११॥

सूत जीव समाः सौम्य शाश्वतीः विशदं यशः यः त्वं शंससि कृष्णस्य मर्त्यानां अमृतं हि नः ॥ ११ ॥

सौम्य	शान्त	यशः	सुयश
सूत	सूतजी ! (आप)	शाश्वतीः	शाश्वत (नित्य) हो
समाः	बहुत वर्ष	हि	क्योंकि
जीव	जीवित रहो	त्वं	आप
विशदं	(आपका) निर्मल	यः	जो

* अन्य प्रतियोंमें 'ऋषयउचुः' है ।

मर्त्यानां	मरण धर्मा मनुष्योंके लिए	कृष्णस्य	श्रीकृष्णकी (कथा)
अमृतं	अमृत स्वरूप (है वह)	नः	हम लोगोंको
		शंससि	सुना रहे हैं ॥११॥

कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूमधूम्रात्मनां भवान् ।
आपाययति गोविन्दपादपद्मासवं मधु ॥१२॥

कर्मणि अस्मिन् अनाश्वासे धूम्र धूम्रात्मनां भवान् आपाययति गोविन्द पादपद्म आसवं मधु ॥१२॥

अस्मिन्	इस	भवान्	आप
अनाश्वासे	आश्वासन रहित (यज्ञीय) कर्ममें लगे	गोविन्द	गोविन्दके
कर्मणि		पादपद्म	चरण-कमलोंका
धूम्र	धुएँसे	आसव	आसव रूप
धूम्रात्मनां	मलिन (धुंऐले हुए) शरीर एवं चित्तवाले (हम लोगोंको)	मधु	अमृत
		आपाययति	पिला रहे हैं ॥१२॥

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥१३॥

तुलयाम लवेन अपि न स्वर्गं न अपुनर्भवं भगवत् सङ्गि-सङ्गस्य मर्त्यानां किं उत आशिषः ॥ १३ ॥

भगवत्	भगवानमें	अपुनर्भवं	मोक्षसे भी
सङ्गि	आसक्त भक्तोंका	न	नहीं करते
लवेन	क्षण भरके	उत	फिर
अपि	भी	मर्त्यानां	मनुष्योंकी
सङ्गस्य	संगकी	आशिषः	(लौकिक) कामनाओंकी
तुलयाम	तुलना हम		
स्वर्ग	स्वर्ग (के सुख) से	किं	चर्चा ही क्या ॥१३॥
न	नहीं		

को नाम तृप्येद् रसवित्कथायां
महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
नान्तं गुणानामगुणस्य जग्मु-
र्योगेश्वरा ये भवपाद्ममुख्याः ॥१४॥

कः नाम तृप्येत रसवित् कथायां महत्तम एकान्त परायणस्य न अन्तं गुणानां अगुणस्य जग्मुः योगेश्वरा ये भव पाद्म मुख्याः ॥ १४ ॥

महत्तम	महापुरुष	पाद्म	ब्रह्मा (आदि)
एकान्त	अनन्य भावसे	मुख्याः	मुख्य
परायणस्य	जिसके परायण रहते हैं (उस)	योगेश्वराः	योगेश्वर हैं (वे भी)
कथायां	कथासे	अगुणस्य	निर्गुण परमात्माके (सगुण होनेपर)
कः	कौन	गुणानां	गुणोंका
नाम	भला	अन्तं	अन्त,
रसवित्	रसज्ञ	न	नहीं
तृप्येत	तृप्त होगा	जग्मुः	पाते ॥१४॥
ये	जो		
भव	शिव		

तन्नो भवान् वै भगवत्प्रधानो
महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
हरेरुदारं चरितं विशुद्धं
शुश्रूषतां नो वितनोतु विद्वन् ॥१५॥

तत् नः भवान् वै भगवत् प्रधानः महत्तम एकान्त परायणस्य हरेः उदारं चरितं विशुद्धं शुश्रूषतां नः वितनोतु विद्वन् ॥ १५ ॥

तत्	इसलिए	प्रधानः	प्रधान
नः	हमारे लिए तो	भगवत	भगवद् भक्त हैं
भवान्	आप	विद्वन्	(आप) विद्वान हैं,
वै	निश्चय	नः	हम

शुश्रूतां	सेवा करनेवालोंके लिए	हरेः	श्रीहरिके
महत्तम	महापुरुष	उदारं	उदार
एकान्त	अनन्य भावसे	विशुद्धं	निर्मल
परायणस्य	(जिसके) परायण रहते हैं (उन)	चरितं	चरितोंको
		वितनोतु	विस्तार कीजिये ॥१५॥

स वै महाभागवतः परीक्षिद्
येनापवर्गाख्यमदभ्रबुद्धिः ।
ज्ञानेन वैयासकिशब्दितेन
भेजे खगेन्द्रध्वजपादमूलम् ॥१६॥

स वै महाभागवतः परीक्षित् येन अपवर्ग आख्यं अदभ्र बुद्धिः ज्ञानेन वैयासकि शब्दितेन भेजे खगेन्द्रध्वज पादमूलम् ॥ १६ ॥

स	वे	शब्दितेन	उपदिष्ट
परीक्षित्	परीक्षित	अपवर्ग	मोक्ष*
वै	निश्चय	आख्यं	कहे जानेवाले
महाभागवतः	महाभागवत थे	ज्ञानेन	ज्ञानके द्वारा
येन	जिन	खगेन्द्रध्वज	गरुड़ध्वज भगवानके
अदभ्र	निर्मल	पादमूलं	चरणोंको
बुद्धि	बुद्धिने	भेजे	प्राप्त किया ॥१६॥
वैयासकि	व्यासनन्दन द्वारा		

तन्नः परं पुण्यमसंवृतार्थ-
माख्यानमत्यद्भुतयोगनिष्ठम् ।
आख्याह्यनन्ताचरितोपपन्नं
पारीक्षितं भागवताभिरामम् ॥१७॥

---

* भागवतमें आगे भी 'ज्ञान मात्रं परंब्रह्म' आवेगा। ज्ञान ही मोक्ष है अतः मोक्ष (अपवर्ग) ज्ञानका ही नाम है।

तत् नः परं पुण्यं असंवृत अर्थं आख्यानं अति अद्भुत योग निष्ठं आख्याहि अनन्त चरित उपपन्नं पारीक्षितं भागवत अभिरामं ॥ १७॥

तत्	अतः	**अनन्त**	भगवानके
परं	परम	**चरित**	चरितसे
पुण्यं	पवित्र,	**उपपननं**	संयुक्त,
असंवृत	स्पष्ट	**भागवत**	भगवद्भक्तमें
अर्थं	प्रयोजनवाला,	**अभिरामं**	सुन्दर
अति	बहुत	**पारीक्षितं**	परीक्षितका
अद्भुत	अद्भुत	**आख्यानं**	चरित
योगनिष्ठं	योग (भगवत्प्राप्तिमें) निष्ठा (उत्पन्न करने) वाला,	**नः**	हम लोगोंको
		आख्याहि	सुनाइये ॥१७॥

सूत उवाच–

अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्म
वृद्धानुवृत्त्यापि विलोमजाताः ।
दौष्कुलमाधिं विधुनोति शीघ्रं
महत्तमानामभिधानयोगः ॥१८॥

अहो वयं जन्मभृतः अद्य हास्म वृद्ध अनुवृत्त्या अपि विलोम जाताः दौष्कुल्यं आधिं विधुनोति शीघ्रं महत्तमानां अभिधान योगः ॥ १८ ॥

अहो	सौभाग्यकी बात है कि	**जाताः**	उत्पन्न होने
		अपि	पर भी
वृद्ध	बड़ोंके	**वयं**	हमारा
अनुवृत्त्या	अनुकरणसे	**जन्मभृतः**	जन्मलेना
विलोम	प्रतिलोम*	**अद्य**	आज

* माता उच्च वर्णकी हो और पिता छोटे वर्णका हो तो उससे उत्पन्न सन्तान प्रतिलोमज अतः पितासे भी हीन वर्णका माना जाता है। सूत प्रतिलोमज जाति है।

हास्म	सफल हो गया।	दौष्कुल्यं	हीनकुलमें उत्पन्न होनेकी
महत्तमानां	महापुरुषों द्वारा	आधिं	चिन्ताको
अभिधान	(आदरपूर्वक) सम्बोधित	शीघ्र	शीघ्र
योगः	किया जाना	विधुनोति	नष्ट कर देता है ॥१८॥

कुतः पुनर्गृणतो नाम तस्य
महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
योऽनन्तशक्तिर्भगवाननन्तो
महद्गुणत्वाद् यमनन्तमाहुः ॥१९॥

कुतः पुनः गृणतः नाम तस्य महत्तम एकान्त परायणस्य यः अनन्तशक्तिः भगवान् अनन्तः महद् गुणत्वात् यं अनन्तं आहुः ॥ १९ ॥

महत्तम	श्रेष्ठ महापुरुष	आहुः	(शास्त्रमें) कहा गया है
एकान्त	अनन्य भावसे	तस्य	उनके
परायणस्य	जिनके परायण रहते हैं,	नाम	नामोंका
यः	जो	गृणतः	कीर्तन करते
अनन्तशक्तिः	अनन्त शक्ति	पुनः	फिर
भगवान् अनन्तः	भगवान् अनन्त	कुतः	(हीनकुलमें जन्म लेनेकी चिन्ता नष्ट होनेकी) बात ही क्या ॥१९॥
यं	जिन्हें		
महत्	महान		
गुणत्वात	गुणोंके कारण		
अनन्तः	अनन्त		

एतावतालं ननु सूचितेन
गुणैरसाम्यानतिशायनस्य ।
हित्वेतरान् प्रार्थयतो विभूति-
र्यस्याङ्घ्रिरेणुं जुषतेऽनभीप्सोः ॥२०॥

भक्तके समान में

एतावता अलं ननु सूचितेन गुणैः असाम्यात् अतिशयनस्य हित्वा इतरान् प्रार्थयतः विभूतिः यस्य अङ्घ्रि रेणुं जुषते अनभीप्सोः ॥ २०॥

असाम्यात् गुणैः	असाधारण गुणोंकी	हित्वा	छोड़कर
अतिशायनस्य	अतिशयता	विभूतिः	लक्ष्मीजी
सूचितेन	सूचित करनेके लिए	यस्य	जिन
ननु	निश्चय	अनभीप्सोः	न चाहनेवाले
एतावता	इतना ही		(भगवान) की
अलं	पर्याप्त है कि	पादरेणुं	चरण रजका
प्रार्थयतः	प्रार्थना करनेवाले	जुषते	सेवन करती हैं ॥२०॥
इतरान्	दूसरोंको		

अथापि यत्पादनखावसृष्टं
जगद् विरिञ्चोपहृतार्हणाम्भः ।
सेशं पुनात्यन्यतमो मुकुन्दात्
को नाम लोके भगवत्पदार्थः ॥२१॥

अथ अपि यत् पादनख अवसृष्टं जगत् विरिञ्च उपहृता अर्हण अम्भः स ईशं पुनाति अन्यतमः मुकुन्दात् कः नाम लोके भगवत् पदार्थः ॥ २१ ॥

अथ	फिर	स ईशं	शंकरजीके साथ
अपि	भी	जगत्	संसारको
यत्	जिनके	पुनाति	पवित्र करता है
पादनख	चरण नखसे		(उन)
अवसृष्टं	गिरा हुआ	मुकुन्दात्	मुकुन्दसे
विरिञ्च	ब्रह्माजी द्वारा	लोके अन्यतमः	पृथक् लोकमें
उपहृता	प्रस्तुत	भगवत्	षडैश्वर्य सम्पन्न
अर्हण	(चरण प्रक्षालन) पूजाका	पदार्थ	पदार्थ (व्यक्ति)
अम्भः	जल (गंगा बनकर)	कः नाम	कौन हो सकता है ? ॥२१॥

प्रतिर यत्रानुरक्ताः सहसैव धीरा
स्थान व्यपोह्य देहादिषु सङ्गमूढम् ।

व्रजन्ति तत्पारमहंस्यमन्त्यं
यस्मिन्नहिंसोपशमः स्वधर्मः ॥२२॥

यत्र अनुरक्ताः सहसा एव धीराः व्यपोह्य देहादिषु सङ्गं ऊढं व्रजन्ति तत् पारमहंस्यं अन्त्यं यस्मिन् अहिंसा उपशमः स्वधर्मः ॥ २२ ॥

यत्र	जिन (श्रीचरणों) में	तत्	उस
अनुरक्ताः	प्रीतिवाले	अन्त्यं	अन्तिम
धीराः	धीर पुरुष	पारमहंस्यं	परमहंसावस्थामें
सहसा	अचानक	व्रजन्ति	जाते हैं
एव	ही	यस्मिन्	जिसमें
देहादिषु	देह (परिवार) आदिमें	अहिंसा	अहिंसा (और)
		उपशमः	परम शान्ति
ऊढं	दृढ़	स्वधर्मः	अपना धर्म
सङ्गं	आसक्तिको		(हो जाता)है ॥२२॥
व्यपोह्य	त्यागकर		

अहं हि पृष्टोऽर्यमणो भवद्भि-
राचक्ष आत्मावगमोऽत्र यावान् ।
नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्त्रिण-
स्तथा समं विष्णुगतिं विपश्चितः ॥२३॥

अहं हि पृष्टः आर्यमणो भवद्भिः आचक्ष आत्म अवगमः अत्र यावान् नभः पतन्ति आत्मसमं पतत्रिणः तथा समं विष्णुगतिं विपश्चितः ॥ २३ ॥

आर्यमणो	आर्य श्रेष्ठो !	अत्र	इस विषयमें
भवद्भिः	आप लोगों द्वारा	यावान्	जितनी
हि	क्योंकि	अवगमः	जानकारी है
अहं	मैं	आचक्ष	बतलाऊँगा ।
पृष्टः	पूछा गया हूँ (आपने मुझसे पूछा है)	पतत्रिणः	पक्षी
		आत्मसमः	अपनी शक्तिके समान
आत्म	मेरा अपना	नभः	आकाशमें
		पतन्ति	उड़ते हैं,

तथा	ऐसे ही	समं	(अपनी बुद्धिके) समान (वर्णन करते हैं) ॥२३॥
विपश्चितः	विद्वान भी		
विष्णुगतिं	भगवान विष्णुकी गति (लीलाके विषयमें)		

एकदा धनुरुद्यम्य विचरन् मृगयां वने ।
मृगाननुगतः श्रान्तः क्षुधितस्तृषितो भृशम् ॥२४॥

एकदा धनु उद्यम्य विचरन् मृगयां वने मृगान् अनुगतः श्रान्तः क्षुधितः तृषितः भृशम् ॥ २४ ॥

एकदा	एक बार	अनुगतः	पीछे दौड़ते
धनुः	धनुष	श्रान्तः	(राजा परीक्षित) थक गये ।
उद्यम्य	लेकर		
वने	वनमें	भृशं	बहुत
मृगयां	आखेट करनेके लिए	क्षुधितः	भूखे
विचरन्	घूमते (समय)	तृषितः	प्यासे थे ॥२४॥
मृगान्	पशुओंके		

जलाशयमचक्षाणः प्रविवेश तमाश्रमम् ।
ददर्श मुनिमासीनं शान्तं मीलितलोचनम् ॥२५॥

जलाशयं अचक्षाणः प्रविवेश तं आश्रमं ददर्श मुनिं आसीनं शान्तं मीलित लोचनम् ॥ २५ ॥

जलाशयं	जलाशय	शान्तं	(वहाँ) शन्त,
अचक्षाणः	ढूँढ़ते हुए	मीलित लोचनं	नेत्र बन्द किये,
तं	उस	आसीनं	बैठे
आश्रमं	आश्रममें	मुनिं	मुनिको
प्रविवेश	प्रवेश किया	ददर्श	देखा ॥२५॥

प्रतिरुद्धेन्द्रियप्राणमनोबुद्धिमुपारतम् ।
स्थानत्रयात्परं प्राप्तं ब्रह्मभूतमविक्रियम् ॥२६॥

प्रतिरुद्धः इन्द्रिय प्राण मनः बुद्धि उपारतं स्थानत्रयात् परं प्राप्तं ब्रह्मभूतं अविक्रियम् ॥ २६ ॥

इन्द्रिय	इन्द्रियोंको,	परं	परेकी अवस्था (तुरीय-समाधि) में
प्राण	प्राणोंको,		
मनः	मनको,	प्राप्तं	प्राप्त (स्थित),
बुद्धि	बुद्धिको	अविक्रियं	निर्विकार,
प्रतिरुद्धः	रोक (निरुद्ध) करके	ब्रह्मभूतं	ब्राह्मी भावापन्न, ॥२६॥
उपारतं	(इनसे) उपरत हुए		
स्थानत्रयात्	तीनों स्थानों (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) से		

विप्रकीर्णजटाच्छन्नं रौरवेणाजिनेन च ।
विशुष्यत्तालुरुदकं तथाभूतमयाचत ॥२७॥

विप्रकीर्णं जटा आच्छन्नं रौरवेन अजिनेन च विशुष्यत् तालुः उदकं तथाभूतं अयाचत ॥ २७ ॥

जटा	जटा	तथाभूतं	इस अवस्थाके (मुनिसे)
विप्रकीर्णं	फैलाये		
च	और	तालुः	(प्यासके मारे) तालु
रौरवेन	रुरुमृग (चीतल) के	विशष्यत्	अत्यन्त सूख रहा था
अजिनेन	चर्मसे	उदकं	जल
आच्छन्नं	ढके (ओढ़े) हुए	अयाचत	मांगा ॥२७॥

अलब्धतृणभूम्यादिरसम्प्राप्तार्घ्यसूनृतः ।
अवज्ञातमिवात्मानं मन्यमानश्चुकोप ह ॥२८॥

अलब्धः तृणः भूमि आदि असम्प्राप्तः अर्घ्य सूनृतः अवज्ञातं इव आत्मानं मन्यमानः चुकोप ह ॥ २८ ॥

अर्घ्य	हाथ धोनेको जल	तृणः	कुशासन (अथवा)
सूनृतः	उत्तम मधुरवाणी (से स्वागत)	भूमि	भूमि (पर ही बैठ जानेका संकेत)

आदि	आदि (पाद्य-पैर धोनेको जल, पीनेको जल)	आत्मानं	अपना
		अवज्ञातं	अवज्ञा (अपमान हुआ है)
अलब्धः	(यह कुछ भी) न मिलनेसे	इव	ऐसा
		मन्यमानः	मान लिया (अतः)
ह	क्योंकि	चुकोप	क्रोधमें आगये ॥२८॥

अभूतपूर्वः सहसा क्षुत्तृड्भ्यामर्दितात्मनः ।
ब्राह्मणं प्रत्यभूद् ब्रह्मन् मत्सरो मन्युरेव च ॥२९॥

अभूत पूर्वः सहसा क्षुत् तृट्भ्यां अर्दितः आत्मनः ब्राह्मणं प्रति अभूत् ब्रह्मन् मत्सरः मन्युः एव च ॥ २९ ॥

ब्रह्मन्	शौनकजी	अर्दितः	रौंदा हुआ(व्याकुल) था (इस परि-स्थितिमें)
सहसा	अचानक		
अभूत पूर्वः	ऐसा (व्यवहार राजके साथ) पहिले कभी हुआ नहीं था,	ब्राह्मणं	ब्राह्मण (उन ध्यानस्थ ऋषि) के
		प्रति	प्रति
क्षुत् तृट्भ्यां	भूख-प्याससे	मत्सरः	मत्सर (उनमें दोष बुद्धि)
आत्मनः	मन	च	और
		मन्युः एव अभूत	क्रोध भी हुआ ॥२९॥

स तु ब्रह्मऋषेरंसे गतासुमुरगं रुषा ।
विनिर्गच्छन्धनुष्कोट्या निधाय पुरमागमत् ॥३०॥

स तु ब्रह्मऋषेः अंसे गतासुं उरगं रुषा विनिर्गच्छन् धनुः कोट्या निधाय पुरं आगमत् ॥ ३० ॥

स तु	उन्होंने तो	गतासुं	मरे हुए
ब्रह्मऋषेः	ब्रह्मर्षिके	उरगं	सर्पको
अंसे	गलेमें	रुषा	क्रोधवश

धनुः	धनुषकी	विनिर्गच्छन्	(आश्रमसे) निकलते हुए
कोट्या	नोकसे	पुरं	राजधानी
निधाय	डालकर	आगमत्	आगये ॥३०॥

एष किं निभृताशेषकरणो मीलितेक्षणः ।
मृषासमाधिराहोस्विदिकं नु स्यात्क्षत्रबन्धुभिः ॥३१॥

एष किं निभृत अशेष करणः मीलितेक्षणः मृषा समाधिः अहोस्वित् किं नु स्यात् क्षत्रबन्धुभिः ॥ ३१ ॥

एष	(राजाने सोचा) ये	आहोस्वित्	अथवा (यह सोचकर कि)
किं	क्या	क्षत्र बन्धुभिः	'अधम क्षत्रियसे
अशेष	सम्पूर्ण	किं नु	भला क्या (प्रयोजन)
करणः	इन्द्रियों तथा मन-बुद्धिको	स्यात्	है'
निभृत	निश्चल करके	मृषा	झूठी
मीलितेक्षणः	नेत्र बन्द किये हैं	समाधिः	समाधि (का बहाना किये) हैं ॥३१॥

तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी विहरन् बालकोऽर्भकैः ।
राज्ञाघं प्रापितं तातं श्रुत्वा तत्रेदमब्रवीत् ॥३२॥

तस्य पुत्रः अतितेजस्वी विहरन् बालकः अर्भकैः राज्ञा अघं प्रापितं तातं श्रुत्वा तत्र इदं अब्रवीत् ॥ ३२ ॥

तस्य	उन (ऋषि) का	तातं	पिताके साथ
पुत्रः	पुत्र	अघं	अपराध
अतितेजस्वी	अत्यन्त तेजस्वी (था)।	प्रापितं	किया है
बालकः	(वह) बालक	श्रुत्वा	सुनकर
अर्भकैः	बच्चोंके साथ	तत्र	वहीं
विहरन्	खेल रहा था।	इदं	यह
राज्ञा	राजाने	अब्रवीत्	बोला ॥३२॥

अहो अधर्मः पालानां पीन्नां बलिभुजामिव ।
स्वामिन्यघं यद् दासानां द्वारपानां शुनामिव ॥३३॥

अहो अधर्मः पालानां पीन्नां बलिभुजां इव स्वामिन् अघं यत् दासानां द्वारपानां शुनां इव ॥ ३३ ॥

बलिभुजां	कौओंके	यत्	क्योंकि
इव	समान	द्वारपानां	द्वाररक्षक
पीन्नां	मोटे हुए	शुनां	कुत्तोंके
पालानां	पालकों (राजाओं) का	इव	समान
		दासानां	सेवकोंका
अहो	आश्चर्यजनक	स्वामिन्	स्वामीके प्रति (यह)
अधर्मः	अधर्म (देखो)	अघं	अपराध (है) ॥३३॥

ब्राह्मणैः क्षत्रबन्धुर्हि द्वारपालो निरूपितः ।
स कथं तद्गृहे द्वाःस्थः सभाण्डं भोक्तुमर्हति ॥३४॥

ब्राह्मणैः क्षत्रबन्धुः हि द्वारपालः निरूपितः स कथं तत् द्वास्थः सभाण्डं भोक्तुं अर्हति ॥ ३४ ॥

ब्राह्मणैः	ब्राह्मणों द्वारा	तत्	उन (ब्राह्मणों) के
हि	क्योंकि	गृहे	घरमें
क्षत्रबन्धुः	क्षत्रियाधम	सभाण्डं	बर्तनोंमें
द्वारपालः	द्वारपाल	भोक्तुं	भोजन करने
निरूपितः	बतलाये गये हैं।	अर्हति	योग्य हो सकते है ॥३४॥
स द्वास्थः	वे द्वारपर रहनेवाले		
कथं	कैसे		

कृष्णे गते भगवति शास्तर्युत्पथगामिनाम् ।
तद्भिन्नसेतूनद्याहं शास्मि पश्यत मे बलम् ॥३५॥

कृष्णे गते भगवति शास्तरि उत्पथ गामिनां तद् भिन्नसेतून् अद्य अहं शास्मि पश्यत मे बलम् ॥ ३५ ॥

उत्पथ	कुमार्गसे	शास्तरि	दण्ड देनेवाले
गामिनां	चलनेवालोंको	भगवति	भगवान

कृष्णे	श्रीकृष्णके	अहं	मैं
गते	चले जानेपर	शास्मि	दण्ड दे रहा हूँ
तद्	उनकी	मे	मेरी
भिन्नसेतून्	मर्यादा भंग करने वालोंको	बलं	शक्तिको
		पश्यत	देखो ॥३५॥
अद्य	आज		

इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो वयस्यानृषिबालकान् ।
कौशिक्यापः उपस्पृश्यं वाग्वज्रं विससर्ज ह ॥३६॥

इति उक्त्वा रोष ताम्राक्षः वयस्यान् ऋषि बालकान् कौशिकी आप् उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ह ॥ ३६ ॥

रोष ताम्राक्षः	क्रोधसे लाल नेत्र (वह)	आप्	जलसे
		उपस्पृश्य	आचमन करके
वयस्यान्	अपने मित्र	वाग्वज्रं	वाणी रूप वज्र
ऋषि बालकान्	ऋषियोंके बालकोंसे	विससर्ज	विसर्जित
इति	ऐसा	ह	किया (शाप दिया) ॥३६॥
उक्त्वा	कहकर		
कौशिकी	कौशिकी नदीके		

इति लङ्घितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि ।
दङ्क्ष्यति स्म कुलाङ्गारं चोदितो मे ततद्रुहम् ॥३७॥

इति लङ्घित मर्यादं तक्षकः सप्तमे अहनि दङ्क्ष्यतिस्म कुलाङ्गारं चोदितः मे ततः द्रुहम् ॥ ३७ ॥

ततः	मेरे पितासे	मे	मेरे द्वारा
द्रुहं	द्रोह करनेवाले	चोदितः	प्रेरित
कुलाङ्गारं	कुलांगार	तक्षकः	तक्षक
इति	इस प्रकार	सप्तमे	सातवें
मर्यादं	मर्यादाका	अहनि	दिन
लङ्घितं	उल्लंघन करनेवाले (परीक्षित) को	दंक्ष्यति स्म	डँस लेगा ॥३७॥

ततोऽभ्येत्याश्रमं बालो गले सर्पकलेवरम् ।
पितरं वीक्ष्य दुःखार्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह ॥३८॥

ततः अभ्येत्य आश्रमं बालः गले सर्प कलेवरं पितरं वीक्ष्य दुःख आर्तः मुक्तकण्ठः रुरोद ह ॥ ३८ ॥

ततः	तदन्तर	कलेवरं	शरीर
बालः	(वह) बालक	वीक्ष्य	देखकर
आश्रमं	आश्रममें	दुःखआर्तः	दुःखसे व्याकुल होकर
अभ्येत्य	आकर	मुक्तकण्ठः	खुले गलेसे (जोरसे)
पितरं	पिताके	रुरोद	रोने
गले	गलेमें	ह	लगा ॥३८॥
सर्प	सर्पका		

सवा आङ्गिरसो ब्रह्मन् श्रुत्वा सुतविलापनम् ।
उन्मील्य शनकैर्नेत्रे दृष्ट्वा स्वांसे मृतोरगम् ॥३९॥

स वा आङ्गिरसः ब्रह्मन् श्रुत्वा सुत विलापनं उन्मील्य शनकैः नेत्रे दृष्ट्वा स्व अंसे मृत उरगम् ॥ ३९ ॥

ब्रह्मन्	शौनकजी !	शनकैः	धीरे-धीरे
स	उन	नेत्रे	नेत्रोंको
आङ्गिरसः	अंगिरा गोत्रीय (ऋषि) ने	उन्मील्य	खोला (और)
वा	उस समय	स्व	अपने
सुत	पुत्रका	अंसे	गलेमें
विलापनं	विलाप	मृत	मरे हुए
श्रुत्वा	सुनकर	उरगं	सर्पको
		दृष्ट्वा	देखकर ॥३९॥

विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ वत्स कस्माद्धि रोदषि ।
केन वा तेऽपकृतमित्युक्तः स न्यवेदयत् ॥४०॥

विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ वत्स कस्मात् हि रोदिषि केन वा ते अपकृतं इति उक्तः स न्यवेदयत् ॥ ४० ॥

विसृज्य	(उस मरे सर्पको) फेंककर	केन	किसने
		ते	तुम्हारा
पुत्रं	पुत्रसे	अपकृतं	अपकार किया है ?
पप्रच्छ	पूछा	इति	ऐसा
वत्स	बेटा !	उक्तः	कहे जानेपर
कस्मात् हि	किस कारणसे	स	उस (उनके पुत्र) ने
रोदिषि	रो रहे हो ?	न्यवेदयत्	सब सुनाया ॥४०॥
वा	अथवा		

निशम्य शप्तमतदर्हं नरेन्द्रं
स ब्राह्मणो नात्मजमभ्यनन्दत् ।
अहो बतांहो महदज्ञ ते कृत-
मल्पीयसि द्रोह उरुर्दमो धृतः ॥४१॥

निशम्य शप्तं अतदर्हं नरेन्द्रं स ब्राह्मणः न आत्मजं अभ्यनन्दत् अहो बत अंहो महत् अज्ञ ते कृतं अल्पीयसि द्रोहः उरुः दमः धृतः ॥ ४१ ॥

अतदर्हं	(शाप) के अयोग्य	बत	निश्चय ही
नरेन्द्रं	सम्राट् (परीक्षित) को	ते	तुमने
		अज्ञ	अज्ञानीने
शप्तं	शाप दिया, (यह)	महत्	भारी
निशम्य	सुनकर	अंहो	अपराध
स	उन	कृतं	किया है, (जो)
ब्राह्मणः	ब्राह्मणने	अल्पीयसि	छोटेसे
आत्मजं	पुत्रका	द्रोहः	द्रोहके लिए
अभिनन्दत	समर्थन	उरुः	बड़ा
न	नहीं किया ।	दमः	दण्ड
अहो	अहो	धृतः	दे दिया ॥४१॥

न वै नृभिर्नरदेवं पराख्यं
सम्मातुमर्हस्यविपक्वबुद्धे ।
यत्तेजसा दुर्विषहेण गुप्ता
विन्दन्ति भद्राण्यकुतोभयाः प्रजाः ॥४२॥

न वै नृभिः नरदेवं पराख्यं सम्मातुं अर्हसि अविपक्व बुद्धेः यत् तेजसा दुर्विषहेण गुप्ताः विन्दति भद्राणि अकुतः भयाः प्रजाः ।। ४२ ।।

अविपक्व	(तुम) कच्ची	यत्	जिसके
बुद्धेः	बुद्धिवाले हो	दुर्विषहेण	असह्य
पराख्यं	भगवत् कलायुत	तेजसा	तेजसे
नरदेवं	राजाकी	गुप्ताः	रक्षित
नृभिः	(साधारण) मनुष्योंसे	प्रजाः	प्रजा
		अकुतः भयाः	सब ओरसे निर्भय होकर
वै	निश्चय ही	भद्राणि	कल्याणको
सम्मातुं	समता करनी	विन्दति	प्राप्त करती है ॥४२॥
अर्हसि न	नहीं चाहिये		

अलक्ष्यमाणे नरदेवनाम्नि रथाङ्गपाणावयमङ्ग लोकः । तदा हि चौरप्रचुरो विनङ्क्ष्य-त्यरक्ष्यमाणोऽविवरूथवत् क्षणात् ॥४३॥

अलक्ष्यमाणे नरदेवनाम्नि रथाङ्गपाणाः वयं अङ्ग लोकः तदा हि चौर प्रचुरः विनङ्क्ष्यति अरक्ष्यमाणः अवि वरूथवत् क्षणात् ॥ ४३ ॥

अङ्ग	प्रिय पुत्र !	तदा	तब
हि	क्योंकि	अरक्ष्यमाणः	रक्षारहित
नरदेव	राजा	अवि	भेड़ोंके
नाम्नि	नामसे	वरूथवत्	झुंडके समान
रथाङ्गपाणाः	(स्वयं भगवान) चक्रपाणिके	वयं	हम सब (तथा)
		लोकः	लोक
अलक्ष्यमाणे	दिखायी न देनेपर	क्षणात्	शीघ्र ही
चौर	चोर	विनंक्ष्यति	नष्ट हो जाते हैं ॥४३॥
प्रचुरः	बढ़ जाते हैं		

तदद्य नः पापमुपैत्यनन्वयं यन्नष्टनाथस्य वसोर्विलुम्पकात् ।

परस्परं घ्नन्ति शपन्ति वृञ्जते
पशून् स्त्रियोऽर्थान् पुरुदस्यवो जनाः ॥४४॥

तत् अद्य नः पापं उपैति अनु अन्वयं यत् नष्ट नाथस्य वसोः विलुम्पकात् परस्परं घ्नन्ति शपन्ति वृञ्जते पशून् स्त्रियः अर्थान् पुरु दस्यवः जनाः ॥ ४४ ॥

तत्	अतः	स्त्रियः	स्त्रियोंको
अद्य	अब	अर्थान्	धनको
अन्वयं	उस (चलनेवाली) परम्पराके	वसोः	सम्पत्तिको
अनु	पीछे	विलुम्पकात्	लूटनेवाले
नः	हमको भी	पुरु	बढ़े हुए
पापं	पाप	दस्यवः	डाकू
उपैति	लगेगा	जनाः	लोग
यत्	क्योंकि	परस्परं	आपसमें
नाथस्य	स्वामी (राजा) के	घ्नन्ति	एक दूसरेको मारते
नष्ट	नष्ट हो जानेपर	वृञ्जते	काटते
पशून्	पशुओंको	शपन्ति	गाली देते हैं ॥४४॥

तदाऽऽर्यधर्मश्च विलीयते नृणां
वर्णाश्रमाचारयुतस्त्रयीमयः ।
ततोऽर्थकामाभिनिवेशितात्मनां
शुनां कपीनामिव वर्णसंकरः ॥४५॥

तदा आर्य धर्मः च विलीयते नृणां वर्ण आश्रम आचारयुतः त्रयीमयः ततः अर्थ काम अभिनिवेशित आत्मनां शुनां कपीनां इव वर्णसंकरः ॥४५॥

तदा	उस समय		गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास रूप)
वर्ण	वर्ण (ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रात्मक)	त्रयीमयः	वैदिक
आश्रम	आश्रम (ब्रह्मचर्य,	आचारयुतः	आचारवाला

नृणां	मनुष्योंका
आर्य	श्रेष्ठ
धर्म	धर्म
च	भी
विलीयते	नष्ट हो जाता है
ततः	तब
अर्थ	धन (और)
काम	भोगोंमें
अभिनिवेशित	पूर्णतः लगाये
आत्मनां	चित्तवालोंका
शुनां	कुत्तों
कपीनां	बन्दरों
इव	की भाँति
वर्णसङ्करः	वर्ण संकर हो जाता है। (कोई वैवाहिक मर्यादा नहीं रहती) ॥४५॥

धर्मपालो नरपतिः स तु सम्राड् बृहच्छ्रवाः ।
साक्षान्महाभागवतो राजर्षिर्हयमेधयाट् ।
क्षुत्तृट्श्रमयुतो दीनो नैवास्मच्छापमर्हति ॥४६॥

धर्मपालः नरपतिः स तु तम्राट् बृहत् श्रवाः साक्षात् महाभागवतः राजर्षिः हयमेध याट् क्षुत् तृट् श्रम युतः दीनः न एव अस्मत् शापं अर्हति ॥ ४६ ॥

स	वे
तु	तो
सम्राट्	सम्राट्
धर्मपालः	धर्मका पालन करनेवाले
नरपतिः	राजा हैं,
बृहत्	विशाल
श्रवाः	यशस्वी हैं,
साक्षात्	साक्षात्
महाभागवतः	महाभागवत
राजर्षि	राजर्षि हैं,
हयमेध	अश्वमेध यज्ञ
याट्	कर्ता हैं,
क्षुत्	भूख
तृट्	प्यास
श्रम	परिश्रमसे (थके)
युतः	युक्त होनेसे
दीनः	व्याकुल थे,
अस्मत्	हमारे
शापं	शापके
न एव	नहीं ही
अर्हति	योग्य थे ॥४६॥

अपापेषु स्वभृत्येषु बालेनापक्वबुद्धिना ।
पापं कृतं तद्भगवान् सर्वात्मा क्षन्तुमर्हति ॥४७॥

अपापेषु स्व भृत्येषु बालेन, अपक्व बुद्धिना पापं कृतं तत् भगवान् सर्वात्मा क्षन्तुं अर्हति ॥ ४७ ॥

स्व	अपने	कृतं	किया है,
अपापेषु	निष्पाप	तत्	वह
भृत्येषु	सेवकके प्रति	सर्वात्मा	सर्वात्मा
अपक्व	कच्ची	भगवान	भगवानको
बुद्धिना	बुद्धिके कारण	क्षन्तुं	क्षमा करना
बालेन	बालकने (जो)	अर्हति	चाहिये ॥४७॥
पापं	अपराध		

तिरस्कृता विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ता हता अपि ।
नास्य तत् प्रतिकुर्वन्ति तद्भक्ताः प्रभवोऽपि हि ॥४८॥

तिरस्कृताः विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ताः हताः अपि न अस्य प्रति कुर्वन्ति तद् भक्ताः प्रभवः अपि हि ॥ ४८ ॥

हि	क्योंकि	अपि	भी
तद्	उन (भगवान) के	प्रभवः	सामर्थ्य रहनेपर
भक्ताः	भक्तजन	अपि	भी
तिरस्कृताः	अपमानित होनेपर,	अस्य	इस (सब) का
विप्रलब्धाः	ठगे जानेपर,	प्रति	प्रतिकार
शप्ताः	गाली देनेपर,	न	नहीं
क्षिप्ताः	आक्षेप किये जानेपर,	कुर्वन्ति	करते ॥४८॥
हताः	मारे जानेपर		

इति पुत्रकृताघेन सोऽनुतप्तो महामुनिः ।
स्वयं विप्रकृतो राज्ञा नैवाघं तदचिन्तयत् ॥४९॥

इति पुत्र कृत अघेन सः अनुतप्तः महामुनिः स्वयं विप्रकृतः राज्ञा न एव अघं तत् अचिन्तयत् ॥ ४९ ॥

इति	इस प्रकार	महामुनिः	महामुनि
स	वे	पुत्र	पुत्र

कृत	के किये	तत्	उस
अघेन	अपराधसे	अघं	अपराधको
अनुतप्तः	बहुत दुःखी हुए।	न	नहीं
स्वयं	स्वयं	एव	ही
राज्ञा	राजासे	अचिन्तयत्	सोचा ॥४९॥
विप्रकृतः	अपमानित हुए थे		

प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वन्द्वेषु योजिताः ।
न व्यथन्ति न हृष्यन्ति यत आत्मागुणाश्रयः ॥५०॥

प्रायशः साधवः लोके परैः द्वन्देषु योजिताः न व्यथयन्ति न हृष्यन्ति यत आत्मा गुण आश्रयः ॥ ५० ॥

प्रायशः	प्रायः	न	न
साधवः	सत्पुरुष	हृष्यन्ति	हर्षित होते,
लोके	संसारमें	यत	क्योंकि
परैः	दूसरों द्वारा	आत्मा	आत्मा
द्वन्देषु	द्वन्द्वों (सुख-दुःख, मानापमान) में	गुण	गुणों (त्रिगुणों) का
योजिताः	लगाये जानेपर	आश्रयः	आश्रय है (गुणोंसे परे होनेके कारण उनसे प्रभावित नहीं होता) ॥५०॥
न	नहीं		
व्यथयन्ति	व्यथित होते		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

सूत उवाच-

महीपतिस्त्वथ तत्कर्म गर्ह्यं
विचिन्तयन्नात्मकृतं सुदुर्मनाः ।
अहो मया नीचमनार्यवत्कृतं
निरागसि ब्रह्मणि गूढतेजसि ॥१॥

महीपतिः तु अथ तत् कर्म गर्ह्यं विचिन्तयन् आत्म कृतं सुदुर्मनाः अहो मया नीचं अनार्यवत् कृतं निरागसि ब्रह्मणि गूढ तेजसि ॥ १ ॥

महीपतिः	राजा परीक्षित	सुदुर्मनाः	अत्यन्त खिन्न हुए।
तु	तो	अहो	हाय !
अथ	तदनन्तर (राजधानीमें पहुँचने पर)	निरागसि	निरपराध
		तेजसि	(अपने) तेजको
		गूढ	छिपाये
तत्	उस	ब्रह्मणि	ब्राह्मणके साथ
गर्ह्यं	निन्दित	मया	मैंने
आत्म	अपने	अनार्यवत्	अनार्यके समान
कृतं	किये	नीचं	नीच
कर्म	कर्मको	कृतं	(व्यवहार) किया ॥१॥
विचिन्तयन्	सोचते हुए		

ध्रुवं ततो मे कृतदेवहेलनाद्
दुरत्ययं व्यसनं नातिदीर्घात् ।
तदस्तु कामं त्वघनिष्कृताय मे
यथा न कुर्यां पुनरेवमद्धा ॥२॥

ध्रुवं ततः मे कृत देव हेलनात् दुरत्ययं व्यसनं न अति दीर्घात् तत् अस्तु कामं तु अघ निष्कृताय मे यथा न कुर्यां पुनः एवं अद्धा ॥ २ ॥

ध्रुवं	निश्चय ही	अस्तु	आवे,
ततः मे कृत्	उस मेरे द्वारा किये	मे	मेरे
देव	देव (पुरुष) की	अघ	पापका
हेलनात्	अवहेलनासे	निष्कृताय	प्रायश्चित करने (आवेगी)
अति	बहुत	यथा	जिससे
दीर्घात्	देरसे	पुनः	फिर
न	नहीं (शीघ्र)	एवं	इस प्रकारका
दुरत्ययं	घोर	श्रद्धा	साहस
व्यसनं	विपत्ति आवेगी,	न	नहीं
तत्	वह	कुर्यां	करूँ ॥२॥
कामं	भरपूर		

अद्यैव राज्यं बलमृद्धकोशं
प्रकोपितब्रह्मकुलानलो मे ।
दहत्वभद्रस्य पुनर्न मेऽभूत्
पापीयसी धीर्द्विजदेवगोभ्यः ॥३॥

अद्य एव राज्यं वलं ऋद्ध कोशं प्रकोपितः ब्रह्मकुल अनल मे दहतु अभद्रस्य पुनः न मे अभूत् पापीयसी धीः द्विज देव गोभ्यः ॥ ३ ॥

अद्य	आज	दहतु	भस्म करदे
एव	ही	मे	(जिससे) मेरी
प्रकोपितः	क्रुद्ध किये गये	पुनः	फिर
ब्रह्मकुल	ब्राह्मणकुलकी	द्विज	ब्राह्मण
अनलः	(क्रोधरूप) अग्नि	देव	देवता (एवं)
मे	मुझ	गोभ्यः	गायोंके प्रति
अभद्रस्य	दुष्टके	पापीयसी	पापमयी
राज्यं	राज्य,	धीः	बुद्धि
बलं	सेना,	न	नहीं
ऋद्ध	समृद्ध	अभूत्	होवे ॥३॥
कोशं	कोशको		

स चिन्तयन्नित्थमथाशृणोद् यथा
मुनेः सुतोक्तो निर्ऋतिस्तक्षकाख्यः ।
स साधु मेने नचिरेण तक्षका-
नलं प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम् ॥४॥

स चिन्तयन् इत्थं अथ आशृणोत् यथा मुनेः सुत उक्तः निर्ऋतिः तक्षकाख्यः स साधु मेने न चिरेण तक्षक अनलं प्रसक्तस्य विरक्ति कारणम् ॥ ४ ॥

स	वे (परीक्षित)	स	उन्होंने
इत्थं	इस प्रकार	साधु	(इसे) अच्छा
चिन्तयन्	चिन्ता कर ही रहे थे	मेने	माना
अथ	कि इतनेमें	चिरेण	देरसे
यथा	जैसे	न	नहीं (शीघ्र ही)
मुनेः	मुनिके	तक्षक	तक्षक (रूपी)
सुत	पुत्रने	अनलं	अग्नि
उक्तः	कहा था	प्रसक्तस्य	(राज्यादिमें) आसक्तके लिए
तक्षकाख्यः	तक्षकके (काटने) नामकी	विरक्ति	वैराग्यको
निर्ऋतिः	मृत्यु (का समाचार)	कारणम्	करनेवाली हुई ॥४॥
आशृणोत्	सुना,		

अथो विहायेमममुं च लोकं
विमर्शितौ हेयतया पुरस्तात् ।
कृष्णाङ्घ्रिसेवामधिमन्यमान
उपाविशत् प्रायममर्त्यनद्याम् ॥५॥

अथ विहाय इमं अमुं च लोकं विमर्शितः हेयतया पुरस्तात् कृष्ण अङ्घ्रि सेवा अधि मन्यमानः उपाविशत् प्रायं अमर्त्यनद्याम् ॥ ५ ॥

पुरस्तात्	पहिले ही	विमर्शितः	विचार कर लिये जानेके कारण
हेयतया	त्याज्यरूपसे		

अथ	इसी समय	अधि	महत्त्वपूर्ण
इमं च	इस लोक तथा	मन्यमानः	मानते हुए
अमुं	उस (स्वर्गादि)	अमर्त्य	देव
लोकं	लोकको	नद्यां	नदी (सुरसरिके किनारे)
विहाय	त्यागकर		
कृष्ण	श्रीकृष्णके	प्रायं	प्रायोपवेश (अनशन) करके
अङ्घ्रि	चरणोंकी		
सेवा	सेवाको	उपाविशत्	बैठ गये ॥५॥

या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्र-
कृष्णाङ्घ्रिरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री ।
पुनाति लोकानुभयत्र सेशान्
कस्तां न सेवेत मरिष्यमाणः ॥६॥

या वै लसत् श्रीः तुलसी विमिश्र कृष्ण अङ्घ्रि रेणुभिः अधिक अम्बु नेत्री पुनाति लोकान् उभय अत्र स ईशान् कः तां न सेवेत मरिष्यमाणः ॥ ६ ॥

या	जो	वै	निश्चित रूपसे
तुलसी	तुलसी	अत्र	इस जगतमें
विमिश्र	मिली हुई	उभय	दोनों
कृष्ण	श्रीहरिके	लोकान्	लोकोंको
अंघ्रि	चरण	स ईशान	लोकपालोंके साथ
रेणुभिः	रजसे	पुनाति	पवित्र करती हैं।
अधिक	अधिक	मरिष्यमाणः	मरणासन्न
श्रीः	सुशोभित (एवं)	कः	कौन
लसत्	उल्लसित होकर	तां	उन (गंगाजी) का
अम्बु	जलधारा	सेवेत	सेवन
नेत्री	ले जाती हुई	न	नहीं करेगा ? ॥६॥

इति व्यवच्छिद्य स पाण्डवेयः
प्रायोपवेशं प्रति विष्णुपद्याम् ।

दध्यौ मुकुन्दाङ्घ्रिमनन्यभावो
मुनिव्रतो मुक्तसमस्तसङ्गः ॥७॥

इति व्यवच्छिद्य स पाण्डवेयः प्रायोपवेशं प्रति विष्णुपद्यां दध्यौ मुकुन्द अङ्घ्रि अनन्य भावः मुनिव्रतः मुक्त समस्त संगः ॥ ७ ॥

स	वह	मुक्त	त्याग कर
पाण्डवेयः	पाण्डववंशी (परीक्षित)	मुनि	मुनियोंके समान
इति	इस प्रकार	व्रतः	व्रती (मननशील) होकर
प्रायोपवेशं	आमरण उपवास	विष्णुपद्यां	गंगाजीके किनारे
प्रति	के लिए	मुकुन्द	श्रीकृष्णके
व्यवच्छिद्य	निश्चय करके	अंघ्रि	चरणोंको
समस्त	सभी	अनन्यभावः	अनन्य भावसे
संगः	आसक्तिको	दध्यौ	धारण किया ॥७॥

तत्रोपजग्मुर्भुवनं पुनाना
महानुभावा मुनयः सशिष्याः ।
प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः
स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः ॥८॥

तत्र उपजग्मुः भुवनं पुनाना महानुभावा मुनयः स शिष्याः प्रायेण तीर्थ अभिगम अपदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः ॥ ८ ॥

तत्र	वहाँ	उपजग्मुः	आये ।
भुवनं	त्रिभुवनको	प्रायेण	प्रायः
पुनाना	पवित्र करनेवाले	हि	क्योंकि
महानुभावाः	महान् प्रभाववाले	सन्तः	सन्त
मुनयः	मुनिगण	स्वयं	स्वयं
सशिष्याः	शिष्योंके साथ	तीर्थानि	तीर्थोंको
तीर्थअभिगम अपदेशैः	तीर्थयात्राके बहानेसे	पुनन्ति	पवित्र करते हैं ॥८॥

अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वा-
नरिष्टनेमिर्भृगुरङ्गिराश्च ।
पराशरो गाधिसुतोऽथ राम
उतथ्य इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ ॥९॥

अत्रिः वसिष्ठः च्यवनः शरद्वान् अरिष्टनेमिः भृगु अङ्गिराः च (और) पराशरः गाधिसुतः (विश्वामित्र) अथ (तथा) राम (परशुराम) उतथ्य इन्द्रप्रमद इध्मबाहौ ॥ ९ ॥*

मेधातिथिर्देवल आर्ष्टिषेणो
भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः ।
मैत्रेय और्वः कवषः कुम्भयोनि-
र्द्वैपायनो भगवान्नारदश्च ॥१०॥

मेधातिथिः देवल आर्ष्टिषेणः भारद्वाजः गौतमः पिप्पलादः मैत्रेय और्वः कवषः कुम्भयोनिः (अगस्त्य) द्वैपायनः (व्यास) भगवान् नारदः च ॥ १० ॥

अन्ये च देवर्षिब्रह्मर्षिवर्या
राजर्षिवर्या अरुणादयश्च ।
नानार्षेयप्रवरान् समेता-
नभ्यर्च्य राजा शिरसा ववन्दे ॥११॥

अन्ये च देवर्षि ब्रह्मर्षिवर्याः राजर्षिवर्याः अरुण आदयः च नाना आर्षेय प्रवराः समेतान् अभ्यर्च्य राजाः शिरसा ववन्दे ॥ ११ ॥

अन्ये	दूसरे	राजर्षिवर्याः	राजर्षि श्रेष्ठ
च	भी	च	तथा
देवर्षि	देवर्षि	अरुण	अरुण
ब्रह्मर्षिवर्याः	ब्रह्मर्षि श्रेष्ठ	आदयः	आदि

* केवल नाम हैं इनमें

आर्षेय	ऋषियोंके गोत्रमें उत्पन्न	अभ्यर्च्य	सत्कार करके
नाना	अनेक	राजा	राजाने
प्रवराः	श्रेष्ठ लोग	शिरसा	सिरसे (भूमिमें सिर रखकर)
समेतान्	आये थे, (उनकी)	ववन्दे	प्रणाम किया ॥११॥

सुखोपविष्टेष्वथ तेषु भूयः
कृतप्रणामः स्वचिकीर्षितं यत् ।
विज्ञापयामास विविक्तचेता
उपस्थितोऽग्रेऽभिगृहीतपाणिः ॥१२॥

सुख उपविष्टेषु अथ तेषु भूयः कृत प्रणामः स्व चिकीर्षित यत् विज्ञापयामास विविक्त चेता उपस्थितः अग्रे अभिगृहीत पाणिः ॥ १२ ॥

अथ	तदनन्तर	उपस्थितः	खड़े होकर
तेषु	उन लोगोंके	विविक्त	एकान्त (शुद्ध)
सुख	सुखपूर्वक	चेता	चित्तवाले (राजा)
उपविष्टेषु	बैठ जानेपर	यत्	जो
भूयः	फिरसे	स्व	अपनी
प्रणामः	प्रणाम	चिकित्सितं	करनेकी इच्छा थी
कृत	करके	विज्ञापयामास	निवेदन करने लगे ॥१२॥
अग्रे	उन सबके सामने		
अभिगृहीतपाणिः	हाथ जोड़कर		

राजोवाच–

अहो वयं धन्यतमा नृपाणां
महत्तमानुग्रहणीयशीलाः ।
राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचाद्
दूराद् विसृष्टं बत गर्ह्यकर्म ॥१३॥

अहो वयं धन्यतमाः नृपाणां महत्तम अनुग्रहणीयशीलाः राज्ञां कुल ब्राह्मणपाद शौचात् दूरं विसृष्टं बत गर्ह्य कर्म ॥ १३ ॥

अहो	अहो
नृपाणां	राजाओंमें
वयं	हम
धन्यतमाः	परम धन्य हैं,
महत्तम	महापुरुषोंके
अनुग्रहणीयशीलाः	अनुग्रह करने योग्य शीलवाले हैं। (लेकिन)
गर्ह्यं	निन्दित
कर्म	कर्म (करनेसे)
राज्ञां	राजाओंका
कुलं	कुल
ब्राह्मणपादशौचात्	ब्राह्मणोंके चरणोंसे पवित्र होनेसे
बत	प्रायः
दूरं	दूर
विसृष्टं	छूट जाता है ॥१३॥

तस्यैव मेऽघस्य परावरेशो
व्यासक्तचित्तस्य गृहेष्वभीक्ष्णम् ।
निर्वेदमूलो द्विजशापरूपो
यत्र प्रसक्तो भयमाशु धत्ते ॥१४॥

तस्य एव मे अघस्य परावर ईशः व्यासक्त चित्तस्य गृहेषु अभीक्ष्णं निर्वेद मूलः द्विजशापरूपः यत्र प्रसक्तः भयं आशु धत्ते ॥ १४ ॥

तस्य	उस (राजकुलमें)
एव	ही (उत्पन्न)
मे	मुझ
अघस्य	पापीपर (कृपा करके)
गृहेषु	घरमें
अभीक्ष्णं	निरन्तर
व्यासक्त	आसक्त
चित्तस्य	चित्तवाले
परावर	इस लोक तथा परलोकके
इश	स्वामी (भगवान् ही)
द्विजशापरूपः	ब्राह्मणके शापके रूपमें (पधारे हैं)
यत्र	जहाँ (संसारमें)
प्रसक्तः	आसक्तके लिए
निर्वेद	वैराग्यके
मूलः	कारण बनकर
आशु	शीघ्र
भयं	भयका (रूप वे)
धत्ते	धारण करते हैं ॥१४॥

तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा
गङ्गा च देवी धृतचित्तमीशे ।

द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा
दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ॥१५॥

तं मां उपयातं प्रतियन्तु विप्राः गङ्गा च देवी धृतः चित्तं ईशः द्विज उपसृष्टः कुहकः तक्षकः वा दशतु अलं गायत विष्णुगाथाः ॥ १५ ॥

तं	उन	उपसृष्टः	प्रेरित
ईशः	परमेश्वरमें	कुहकः	(कोई) कपटी
चित्तं	चित्त	वा	अथवा
धृतः	लगाये	तक्षकः	(स्वयं) तक्षक
उपयातं	शरणागत	अल	भले
मां	मुझपर	दशतु	काट ले
विप्राः	(आप) ब्राह्मणगण	विष्णुगाथाः	(आप सब तो) भगवान्‌का चरित
च	तथा	गायतु	गायन (वर्णन) करें ॥१५॥
गङ्गादेवी	देवी गङ्गा		
प्रतियन्तु	प्रतीति (कृपा) करें		
द्विज	ब्राह्मण द्वारा		

पुनश्च भूयाद्भगवत्यनन्ते
रतिः प्रसङ्गश्च तदाश्रयेषु ।
महत्सु यां यामुपयामि सृष्टिं
मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः ॥१६॥

पुनः च भूयात् भगवति अनन्ते रतिः प्रसङ्गः च तत् आश्रयेषु महत्सु यां यां उपयामि सृष्टिं मैत्री अस्तु सर्वत्रः नमः द्विजेभ्यः ॥१६॥

द्विजेभ्यः	(आप) ब्राह्मणोंको	अनन्ते	अनन्तमें (मेरी)
नमः	प्रणाम ! (आप आशीर्वाद दें कि)	रतिः	प्रीति
		भूयात्	होवे
यां यां	जिस जिस	च	तथा
सृष्टिं	योनिमें	तत्	उनके
उपयामि	जन्म लूँ (वहाँ)	आश्रयेषु	शरणागत
पुनः	फिर	महत्सु	महापुरुषोंका
भगवति	भगवान्	प्रसङ्गः	सामीप्य

च	एवं	मैत्री	मित्रता
सवत्रः	सब कहीं	अस्तु	रहे ॥१६॥

*सूत उवाच**-

इति स्म राजाध्यवसाययुक्तः
प्राचीनमूलेषु कुशेषु धीरः ।
उदङ्मुखो दक्षिणकूल आस्ते
समुद्रपत्न्याः स्वसुतन्यस्तभारः ॥१७॥

इति स्म राजा अध्यवसाय युक्तः प्राचीनमूलेषु कुशेषु धीरः उदङ्मुखः दक्षिणकूलः आस्ते समुद्रपत्न्याः स्वसुत न्यस्तः भारः ॥ १७ ॥

इति	ऐसा कहकर	दक्षिणकूलः	(गंगाके) दाहिने किनारे
धीरः	धैर्यशाली	प्राचीनमूलेषु	पश्चिम जड़ (पूर्वाग्र)
राजा	परीक्षित्	कुशेषु	(बिछाये) कुशोंके आसनपर
अध्यवसाय	दृढ़ निश्चय	उदङ्मुखः	उत्तरमुख करके
युक्तः	करके	आस्ते	बैठ
समुद्रपत्न्याः	पृथ्वीका	स्म	गये ॥१७॥
भारः	भार (दायित्व)		
स्वसुत	अपने पुत्र (जनमेजय) पर		
न्यस्तः	(पहिले ही) डाल चुके थे		

एवं च तस्मिन्नरदेवदेवे
प्रायोपविष्टे दिवि देवसंघाः ।
प्रशस्य भूमौ व्यकिरन् प्रसूनै-
र्मुदा मुहुर्दुन्दुभयश्च नेदुः ॥१८॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

एवं च तस्मिन् नरदेवदेवे प्रायोपविष्टे दिवि देवसंघाः, प्रशस्य भूमौ व्यकिरन् प्रसूनैः मुदाः मुहुः दुन्दुभयः च नेदुः ॥ १८ ॥

एवं	इस प्रकार
च	से
तस्मिन्	उन
नरदेवदेवे	राजराजेश्वर (परीक्षित्) के
प्रायोपविष्टे	आमरण अनशनके लिए बैठ जानेपर
दिवि	आकाशसे
देवसंघाः	देवताओंके समूह
प्रशस्य	(राजाकी) प्रशंसा करके
भूमौ	पृथ्वीपर
मुदाः	हर्षपूर्वक
प्रसूनैः	पुष्पोंकी
व्यकिरन्	वर्षा करने लगे,
मुहुः	बार-बार
दुन्दुभयः	नगाड़े
च	भी
नेदुः	बजने लगे ॥१८॥

महर्षयो वै समुपागता ये
प्रशस्य साध्वित्यनुमोदमानाः ।
ऊचुः प्रजानुग्रहशीलसारा
यदुत्तमश्लोकगुणाभिरूपम् ॥१९॥

महर्षयः वै समुपागताः ये प्रशस्य साधु इति अनुमोदमानाः ऊचुः प्रजा अनुग्रहशीलसाराः यत् उत्तमश्लोक गुण अभिरूपम् ॥ १९ ॥

ये	जो
महर्षयः	महर्षिगण
वै	भी
समुपागताः	वहाँ आये थे
प्रशस्य	प्रशंसा करके,
साधु	उत्तम (निश्चय) है–
इति	ऐसा कहकर,
अनुमोदमानाः	अनुमोदन करते हुए
ऊचुः	बोले—
प्रजा	प्रजापर
अनुग्रह शीलसाराः	अनुग्रह शील रहनेवालेके लिए
यत्	जो
उत्तमश्लोक	पवित्र कीर्ति (श्रीहरि) के
गुण	गुणोंके
अभिरूपं	अनुरूप है (वही तुमने निश्चय किया है।) ॥१९॥

न वा इदं राजर्षिवर्य चित्रं
भवत्सु कृष्णं समनुव्रतेषु ।
येऽध्यासनं राजकिरीटजुष्टं
सद्यो जहुर्भगवत्पार्श्वकामाः ॥ २०॥

न वा इदं राजर्षिवर्य, चित्रं भवत्सु कृष्णं सम् अनुव्रतेषु ये अध्यासनं राजकिरीट जुष्टं सद्यः जहुः भगवत् पार्श्व कामाः ॥ २० ॥

राजर्षिवर्य	राजर्षि श्रेष्ठ ! (परीक्षित्)	कामाः	कामनासे
		राजकिरीट	राजमुकुट
कृष्णं	श्रीकृष्णके	जुष्टं	युक्त
सम्	पूर्णतः	अध्यासनं	साम्राज्य सिंहासन
अनुव्रतेषु	अनुयायी	ये	जो
भवत्सु	आपके लिए	सद्यः	तत्काल
इदं	यह	जहुः	त्याग दिया
वा	जो	चित्रं	आश्चर्यजनक
भगवत्	भगवानके	न	नहीं है ॥२०॥
पार्श्व	समीप रहनेकी		

सर्वे वयं तावदिहास्महेऽद्य
कलेवरं यावदसौ विहाय ।
लोकं परं विरजस्कं विशोकं
यास्यत्ययं भागवतप्रधानः ॥२१॥

सर्वे वयं तावत् इह आस्महे अद्य कलेवरं यावत् असौ विहाय लोकं परं विरजस्कं विशोकं यास्यति अयं भागवत प्रधानः ॥ २१ ॥

अद्य	अब	यावत्	जबतक
वयं	हम	अयं	ये
सर्वे	सब	भागवत	भगवद्-भक्तोंमें
तावत्	तबतक	प्रधानः	प्रमुख (परीक्षित्)
इह	यहीं	असौ	इस (अपने)
आस्महे	रहेंगे	कलेवरं	शरीरको

विहाय	त्यागकर	परं	परम
विरजस्कं	निर्मल	लोकं	लोकको
विशोकं	शोकरहित	यास्मति	जायँगे ॥२१॥

आश्रुत्य तद्ऋषिगणवचः परीक्षित्
समं मधुच्युद्गुरु चाव्यलीकम् ।
आभाषतैनानभिनन्द्य युक्तान्
शुश्रूषमाणश्चरितानि विष्णोः ॥२२॥

आश्रुत्य तत् ऋषिगण वचः परीक्षित् समं मधुच्युत् गुरु च अव्यलीकं आभाषत एनान् अभिनन्द्य युक्तान् शुश्रूषमाणः चरितानि विष्णोः ॥२२॥

ऋषिगण	ऋषियोंकी	परीक्षित्	परीक्षित्ने
तत्	वह	युक्तान्	(उन) संयमी (मुनियोंका)
समं	समतायुक्त,		
मधुच्युत	अत्यन्त मधुर	अभिनन्द्य	अभिनन्दन करके
गुरु	गम्भीर	विष्णोः	भगवान्के
च	तथा	चरितानि	चरितोंको
अव्यलीकं	सत्य	शुश्रूषमाणः	सुननेकी इच्छासे
वचः	बात	एनान्	उनसे
आश्रुत्य	सुनकर	अभाषत	पूछा ॥२२॥

*राजोवाच**–

समागताः सर्वत एव सर्वे
वेदा यथा मूर्तिधरास्त्रिपृष्ठे ।
नेहाथवामुत्र च कश्चनार्थ
ऋते परानुग्रहमात्मशीलम् ॥२३॥

समागताः सर्वतः एव सर्वे वेदाः यथा मूर्तिधराः त्रिपृष्ठे न इह अथवा अमुत्र च कश्चन अर्थं ऋते पर अनुग्रहं आत्मशीलम् ॥ २३ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

यथा	जैसे
त्रिपृष्ठे	स्वर्गमें
मूर्तिधराः	मूर्तिमान
वेदाः	वेद (रहते हैं, वैसे)
सर्वतः	सब ओर
एव	से ही
सर्वे	(आप) सब
समागताः	(यहाँ) पधारे हैं,
पर	दूसरोंपर
अनुग्रहं	अनुग्रह करना
आत्मशीलं	आपका स्वभाव है,
ऋते	इसे छोड़कर
इह	इस लोकमें
अथवा	अथवा
अमुत्र	परलोकमें
च	भी
कश्चन	कोई
अर्थं	प्रयोजन (आप लोगोंका)
न	नहीं है । २३॥

ततश्च वः पृच्छचमिमं विपृच्छे
विश्रभ्य विप्रा इतिकृत्यतायाम् ।
सर्वात्मना म्रियमाणैश्च कृत्यं
शुद्धं च तत्रामृशताभियुक्ताः ॥२४॥

ततः च वः पृच्छं इमं विपृच्छे विश्रभ्य विप्राः इति कृत्यतायां सर्वात्मनाः म्रियमाणैः च कृत्यं शुद्धं च तत्र अमृशत अभियुक्ताः ॥ २४ ॥

विप्राः	ऋषियो
विश्रभ्य च	(आप सबपर) विश्वास करके भी
ततः	इसलिए
वः	आपसे
इमं	यह
पृच्छं	पूछने योग्य (बात)
विपृच्छे	विशेष रूपसे पूछता हूँ
सर्वात्मनाः	सब प्रकारसे
म्रियमाणैः च	मरणासन्नके लिए
इति कृत्यतायां	अन्तिम कर्तव्यके रूपमें (जो)
कृत्यं शुद्धं च	कर्म शुद्ध भी हो
तत्र	वह
अभियुक्ताः	(आप सब) मिलकर
अमृशत	विचार करें ॥२४॥

*सूत उवाच**–

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तत्राभवद्भगवान् व्यासपुत्रो
यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः ।
अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो
वृतश्च बालैरवधूतवेषः ॥२५॥

तत्र अभवत् भगवान् व्यासपुत्रः यदृच्छया गां अटमानः अनपेक्षः अलक्ष्यलिङ्गः निजलाभ तुष्टः वृतः च बालैः अवधूतवेषः ॥ २५ ॥

यदृच्छया	स्वेच्छासे	निजलाभ	आत्मलाभसे
गां	पृथ्वीपर	तुष्टः	सन्तुष्ट,
अटमानः	घूमते हुए,	अवधूतवेषः	अवधूतवेषमें
अनपेक्षः	निरपेक्ष,	बालैः	बालकोंसे
लिङ्गः	(किन्हीं भी) चिह्नोंसे	वृतः	घिरे
		भगवान्	भगवान्
अलक्ष्यः	पहिचाने न जानेवाले	व्यासपुत्रः	व्यासनन्द शुकदेवजी
		तत्र	वहाँ
च	और	अभवत्	प्रकट हो गये ॥२५॥

तं द्वयष्टवर्षं सुकुमारपाद-
करोरुबाह्वंसकपोलगात्रम् ।
चार्वायताक्षोन्नसतुल्यकर्ण-
सुभ्वाननं कम्बुसुजातकण्ठम् ॥२६॥

तं द्वयष्ट वर्षं सुकुमार पाद कर उरु बाहु अंस कपोल गात्रं चारु आयत अक्षः उन्नस तुल्य कर्णः सुभ्रू आननं कम्बु सुजात कण्ठम् ॥२६॥

तं	उन	उरु	जाँघे,
द्वयष्ट	सोलह	कर	हाथ,
वर्षं	वर्षके	बाहु	भुजा
सुकुमार	सुकुमार	अंस	कन्धे,
ते	उनके	कपोल	कपोल (युक्त)
पाद	चरण	चारु	सुन्दर

गात्रं	शरीर था।	सुभ्रू	सुन्दर भौंहे,
आयत	बड़े	आननं	मुख, (एवं)
अक्षः	नेत्र,	सुजात	उत्तम
उन्नस	उठी हुई नासिका,	कम्बु	शंखके समान
तुल्य	बराबर	कण्ठं	गला था ॥२६॥
कर्णः	कान,		

निगूढजत्रुं पृथुतुङ्गवक्षस-
मावर्तनाभि बलिवल्गूदरं च।
दिगम्बरं वक्त्रविकीर्णकेशं
प्रलम्बबाहुं स्वमरोत्तमाभम् ॥२७॥

निगूढ जत्रुं पृथुतुङ्ग वक्षः सम आवर्त नाभि बलिवल्गु उदरं च दिगम्बरं वक्त्र विकीर्ण केशं प्रलम्ब बाहुं स्व अमरोत्तम आभम् ॥२७॥

निगूढ	(उनका) छिपा हुआ	दिगम्बरं	दिगम्बर
जत्रुं	जत्रु,	वक्त्र	मुखपर
पृथुतुङ्ग	चौड़ा और ऊँचा	विकीर्णकेशं	केश बिखरे थे।
वक्षः	वक्षस्थल,	प्रलम्ब	खूब लम्बी
सम	बराबर	बाहुं	भुजाऐं (थी)।
आवर्त	घुमावदार	स्वं	अपनी
नाभि	नाभि,	आभम्	आभा (तेजसे)
बलिवल्गु	त्रिवली युक्त पतला	अमरोत्तम	श्रेष्ठ देवताके
उदरं	पेट		समान थे ॥२७॥
च	था।		

श्यामं सदापीच्यवयोऽङ्गलक्ष्म्या
स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरस्मितेन।
प्रत्युत्थितास्ते मुनयः स्वासनेभ्य-
स्तल्लक्षणज्ञा अपि गूढवर्चसम् ॥२८॥

श्यामं सदा अपीच्य वयः अङ्ग लक्ष्म्याः स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिर स्मितेन प्रत्युत्थिताः ते मुनयः स्व आसनेभ्यः तत् लक्षणज्ञाः अपि गूढ वर्चसम् ॥२८॥

श्यामं	श्यामवर्ण,
सदा	नित्य
अपीच्य	युवा
वयः	अवस्थावाला
अङ्ग	शरीर,
लक्ष्म्याः	शोभासम्पन्न
रुचिर	सुन्दर
स्मितेन	मुसुकानसे
स्त्रीणां	स्त्रियोंके
मनोज्ञ	मनको प्रिय लगने वाले थे।
गूढ	छिपाये
वर्चसम्	तेजवाले
अपि	होनेपर भी
तत्	उनके
लक्षणज्ञाः	लक्षणोंको जाननेवाले
ते	वे (वहाँ उपस्थित)
मुनयः	मुनिगण
स्व	अपने
आसनेभ्यः	आसनोंसे (उनके)
प्रत्युत्थिताः	सम्मानमें उठकर खड़े हो गये ॥२८॥

स विष्णुरातोऽतिथय आगताय
तस्मै सपर्यां शिरसाऽऽजहार।
ततो निवृत्ता ह्यबुधाः स्त्रियोऽर्भका
महासने सोपविवेश पूजितः ॥२९॥

स विष्णुरातः अतिथय आगताय तस्मै सपर्यां शिरसा आजहार ततः निवृत्ताः हि अबुधाः स्त्रियः अर्भकाः महासने स उपविवेश पूजितः ॥२९॥

स	उन
विष्णुरातः	राजा परीक्षितने
आगताय	पधारे हुए
अतिथय	अतिथि
तस्मै	उन (श्रीशुकदेवजी) के प्रति
शिरसा	शिर झुकाकर (प्रणाम करके)
सपर्यां आजहार	(उनकी) पूजा की।
हि अबुधाः	(श्रीशुकदेवजीके प्रभावसे) निश्चय ही अज्ञ
स्त्रियः	(वे) स्त्रियाँ (और)
अर्भकाः	बालकगण
ततः	वहाँसे
निवृत्ताः	निवृत्त होकर चले गये।
स	वे (श्रीशुकदेवजी)
पूजितः	पूजित होकर
महासने	श्रेष्ठ आसनपर
उपविवेश	विराजमान हुए ॥२९॥

स संवृतस्तत्र महान् महीयसां
ब्रह्मर्षिराजर्षिदेवर्षिसंघैः ।
व्यरोचतालं भगवान् यथेन्दु-
ग्रहर्क्षतारानिकरैः परीतः ॥३०॥

स संवृतः तत्र महान् महीयसां ब्रह्मर्षि राजर्षि देवर्षि संघैः व्यरोचत अलं भगवान् यथा इन्दुः ग्रह अक्ष तारा निकरैः परीतः ॥३०॥

ग्रह	ग्रह*	महीयसां	महत्तमोंमें भी
अक्ष	नक्षत्र (और)	महान्	महान
तारा	तारोंके	ब्रह्मर्षि	ब्रह्मर्षियों
निकरैः	समूहसे	राजर्षि	राजर्षियों
परीतः	घिरे हुए	देवर्षि	देवर्षियोंके
इन्दुः	चन्द्रमा	संघैः	समूहसे
यथा	के समान	संवृतः	घिरे हुए
स	वे	तत्र	वहाँ
भगवान्	भगवान् (शुकदेवजी)	अलं	अतिशय
		व्यरोचत	सुशोभित हुए ॥३०॥

प्रशान्तमासीनमकुण्ठमेधसं
मुनिं नृपो भागवतोऽभ्युपेत्य ।
प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृताञ्जलि-
र्नत्वा गिरा सूनृतयान्वपृच्छत् ॥३१॥

---

* ग्रह—ये सात हैं—१. सूर्य, २. चन्द्र, ३. मंगल, ४. बुध, ५. गुरु, ६. शुक्र और ७. शनि। राहु-केतु छाया ग्रह हैं। आकाश-मण्डलमें ग्रह चलते रहते हैं।

अर्क्षया नक्षत्र—ये सत्ताइस हैं। ये कई कई तारोंके समूह हैं। इन्हींके सहारे आकाशमें ग्रहोंकी स्थितिकी गणना होती है।

तारा—ये ग्रह तथा नक्षत्रोंको छोड़कर असंख्य हैं। वर्तमान विज्ञानके अनुसार ग्रहों तथा चन्द्रमाको छोड़कर सभी तारे-नक्षत्र भी अतिशय दूरस्थ सूर्य हैं।

प्रशान्तं आसीनं अकुण्ठ मेधसं मुनिं नृपः भागवतः अभ्युपेत्य प्रणम्य मूर्ध्ना अवहितः कृताञ्जलिः नत्वा गिराः सूनृतया अन्वपृच्छत् ॥३१॥

प्रशान्तं	अत्यन्त शान्त	मूर्ध्ना	चरणोंपर सिर रखकर
अकुण्ठ	प्रखर	प्रणम्य	प्रणाम करके
मेधसं	बुद्धिवाले	कृताञ्जलिः	(उठकर) हाथ जोड़कर
आसीनं	बैठे हुए	नत्वा	(फिर) प्रणाम करके
मुनिं	मुनि शुकदेवजीके	सूनृतया	मधुर
अभ्युपेत्य	समीप जाकर	गिराः	वाणीसे
भागवतः	भगवद्भक्त	अन्वपृच्छत्	पूछा ॥३१॥
नृपः	राजाने		
अवहितः	झुककर		

परीक्षिदुवाच–

अहो अद्य वयं ब्रह्मन् सत्सेव्याः क्षत्रबन्धवः ।
कृपयातिथिरूपेण भवद्भिस्तीर्थकाः कृताः ॥३२॥

अहो अद्य वयं ब्रह्मन् सत्सेव्याः क्षत्रबन्धवः कृपया अतिथिरूपेण भवद्भिः तीर्थकाः कृताः ॥३२॥

अहो	अहो,	ब्रह्मन्	भगवन् !
क्षत्रबन्धवः	क्षत्रियाधम (होनेपर भी)	कृपया	कृपापूर्वक
अद्य	आज	अतिथिरूपेण	अतिथिरूपमें (पधारे हुए)
वयं	हम	भवद्भिः	आपके द्वारा
सत्सेव्याः	सन्तोंकी सेवाके अधिकारी हुए (क्योंकि)	तीर्थकाः	पवित्र
		कृताः	कर दिये गये ॥३२॥

येषां संस्मरणात् पुंसां सद्यः शुद्ध्यन्ति वै गृहाः ।
किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः ॥३३॥

येषां संस्मरणात् पुंसां सद्यः शुद्ध्यन्ति वै गृहाः किं पुनः दर्शन स्पर्श पादशौच आसन आदिभिः ॥३३॥

येषां	जिनके	पुनः	फिर (उनके)
संस्मरणात्	स्मरण करने (मात्र) से	दर्शन	दर्शन,
		स्पर्श	स्पर्श,
पुंसां	लोगोंके	पादशौच	चरणोदक,
गृहाः	घर	आसन	बैठने
वै	निश्चित ही	आदिभिः	आदिसे (तो)
सद्यः	तत्काल	किं	कहना ही
शुद्ध्यन्ति	शुद्ध हो जाते हैं;		क्या ॥३३॥

सांनिध्यात्ते महायोगिन्पातकानि महान्त्यपि ।
सद्यो नश्यन्ति वै पुंसां विष्णोरिव सुरेतराः ॥३४॥

सांनिध्यात् ते महायोगिन् पातकानि महान्ति अपि सद्यः नश्यन्ति वै पुंसां विष्णोः इव सुरेतराः ॥ ३४ ॥

महायोगिन्	महायोगी !	विष्णोः	भगवान् विष्णुसे
ते	आपके	सुरेतराः	असुरोंके
सांनिध्यात्	सामीप्यसे	इव	समान—
पुंसां	पुरुषोंके	वै	निश्चित ही
महान्ति	महान	सद्यः	तत्काल
पातकानि	पाप	नश्यन्ति	नष्ट हो जाते हैं ॥३४॥
अपि	भी—		

अपि मे भगवान् प्रीतः कृष्णः पाण्डुसुतप्रियः ।
पैतृष्वसेयप्रीत्यर्थं तद्गोत्रस्यात्तबान्धवः ॥३५॥

अपि मे भगवान् प्रीतः कृष्णः पाण्डुसुत प्रियः पैतृष्वसेयः प्रीत्यर्थं तद् गोत्रस्य आत्त बान्धवः ॥ ३५ ॥

पाण्डुसुत	पाण्डवोंके	कृष्णः	श्रीकृष्ण
प्रियः	प्रिय	पैतृष्वसेयः	अपनी बुआकी

प्रीत्यर्थं	प्रसन्नताके लिए	मे	मुझपर
तद्	उनके	अपि	भी
गोत्रस्य	गोत्रमें	भगवान्	(वे) भगवान् (श्रीकृष्ण)
आत्त	स्वीकार करके		
बान्धवः	सम्बन्धी	प्रीतः	प्रसन्न हुए हैं ॥३५॥

अन्यथा तेऽव्यक्तगतेर्दर्शनं नः कथं नृणाम् ।
नितरां म्रियमाणानां संसिद्धस्य वनीयसः ॥३६॥

अन्यथा ते अव्यक्त गतेः दर्शनं नः कथं नृणां नितरां म्रियमाणानां संसिद्धस्य वनीयसः ॥ ३६ ॥

अन्यथा	अन्यथा	गतेः	गतिवाले
नितरां	अत्यन्त	संसिद्धस्य	परमसिद्ध
म्रियमाणानां	मरणासन्न	वनं यसः	वनमें रहनेवाले
नृणां	(साधारण) मनुष्य	ते	आपका
नः	मुझे	दर्शनं	दर्शन
अव्यक्त	अव्यक्त	कथं	कैसे होता ? ॥३६॥

अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् ।
पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ॥३७॥

अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् पुरुषस्य इह यत् कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ॥ ३७ ॥

अतः	अतः	सर्वथा	सर्वथा
योगिनां	योगियोंके	म्रियमाणस्य	मरणासन्न
परमं	परम	पुरुषस्य	पुरुषके लिए
गुरुम्	गुरु (आपसे)	इह	इस लोकमें
संसिद्धिं	अन्तःकरणकी आत्मन्तिक शुद्धिके लिए	यत्	जो
		कार्यं	करणीय है (वह)
		पृच्छामि	(मैं) पूछता हूँ ॥३७॥

यच्छ्रोतव्यमथो जप्यं यत्कर्तव्यं नृभिः प्रभो ।
स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ॥३८॥

यत् श्रोतव्यं अथः जप्यं यत् कर्तव्यं नृभिः प्रभो स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ॥ ३८ ॥

प्रभो	प्रभो !	स्मर्तव्यं	स्मरण करने योग्य
नृभिः	(ऐसे) मनुष्य द्वारा	वा	अथवा
यत्	जो	भजनीयं	भजन करने योग्य हो
श्रोतव्यं	सुनने योग्य	यद्वा	जो इसके
अथः	अथवा	विपर्ययम्	उलटा (बाधा देनेवाला हो)
जाप्यं	जप करने योग्य,	ब्रूहि	(वह सब) बतलाइये ॥३८॥
यत्	जो		
कर्तव्यं	करने योग्य,		

नूनं भगवतो ब्रह्मन् गृहेषु गृहमेधिनाम् ।
न लक्ष्यते ह्यवस्थानमपि गोदोहनं क्वचित् ॥३९॥

नूनं भगवतः ब्रह्मन् गृहेषु गृहमेधिनां न लक्ष्यते हि अवस्थानं अपि गोदोहनं क्वचित् ॥ ३९ ॥

भगवतः	भगवतस्वरूप	गृहेषु	घरोंमें
ब्रह्मन्	मुनिवर !	हि	निश्चयपूर्वक
नूनं	निश्चय ही	क्वचित्	कभी
गोदोहनं	गाय जितनी देरमें दुही जाय उतनी देर	अवस्थानं	(आपका) ठहरना
		न लक्ष्यते	लक्षित नहीं होता ॥३९॥
अपि	भी		
गृहमेधिनां	गृहस्थोंके		

सूत उवाच–

एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा ।
प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान् बादरायणिः ॥४०॥

एव आभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा प्रति अभाषत धर्मज्ञः भगवान् बादरायणिः ॥ ४० ॥

एवं	इस प्रकार	धर्मज्ञः	धर्मको जाननेवाले
श्लक्ष्णया	मधुर	स	वे
गिरा	वाणीसे	भगवान्	वे भगवान्
राज्ञा	राजा (परीक्षित्) द्वारा	बादरायणिः	व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी
आभाषितः	सम्भाषण करने (और)	प्रति	उत्तरमें
पृष्टः	पूछे जानेपर	अभाषत	बोले ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां एकोनविंशो पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः

॥ इति प्रथमः स्कन्धः समाप्तः ॥

हरिः ॐ तत्सत्